प्रस्तुत पुस्तक प्रसिद्ध प्रतिभाशाली पक्षिविज्ञानी सालिम अली का आत्मजीवनचरित है। बचपन में सबसे पहले उन्होंने जिस गौरैया को मार गिराया था, वह ही उनकी प्रेरणा का पहला स्रोत बनी। इसी सोनकंठी गौरैया की पहचान कराने के लिए उनका संपर्क 'बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी' से हुआ। प्रस्तुत आत्मजीवनचरित में उन्होंने अपने जीवन की पक्षिवैज्ञानिकी यात्राओं का साहसिक और रोमांचक वर्णन किया है। पक्षियों और उनके जीवन चक्र को जानने-समझने के लिए उन्होंने देश-विदेश का भ्रमण किया। पत्र-पत्रिकाओं में छपे उनके अनुसंधानात्मक लेखों और विभिन्न संगोष्ठियों आदि में प्रस्तुत उनके व्याख्यानों ने देश-विदेश में उन्हें प्रतिष्ठित कर दिया। सालिम अली और पक्षी-जगत जैसे एक-दूसरे का पर्याय बन गए। 87 वर्ष की अवस्था में पीछे मुड़कर देखना और अपनी कहानी कहना एक दुरूह कार्य था लेकिन उन्होंने अपने संस्मरणों को जिस रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है, उससे इस पुस्तक को केवल पक्षिनिहारक, शिकारी और पर्यावरणविद् ही नहीं बल्कि सामान्य पाठक भी रुचि से पढ़ेंगे। एक रोचक और प्रेरक जीवनी।

विश्वमोहन तिवारी (1935) वायुसेना के एयरवाईस मार्शल के पद से सेवामुक्त होने के बाद आजकल स्वतंत्र रूप से लेखन-वृत्ति में लगे हैं। सेवा के दौरान वायुसेना की सिग्नल्स शाखा में सर्वश्रेष्ठ अधिकारी के पुरस्कार के अलावा इन्हें कई अन्य पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया। इनकी कई पुस्तकें तथा गणित, विज्ञान, दर्शन, साहित्य आदि अनेक ज्ञान की शाखाओं में विवेचनात्मक लेख हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित हो चुके हैं।

रु. 80.00 ISBN 81-237-4403-X

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

एक गौरैया का गिरना   सालिम अली

एक गौरैया का गिरना

सालिम अली

अनुवाद

विश्वमोहन तिवारी

एक गौरैया का गिरना

राष्ट्रीय जीवनचरित

एक गौरैया का गिरना

...गौरैया के गिरने में विधि
का विशेष विधान है
—हैमलेट, **v.ii. 232-3**

सालिम अली

अनुवाद
विश्वमोहन तिवारी

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

हॉक (आर.ई. हॉकिन्स)
को
सबसे पहले यह विचार मेरे मन में बैठाने के लिए कि मेरी कहानी सुनाने योग्य है

मूल अंग्रेजी पुस्तक का प्रकाशन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 1985 में किया गया था।

ISBN 81-237-4403-X

पहला संस्करण : 2005
दूसरी आवृत्ति : 2006 *(शक 1927)*

The Fall of a Sparrow *(Hindi)*

रु. 80.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

प्रस्तावना

यह सोचे बिना कि अपने संस्मरण लिखना है, तीन-चौथाई शती का जीवन जी लेना, और फिर अचानक ऐसा लिखने का निर्णय कर लेना, अन्याय है, मैं जानता हूं। डायरियों तथा परिरक्षित पत्राचार आदि पुरालेख सामग्री के बिना और केवल विलक्षण स्मरण शक्ति पर निर्भर कर लिखना संतोषप्रद नहीं है। इन परिस्थितियों में, मेरे मन में आत्मकथा लिखने का साहस जुटाने के लिए मित्रों एवं प्रशंसकों को मुझे बहुत अधिक समझाना बुझाना पड़ा। अंततः, यह आत्मकथा जिज्ञासु व्यक्तियों को यह जानकारी देने की उपयोगी शैली है कि उस समय जब भारतीयों में पक्षिवैज्ञानिकी रोग नहीं फैला था, तब मैंने किस तरह पक्षिवैज्ञानिकी के रोगाणुओं का संसर्ग प्राप्त किया, तथा पक्षियों में मेरी वैज्ञानिक रुचि का विकास किस तरह हुआ। इस वृतांत का लेखन, एक प्रकार से दबाव के फलस्वरूप, आठ वर्ष पहले शुरू किया था। इस हेतु मैंने कोई योजना नहीं बनाई, कोई समय के क्रमानुसार शृंखला नहीं सोची, वरन जैसा मन करता गया, थोड़ा बहुत यादृच्छिक शैली में स्मृतियों तथा संस्मरणों को व्यग्रता से खंडों-उपखंडों में लिखता गया। शुभेच्छु मित्रों तथा संबंधियों की कृपाशील किंतु निर्मम झाड़-फटकार के बिना यह लेखन टाल-मटोल के दलदल में गिरता पड़ता फंसा रह जाता। उन बहुत से मित्रों, जिनके नाम देना संभव नहीं, जिन्होंने भूली बिसरी घटनाओं का प्रत्यास्मरण करवाया तथा अन्य तरह से सहायता की, मैं उन सबका हृदय से आभारी हूं। मैं सबसे अधिक धन्यवाद आर.ई. हॉकिन्स (हॉक) को देता हूं जिन्होंने गड्डमड्ड वृतांतों को सहर्ष सुलझाने तथा विशृंखलताओं को कम कर कुछ व्यवस्था का आभास देने का दायित्व स्वीकार किया। और अन्य व्यक्तियों का जिनका मैं विशेष कृतज्ञ हूं, उनमें से स्पृहणीय विलक्षण स्मृति वाले जे.एस. सैराब हैं, जो पिछले तीन दशकों से मेरे अपरिहार्य सहायक तथा पुरालेखपाल रहे हैं, तथा लगातार पीछे पड़कर और उपयोगी सुझाव देकर उस अभियान का जो अनंत-सा दिखने लगा था,

समापन करवाने में सहायता की। इस कहानी में, मुझे मालूम है, ऐसे व्यक्तित्व तथा ऐसी घटनाएं हैं जिन्हें स्थान पाना था, किंतु परिस्थितियों के बीच, वे अनजान में छूट गई हैं। किंतु इन थोड़े से मुद्रित पन्नों में घटनाओं से भरे अस्सी वर्षों को भरना कुछ ज्यादती है, और इस समय उनके सम्मिलित न कर सकने के लिए खेद ही प्रकट कर सकता हूं।

–सालिम अली

1

विधि का विशेष विधान

कुछ वर्ष पहले तक इस सवाल ने न तो मुझे परेशान किया और न अन्य किसी को कि पक्षियों में मेरी रुचि किस तरह जागृत हुई। मैं तो इसी के साथ बड़ा हुआ तथा मेरी विचित्रता को मेरा स्वभाव मानकर स्वीकार कर लिया गया, बस! वह तो बहुत बाद में जब एक, जिज्ञासु पत्रकार ने यह सवाल मेरे समक्ष रखा तब मैंने इस पर सोचना शुरू किया। तब मेरी समझ में आया कि मेरी प्रारंभिक पृष्ठभूमि को देखते हुए उसका सवाल उतना असंगत नहीं था जितना पहली नजर में लगा था। सत्तासी वर्ष का अंतराल, विवरणों को याद रखने के लिए बहुत लंबा अंतराल है, किंतु मुझे अपना खेतवाड़ी का फैला हुआ पारिवारिक घर पूरी तरह याद है। खेतवाड़ी बंबई का मध्यवर्ग का आवास स्थल था, जो आज के भीड़ भरे क्षेत्रों गिरिगाम तथा चरनी रोड के बीच में था। इसमें मैं पांच भाइयों तथा चार बहनों के अनाथ परिवार का सबसे छोटा सदस्य था। मेरी मां जीनत-उन-निसा की मृत्यु तब हुई जब मैं मात्र तीन वर्ष का था, तथा मेरे पिता मोईजुद्दीन की मृत्यु तो तब हुई जब मैं एक वर्ष का ही था। हमारे मामा अमीरुद्दीन तैयबजी तथा उनकी निस्संतान पत्नी हामिदा बेगम की स्नेही छाया में हम लोग पले, वे दोनों हम लोगों के लिए किसी भी माता-पिता से अधिक थे। वे अन्य कई अनाथ बच्चों तथा मित्रों एवं संबंधियों के बच्चों के भी अभिभावक थे। कुछ बच्चों में संदेहास्पद गुण भी थे। उस अजीब से मिश्रित परिवार में ऐसा कोई नहीं था, जहां तक मुझे याद है, जिसे पक्षियों में कोई भी रुचि हो, हां (पक्षियों में) संभवतया, त्योहारी पुलाव की सामग्री के रूप में उनकी रुचि रही हो।

'प्रकृति संरक्षण' तब बिरले ही सुनने में आने वाला पद था। तीतर और बटेर खुले रूप से प्रचुर मात्रा में बिकते थे। तीतर एक रुपए में छह से आठ तथा बटेर सोलह से बीस तक मिलते थे, इसलिए त्योहारों तथा छुट्टियों के दिनों में रोज की मुर्गी के स्थान पर ये अधिक आनंद देते थे। मुर्गियां भी एक रुपए में दो या तीन मिलती थीं। गोल तथा चपटी बांस की टोकरियों में पक्षी, खेतवाड़ी-घर में,

जीवित ही लाए जाते थे तथा पारंपरिक रूप (उनके गले में चीरा लगाया जाता था) से ही उनको हलाल किया जाता था । मुझे अच्छे से याद है कि जब मैं दस वर्ष का था तथा मेरा भतीजा सुलेमान जो मुझसे दो साल छोटा था, हम दोनों छिपाकर कुछ 'भाग्यविहीन' पक्षियों को बचा लेते थे तथा पालतू बनाकर तार के छोटे से बाड़े में रखते थे। लकड़ी के खोके तथा तार के बाड़े बनाने में पुराना विश्वस्त रसोईया तथा परिवार के सब काम करने वाला और, सबसे बड़ी बात, हम बच्चों का पक्का दोस्त, सही या गलत काम में भरोसे वाला साथी नानू हमारी मदद करता था। हम लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था कि घर के इतने सारे काम करने के बाद भी, वह कैसे, इन रोजमर्रा के कामों के अलावा हमारे कामों के लिए न केवल समय निकाल लेता था, बल्कि उत्साह तथा प्रसन्नता से इन्हें करता भी था। सारा रसोईघर वह अकेले संभालता था, कम से कम दस व्यक्तियों के लिए रोज दिन में दो बार खाना बनता था। खाने वालों में बढ़ती उम्र के हम लोगों की खुराक भी अच्छी थी। इन कामों में सारे बर्तन मांजना व साफ करना, आटा गूंथना और ढेरों रोटियां सेंकना शामिल था। तब भी नानू हम लोगों को ज्यादा खाने के लिए मजाक-मजाक में उकसाया करता था। वह शर्त लगाकर कहता कि वह ज्यादा तेजी से रोटी बना सकता है या हम लोग ज्यादा तेजी से खा सकते हैं। और रोटियां भी वह जमीन पर बैठकर, लकड़ी के चूल्हे पर सेंकता था।

हम लोग, मैं और सुलेमान, अपना चिड़ियाघर साझे में चलाते थे। हम लोगों को बाड़े के पास बैठकर पक्षियों का व्यवहार तथा गतिविधियां देखने में बहुत आनंद मिलता था। हम लोगों ने अपने पालतू प्रिय पक्षियों को नाम भी दिए थे। स्कूल की छुट्टियों के दिन, बजाय गृहकार्य करने के, पक्षियों के साथ समय बिताने में हमें कहीं ज्यादा आनंद आता था।

हमें उन दिनों प्रतिमाह दो रुपए जेबखर्च के लिए मिलते थे और क्राफर्ड मार्किट के एक हिस्से में चिड़ियां भी बिकती थीं। अपने जेबखर्च के भीतर हम दोनों क्राफर्ड मार्किट की अधिकतम दौड़ लगाया करते थे ताकि नए पक्षियों को अपने संग्रह में जोड़ सकें। शुरू के दिनों में हमारी रुचि प्रमुखतया शिकारी-पक्षियों, यानी भूरे तथा विचित्र तीतर, तथा भूरे वृष्टि और क्षुप बटेर तक ही रहती थी। जन्मदिन या अन्य त्योहारों के बाद जब हम 'धनी' होते थे तब हम एक या दो जोड़े 'भूरे वन-कुक्कुट' (जंगल फाउल) या 'लाल कंटकी कुक्कुट' (रैड स्पर फाउल) ले आते थे। किंतु मैं पक्षियों, अन्य जानवरों या 'पैट्स' को अधिक समय तक कैद करके नहीं रख सका। अनेक असफलताओं तथा निराशाओं को भोगने के बाद मैंने इसका प्रयास छोड़ दिया; और यद्यपि जीवन के बाद के वर्षों में, समय-समय पर, मुझे प्रयोगों के लिए पक्षियों को रखना पड़ा लेकिन मैंने उन्हें प्रयोग के बाद हमेशा मुक्त कर दिया।

हमारे पिता तुल्य मामा जी ने, जिनके साथ हम रहते थे तथा जिन्हें हम लड़के उनकी शिकार उपलब्धियों से प्रभावित होकर अपना हीरो मानते थे, मुझे 'एयर-गन' भेंट दी थी। उस समय मेरी उम्र नौ-दस वर्ष थी। मुझे भली भांति याद है कि वह निकल पट्टित—500 छर्रे—आवर्ती 'डेजी' थी जो उन दिनों बहुत लोकप्रिय थी और गन से ज्यादा खिलौना लगती थी। उसकी सम्मुख 'मक्खी' (साइट) के पीछे एक छेद था, जो नाल के चारों तरफ के खोखले बेलन में जाता था। इस छेद से उस बेलन में 'बी बी-आकार' के 500 सीसे के गोल छर्रे भरे जाते थे। प्रत्येक 'शॉट' के बाद एक हत्थे से स्प्रिंग को दबाया जाता था, जिससे अगला छर्रा खुद ही 'ब्रीच' में चला जाता था। एयर गनों की ही तरह वह कोई शस्त्र नहीं था—वह बहुत ही अपरिशुद्ध तथा मनमानी-सी करने वाली गन थी। 10 मीटर दूर के निशाने को बेधने के लिए उसमें पर्याप्त कौशल लगाने के बाद भी चूक के लिए तैयार रहना पड़ता था। किंतु मेरी गन, मेरे साथियों की एक शॉट गन के स्थान पर नवनिर्मित आवर्ती शॉट गन थी, इसलिए उनकी ईर्ष्या का विषय थी। इतने आधुनिक एवं परिष्कृत शस्त्र का स्वामी होना मेरे लिए गर्व की बात थी जिसका प्रदर्शन करना मुझे अच्छा लगता था। इसकी कमियों के बावजूद, शीघ्र ही मैंने इतनी कुशलता प्राप्त कर ली थी कि मैं गौरैयाओं को मार सकता था जिनकी एक कालोनी हमारे अस्तबल को सदा आबाद रखती थी। घोड़ों के 'नकथैलों' से गिरे दानों, दीवार तथा छतगीर में अनेक छेदों की उपस्थिति उन्हें पर्याप्त जीवन साधन प्रदान करते थे। हम लड़के खुदा से डरने वाले मुस्लिम-बच्चों की तरह पाले गए थे। हमें पता था कि गौरैया का गोश्त वैध गोश्त था और उसे हम तब ही खा सकते थे जब उसे आनुष्ठानिक रूप से 'हलाल' किया जाए। परलोक में दारुण परिणाम भोगने के डर से तथा बड़े बूढ़ों की सामयिक चेतावनियों से हम लोग अधिकांशतः उस अनुष्ठान का पालन करने में धर्मनिष्ठ थे। किंतु नरक के भयानक खतरों के बावजूद, कभी कभार हम लोग धोखा देने के लालच में नानू को मना लेते थे कि उस मृत तथा ठंडे पक्षी को वह हलाल कर दे। नानू ने हमें सिखा दिया था कि सही अंत्येष्टि के बाद गौरैया के साथ कैसा व्यवहार करना है, और हममें से कुछ छोटे बालक थोड़े-से घी तथा मसाले से कढ़ाई में उन गौरैयों को स्वादिष्ट व्यंजन में बदल देते थे।

नौ या दस वर्ष की उम्र में, इसी अवधि में, मैंने अपना प्रथम पक्षी-नोट लिखा था। खेतवाड़ी अस्तबल में गौरैया के शिकार की एक घटना इसका विषय थी। दीवार में लकड़ी की खूंटियां ठोकी गई थीं ताकि (अश्व) साज उन पर टांगे जा सकें। उनमें से एक खूंटी निकल आई थी, इसलिए घोंसला बनाने के लिए एक सूराख उपलब्ध था। एक मादा गौरैया का उसमें घोंसला बनाने की घटना का वर्णन किया गया था। लगभग साठ वर्ष पश्चात जब वह खोजा गया तब अनगढ़ तथा अपूर्ण

होने के बावजूद उस नोट का सारांश 'पंछिनिहारकों के लिए समाचारपत्रक' ('न्यूजलैटर्स फॉर बर्डवाचर्स') में प्रकाशित होने योग्य पाया गया, जो थोड़े-बहुत मूल रूप में इस प्रकार है :—

> '1906/07 जब मादा अंदर अंडों पर बैठी थी तब एक नर गौरैया सूराख के पास कील पर बैठा था। मैंने अस्तबल में खड़ी गाड़ी के पीछे से उस नर को मारा। थोड़ा ही देर में, उस मादा ने एक अन्य नर को बुला लिया। वह नर भी पहरेदार की तरह कील पर बैठा। मैंने उस नर को भी मार दिया। थोड़ी देर में उस मादा के पास एक और नर था जो फिर पहरे पर बैठा। मैंने उस नर को भी मारा। अगले सात दिनों में मैंने उस स्थान पर आठ नर गौरैयों को मार गिराया; और प्रत्येक बार उस मादा को एक नर मिल जाता, मानो नर उसके लिए हमेशा तैयार रहते थे जो मृत पति का स्थान ग्रहण कर लेते थे।'

मुझे इस नोट पर गर्व है। यद्यपि यह नोट मेरी शिकार-प्रतिभा का अभिलेख था, और इसके अन्य उपयोगों की संभावनाओं को समझने की शक्ति भी मुझमें उस समय नहीं थी, पर आज के व्यवहार संबंधी अध्ययन की दृष्टि से यह बहुत सार्थक सिद्ध हुआ है।

हर साल स्कूलों में जब ग्रीष्मावकाश प्रारंभ होते थे, खेतवाड़ी परिवार प्रवास के लिए चेम्बूर जाता था। चेम्बूर आज बंबई महानगर के शोरगुल का अंतरंग हिस्सा है, किंतु उन दिनों वह पश्चिमी घाट की बाहरी पहाड़ियों में स्थित पुनर्जीवित नम-पतझड़ी जंगल का शांत, मनोहर शरण-स्थल था। ट्रॉम्बे पहाड़ी कोई 300 मीटर ऊंची, सर्वाधिक ऊंची, पहाड़ी थी जिस पर हम किशोर पर्वतारोहण का आनंद लिया करते थे। आज वहां भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र का परिसर है। चेम्बूर क्षेत्र में यहां वहां घने उपवन थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात बनाई गई जनता कालोनी के निर्मम ईंधन शिकारियों ने इसे जिब्राल्टर की चट्टान की तरह बिलकुल नंगा कर दिया। शहर की निकटता के बावजूद, उन दिनों का चेम्बूर, मेरी स्मृति में, शांत वन की सुगंधि-सा तथा उल्लेखनीय वन्य जीवन के रोमांच-सा सुरक्षित है। निकटतम रेलवे स्टेशन कुर्ला पैदल या बैलगाड़ी से पांच कि.मी. दूर था। आसपास कोई भी उद्योग, बाजार, शालाएं या अन्य सामाजिक सुविधाएं नहीं थीं। मोटरकारों तथा बसों ने आक्रमण नहीं किया था और वहां कोई भी आवक-जावक नहीं रहता था। वहां बागान विशेषकर प्रसिद्ध आम के बागान, पर्याप्त संख्या में थे। कभी-कभार कोई शहरी व्यक्ति दिख जाता था, वह भी हमारी तरह छुट्टियों वाला प्रवासी होता था या कहीं और रहने वाला भूस्वामी जो अपने आम के बागानों में सप्ताह के अंत में रहने आता था। चेम्बूर अपने उत्कृष्ट हापुस तथा पेयरी आमों के लिए सचमुच

ही विख्यात था। किंतु बाद की भूमि की गगनचुंबी कीमतों के दबाव में, औद्योगिक विकास तथा आवासीय आवश्यकताओं के समक्ष या तो बागान विलुप्त हो गए हैं या हो रहे हैं। एक समय जिन आम्रवृक्षों की स्नेहसिक्त परिचर्या होती थी, आज वे, जो बच गए हैं, बंधा (लोरैन्थस) की परजीवी बढ़त से आक्रांत कृशकाय या भूत की तरह खड़े हैं, और विध्वंसक की कुल्हाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। स्कूल के दिनों की मधुर स्मृति को पुकारने वाली वन्य ध्वनियां बहुत पहले, 'सभ्यता' के क्रूर अतिक्रमण द्वारा, एक-एक कर चुप करा दी गई हैं। शाम से लेकर रात भर आने वाली श्रृगाल की 'हुआ-हुआ', जो मेरी चेम्बूर स्मृति से अभिन्न है, वर्षों पूर्व समाप्त हो गई है; और उस समय के विरल लकड़बग्घे अब तो बिल्कुल ही विलुप्त हो गए हैं। उषाकाल में, जब हम उनींदे-से लेटे होते थे, और अपना आरामदेह बिस्तर नहीं छोड़ना चाहते थे, तब दहियल (मैगपाईरौबिन) का भावपूर्ण गान हमें आनंद से भर देता था—यह आनंद मेरी सबसे पहली और पक्षी-विज्ञान से जुड़ी ऐसी यादें हैं जो मेरी आंखों के तारे के समान सुरक्षित हैं। जब भी मैं, जहां कहीं भी, दहियल का गान सुनता हूं, वे अनुपम चिंतामुक्त स्कूल के ग्रीष्मावकाश के मधुर दिन याद आने लगते हैं।

कार्यहीन तथा वैचारिकताशून्य स्कूल बालकों के समान, जिन्हें घर या स्कूल में सिखाए गए शिकार के नैतिकशास्त्र (जो भी हो) या सरंक्षण का अंतर्बोध न हो, हम लोग 'एयर गन' लेकर ग्राम्य क्षेत्रों में घूमा करते थे। शिकार तथा 'शूटिंग' की विक्टोरियाई मर्दानगी की आभा के परिमंडल को लिए हम लोग सभी छोटे पक्षियों को, जो हम पर विश्वास कर अपने निकट आ जाने देते थे, निशाना बनाते थे। इस विध्वंसात्मक खेल में यदि मैं मधुचूसक या उसके समान छोटे पक्षी को मार गिराता था तब मुझे जो बचकाना गर्व होता था, मुझे याद आता है। खुशी की बात है कि ऐसे अवसर कम ही होते थे। हमारी दुष्ट मंडली के नियमित शिकार कार्यक्रम का एक भाग सूर्यास्त के समय पड़ोस के छोटे-से गांव देवनार जाना होता था। देवनार में भूखे जानवरों से बचाने के लिए धान की पुआल के गट्ठर बनाकर किसान लोग वृक्षों पर रख देते थे। संध्या समय बड़ी संख्या में गौरैयाएं उन गट्ठरों में बसेरा करने आती थीं। वे ठीक अंधेरा होने के समय आकर, गट्ठर में सुरंग बनाकर घुस जाती थीं। हम लोगों की रणनीति होती थी कि उनके आगमन के लिए तैयार रहें तथा केवल नरों को, इसके पहले कि वे सुरंग में गुम हो जाएं, निशाना बनाएं। देवनार गांव से ही हम लोगों के लिए अंडे, सब्जियां तथा दूध आता था। इसलिए देवनार पर हमारा हमला एक पंथ दो काज करता था। हम लोगों को आदेश रहता था, कि झोपड़ी झोपड़ी जाकर अंडे आदि (अंडों का मूल्य एक फड़िया या 4 पैसे या पुराने रुपये का 1/48 वां भाग होता था) अपने शिकार के साथ लाएं। जहां तक मुझे याद आता है, कि इस अवधि में, इसी तरह के गौरैया-शिकार अभियान

में, पक्षियों के विषय में मेरी प्रथम वैज्ञानिक जिज्ञासा जागृत हुई थी।

एक बार जब मेरे शिकार का हलाल होने ही वाला था, मुझे लगा कि उस चिड़िया में कुछ गड़बड़ है। वह मेरे द्वारा मारी गई अनेक मादा गौरैयाओं के ही समान थी किंतु उसके कंठ पर एक पीला चकत्ता-सा था जैसे कि मसाले का दाग हो। उस समय मेरी मुख्य चिंता यही थी कि क्या वह चिड़िया अल्लाह से डरने वाले नन्हें मुसलमान बालक का धर्म सम्मत भोजन थी या नहीं। अपने परलोक को न बिगाड़ने के डर से मैंने उस चिड़िया को हलाल होने से रोका और चिड़िया के शव को अपने घर ले आया ताकि परिवार में इकलौते शिकारी मामा अमीरुद्दीन से आवश्यक फतवा ले सकूं। उन्होंने उस चिड़िया को जांचा परखा और सहमत हुए कि वह कोई नई चिड़िया है जिसे उन्होंने भी पहले कभी नहीं देखा। मामा अमीरुद्दीन 'बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी' के सदस्यों में से थे, जो उसकी सन् 1883 की स्थापना के तुरंत बाद ही बने थे और उसके सक्रिय सदस्य थे। उस समय के 'अवैतनिक-सचिव' तथा मदिरा-व्यापारी 'फिप्सन एंड कंपनी' के मालिक श्री डब्ल्यू. एस. मिलार्ड के नाम उन्होंने मुझे एक परिचय-पत्र दिया जिसमें उन्होंने उस पक्षी की पहचान का अनुरोध किया था। फिप्सन एंड कंपनी के मुख्यालय में ही स्थित इस प्रकार सोसायटी से मेरा पहला संपर्क हुआ था। वह संपर्क पुलकित करने वाला अनुभव था जो मेरी स्मृति में आज भी ताजा है।

संयोग से फोर्ब्सस स्ट्रीट के कोने पर स्थित वह इमारत पहले बंबई उच्च-न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश का निवास-स्थल थी। उन दिनों अंग्रेजों तथा भारतीयों के बीच लगभग कोई सामाजिक संपर्क नहीं होता था, फिर मेरे जैसे बच्चे की तो बात ही क्या ! साहब लोग अपने लिए निर्मित छोटे छोटे 'आरक्षित इंग्लैंडों' में ही रहा करते थे, उनके आरक्षित उत्कृष्ट क्लब भी किसी काले आदमी की छाया से दूषित नहीं होते थे, हां 'छोटा' और 'बड़ा' पैग ढालने वाले 'बेयरा', अपने रंग के बावजूद इसके अपवाद थे। उन लोगों ने अपने चारों ओर अपनी श्रेष्ठता, महत्ता तथा उच्च नैतिकता का प्रभामंडल गढ़ लिया था, यथा, कि वे त्यागपूर्वक 'काले आदमियों का बोझ' अपने कंधों पर ढो रहे थे, आदि आदि। यह मिथक इतनी गहरी जड़ें जमा चुका था कि स्वतंत्रता के चालीस वर्षों बाद भी यह जीवित है! मध्यवर्गीय भारतीय के लिए एक अंग्रेज से, कार्यालयी कारणों के अपवाद सहित, मिलना तथा बात करना दुर्लभ घटना होती थी। एक स्कूली विद्यार्थी तो अंग्रेजी साहबों के दर्शन तब ही कर सकता था जब उसका शैक्षिक-इंस्पैक्टर उसकी कक्षा में सालाना निरीक्षण के लिए पधारता था, शैक्षिक-इंस्पैक्टर हमेशा साहब ही होता था।

जब मैं उस विलक्षण तथा पुरानी दुमंजिली इमारत के ठोस सागौन के भव्य द्वार से प्रवेश कर रहा था, एक पक्के अंग्रेज साहब से आमने-सामने मिलने की

संभावना से उत्पन्न भय से उस समय की लगभग कांपती हुई अपनी कातर मनस्थिति मुझे अभी तक याद है। मेरी पहचान की पूरी जांच पड़ताल के बाद, एक नकचढ़ा खाकी वर्दीधारी सिपाही, मुझे कालीन बिछी सीढ़ियों पर से ले गया। इमारत की दीवारों पर शिकार के विजयोपहारस्वरूप प्राप्त भयानक जंतुओं के मढ़े सिरों की बहुलता भी मेरे डर को बढ़ा रही थी। ऊपर का लकड़ी के फर्श वाला कमरा भी कांच के प्रदर्शन-कोष्ठ वाले डैस्कों में विभिन्न प्रकार की अद्भुत शंख-सीपियों, तितलियों, अंडों तथा अन्य प्राकृतिक-इतिहास-संबंधी कौतुकी वस्तुओं से लबालब भरा था। दीवारें और भी अधिक बाघों तथा तेंदुओं के कपालों, तथा मढ़े हुए सिरों से भरी थीं, तथा उनकी कांच की आंखें आने वाले को घूरकर देखती थीं, और मुंह फाड़कर दहाड़ने वाली मुद्रा में निकले उनके लंबे नुकीले दांत जंगल में जीते जागते जंतुओं से भी अधिक डरावने थे। उन जंतुओं के अवशेषों के गड्डमड्ड जमघट में से तथा फर्श पर बिछे भरे हुए मानो मगरमच्छों तथा सांभरों के खुरों के कालीन पर से ठोकर खाते हुए मुझे ले जाया गया। उन दिनों 'सोसायटी' के संग्रहालय का काम करने वाले इस रद्दी की दुकान जैसे कमरे के एक कोने में, झूलते दरवाजों के पीछे गंजे, सौम्य अवैतनिक सचिव श्री वाल्टर सैम्युएल मिलार्ड अपने डैस्क पर झुके हुए थे।

यह घटना लगभग 1908 की है। बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी से मेरा यह पहला संपर्क मेरे कार्य तथा जीवन को गढ़ने वाला महत्वपूर्ण कारक बना। श्री मिलार्ड के करुणामय, मुग्धकारी व्यवहार के सामने मेरी कातरता जैसे हवा में उड़ गई। तब मुझे अनुभव हुआ कि संभवतया सभी गोरे आदमी नरभक्षी दैत्य नहीं हैं—ऐसे चित्र हमारी किशोर काल्पनिक उड़ानों ने चाय बागानों तथा रेल में हुई दुखद घटनाओं के किस्से सुनकर बनाए थे। जैसे ही श्री मिलार्ड ने अपने अर्धचश्मे के ऊपर से निहारा, मैंने अपना परिचय घबराहट में सुना दिया और तुरंत ही कागज की पुड़िया जिसमें वह रहस्यमय पक्षी था, आगे बढ़ा दी। एक झलक में ही उन्होंने बतलाया कि वह 'सोनकंठी गौरैया' (Petronia xanthocollis) है और मुझे संदर्भ प्रकोष्ठों की ओट ले गए, जहां उन्होंने इस पक्षी के अनेक भरे हुए नमूने, प्रमाणस्वरूप निकाले। प्रकोष्ठ में गौरैया की अन्य अनेक जातियों के नमूने रखे थे जिन्हें उन्होंने निकालकर बड़े धैर्यपूर्वक स्नेह से समझाया, तथा उनमें अंतर भी समझाए। उन्होंने बहुत ही धीरज के साथ एक के बाद दूसरे प्रकोष्ठ खोले और मुझे भारतीय साम्राज्य के सैकड़ों पंछी दिखलाए, और मेरा ऐसा विश्वास है कि इस क्षण ने पक्षियों के प्रति मेरी जिज्ञासा को जैसे अचानक ही आलोकित तथा जाग्रत किया था। उस छोटे-से पुस्तकालय में से उन्होंने मुझे कुछ पक्षियों से संबंधित पुस्तकें पढ़ने को दीं। और इस तरह मेरा परिचय एडवर्ड हैमिल्टन एटकिन की अद्वितीय कालजयी पुस्तकें 'बाम्बे के सुलभ पक्षी' तथा 'एक प्रकृतिविज्ञानी की टोह' से हुआ। इन

पुस्तकों ने मेरी रुचि का संवर्धन किया और मैंने उन्हें पिछले 60 वर्षों में आनंदित होकर प्रशंसा करते हुए बार-बार पढ़ा है। जब 1946 में प्रकाशक ने पहली पुस्तक का नया (संवर्धित) संस्करण 'भारत के सुलभ पक्षी' के नए नाम से प्रकाशित किया, तब मुझसे प्रकाशकों ने उस पर टिप्पणी लिखने का विशेष अनुरोध कर मुझे सम्मानित किया; इस पुस्तक में लेखक की जीवनी का रेखाचित्र मेरे मित्र 'लोके वान थो' ने लिखा है।

श्री मिलार्ड ने पक्षियों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने हेतु मुझे पक्षियों का 'संग्रह' करने के लिए उत्साहित किया, साथ ही उन्होंने पक्षियों के 'चर्मसंस्कार' एवं (जीवों के) नमूने के परिरक्षण तथा उनसे संबंधित समुचित टिप्पणियां बनाने के लिए सोसायटी में ही शिक्षण का प्रबंध भी किया। उन्होंने मेरा परिचय दूसरे कमरे में एक युवा अंग्रेज से कराया जो सोसायटी का ताजा-ताजा 'संग्रहाक' (क्यूरेटर) नियुक्त किया गया था। यह महाशय थे नॉर्मन बॉयड किन्नियर जिन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात ब्रितानी संग्रहालय (प्राकृतिक इतिहास) के पक्षी विभाग में नौकरी की थी तथा अंततः उन्होंने उसी संग्रहालय के निदेशक (1947-50) पद का सम्मान बढ़ाया तथा उन्हें 'नाइटहुड' से सम्मानित किया गया था। दृढ़ स्काट किन्नियर मुझे कुछ अधिक ही अलग रहने वाले तथा अल्पभाषी लगे, और इसलिए हमारे किशोर कल्पना-चित्र के अनुरूप 'पक्का-साहब' ही अधिक लगे। इस अलग रहने वाले चेहरे के पीछे असलियत उनका संकोची स्वभाव था जो वास्तव में दयावान तथा मददगार था, और उन्होंने मेरी नव-उमंग को पुष्ट करने तथा प्रोत्साहन देने के लिए अपने 'क्यूरेटर' के कार्यकाल तथा बाद में ब्रितानी संग्रहालय के पक्षी विभाग के कार्यकाल में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने मुझे दो युवा सहायकों 'एस.एच.प्रेटर' तथा 'पी.एफ.गोम्स' के प्रशिक्षण में रखा। इन दोनों ने मुझे सारे पक्षी संग्रह का अवलोकन करवाया तथा पक्षियों एवं स्तनपायी पशुओं के अध्ययनार्थ संग्रह हेतु उनके चर्मसंस्कार, चर्म में भरना, उनके परिरक्षण की तैयारी तथा नामपत्रण बनाने आदि की कला का शिक्षण दिया। यह दोनों व्यक्ति अपने समस्त कार्यकाल तक सोसायटी में ही कार्यरत रहे। प्रेटर ने, जिनके विषय में तो आगे और भी बतलाऊंगा, सोसायटी के महत्वपूर्ण निर्माण-काल में क्यूरेटर के पद पर कार्य करते हुए पश्चिमी भारत के एंग्लो-इंडियन के नेता के रूप में, संविधान समिति के निर्वाचित सदस्य के रूप में तथा बंबई विधान परिषद के सदस्य के रूप में अपनी सेवानिवृत्ति तक तथा 1948 में इंग्लैंड के आप्रवास तक अनेक कार्यों में ख्याति पाई। पी. एफ. गोम्स एक मोटी चमड़ी के जिद्दी गोअन थे जो अंततः सोसायटी के 'कीट संग्रह' के अधिकारी बने और उस कार्य को उन्होंने मंद गति से ही किया। मुझे उनका स्वच्छ लेख अच्छे से याद है, जो सोसायटी के रजिस्टरों आदि में तथा संदर्भ के नामपत्रों में अभी तक देखा जा सकता है। जब गोम्स मुझे चर्म निकालना सिखाते

थे तब वे 'कंडरा' (tendons) को हमेशा ही 'नासाद्वार' (nostrils) कहते थे, और इसमें Nostril के उच्चारण में वे 't' को पुर्तगाली 'त' की तरह ही ध्वनित करते थे जो मुझे शुरू में अजीब लगता था और अंत तक उनका उच्चारण मेरा मनोविनोद करता रहा।

इस सोनकंठी गौरैया की घटना के संयोग ने मेरे जीवन में ऐसे रास्ते खोल दिए जिनकी मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। उसके बाद मेरे अध्ययन की दिशा क्रमशः मुख्यतया 'प्राकृतिक इतिहास' की पुस्तकों, विशेषकर, पक्षियों की पुस्तकों की ओर अग्रसर हुई। उन दिनों ही क्यों, उसके बाद अनेक वर्षों तक भारतीय पक्षियों पर सचित्र पुस्तकें लगभग नहीं के बराबर थीं, और नौसिखियों के लिए पासपड़ोस के पक्षियों की पहचान करने और उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी बहुत कम सामग्री थी। भारतीयों में पंछी निहारन की 'सामान्य बहिर्मुखी अभिरुचि' के रूप में विकास करने में ऐसी सचित्र पुस्तकों का अभाव, मेरी राय में सबसे बड़ा रोड़ा था। इसलिए प्रारंभिक वर्षों में भारत में पक्षी अध्ययन हेतु योगदान देने वालों में विदेशी-अधिकांशतया ब्रितानी ही थे, जो अपने देश की समय-समादरित 'ब्रितानी प्राकृतिक इतिहास' की परंपरा में बड़े हुए थे और भारत में आने से पहले पक्षीज्ञान से, चाहे अंडों का संग्रह करने वाले स्कूली विद्यार्थियों की तरह ही परिचित थे। उनमें से कुछ ने (1) अपने चारों ओर यहां उपलब्ध पक्षियों की अतुल संपदा से प्रेरणा पाकर, (2) संभवतया अवसरों की सुलभता के कारण, तथा (3) (वनस्थलियों की पृष्ठभूमि वाले) जिलों के अधिकारियों के सामाजिक प्रतिबंधों के कारण एवं (4) सूने जीवन के कारण भी शिकार का शौक बढ़ाया तथा प्राकृतिक इतिहास के अध्ययन को गंभीर अभिरुचि बनाया या, कुछ नहीं तो, पक्षियों के चर्म और अंडों का संग्रह करना शुरू किया। इनमें से अनेक का धीरे-धीरे प्रकृति वैज्ञानिकों या अत्यंत योग्य पक्षिवैज्ञानिकों के रूप में प्रस्फुटन हुआ तथा इन्होंने भारत में वैज्ञानिक प्राकृतिक-इतिहास की नींव डालने में योगदान दिया। जैर्डन की 'बर्ड्स ऑफ इंडिया' (भारत के पक्षी) (1864) तथा इसके बाद ओट्स एवं ब्लैनफर्ड द्वारा चार खंडों में प्रकाशित 'इंडियन एविफौना' (1898) (भारतीय पक्षीजात) पक्षियों की पहचान के लिए पर्याप्त थीं बशर्ते कि आपको पक्षियों की थोड़ी-सी भी प्रारंभिक जानकारी, अन्वेषक की-सी आवश्यक लगन तथा हाथ में एक नमूना हो। फिर भी जैसा निष्ठावान 'पंछी निहारन' हम जानते हैं वैसे, पंछी निहारन के विकास में उन दिनों की सचित्र क्षेत्र-दर्शिकाओं तथा अच्छी दूरबीन का अभाव बड़े रोड़े बने रहे। इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि मेरा पक्षियों में गहरी रुचि लेने का श्रेय उस रहस्यमयी 'सोनचिरैया' (सोनकंठी गौरैया) को तथा तद्जनित घटनाओं की श्रृंखला को ही जाता है।

2
पाठशाला के दिन

मैंने आठ-नौ वर्ष की आयु तक अपनी दो बहनों (अख्तर तथा कमू) के साथ गिरिगांव के मिशन कन्या विद्यालय में ही पढ़ाई की। उसका लंबा चौड़ा नाम था—'जनाना बाइबल मेडिकल मिशन गर्ल्स हाई स्कूल' (संक्षेप में ZBMM) जो आज बदलकर 'क्वीन मेरी'ज हाई स्कूल फॉर गर्ल्स' हो गया है। मेरे जैसे छोटे बालकों को उस विद्यालय में प्रवेश मिल जाता था, किंतु ज्यों ही वे बड़े होते थे उन्हें विद्यालय छोड़ना पड़ता था। बाद में सेंट जेवियर स्कूल में भरती होने का (अन्य बालकों की तरह) जहां उस समय मेरे सभी भाई पढ़ते थे, मेरी सबसे बड़ी खुशी थी 'घोड़ागाड़ी' द्वारा स्कूल आना जाना जो 'धोबी तलाब' में था जिसका नाम उन दिनों 'मनी स्कूल' था। हम पाठशाला के विद्यार्थियों में ट्राम (गाड़ी) की सामने की बैंच पर कब्जा करने की होड़ हमेशा होती थी ताकि ड्राइवर के एकदम पीछे से हम उसके, अपनी कल्पना के अनुसार, मनोहारी कार्यकलापों को निकट से देख सकें। उस आयु में, हमें उसके कार्यकलाप मंत्रमुग्ध करते थे, और इसलिए हमें उससे ईर्ष्या होती थी। घोड़ागाड़ियां दो मापों में आती थीं। एक छोटी जो एक ही घोड़े से चलती थी, और उसका घोड़ा 'विशाल वेलर,' आस्ट्रेलिया से आयात किया जाता था। दूसरी बड़ी ट्राम (गाड़ी) जो दो अरबी घोड़ों से चलती थी, जिनका आयात इराक से किया जाता था। ये घोड़े हमेशा बहुत अच्छी हालत में रखे जाते थे। आस्ट्रेलियाई घोड़े को तेज धूप से बचाने के लिए उसके सिर पर मध्यक ('पिथ') की टोपियां रहती थीं और उनके कान उन टोपियों के दो छेदों में से निकले रहते थे। उन ट्रामों में पांच-छह सीटों वाली लंबी बैंचों की कतार हुआ करती थीं, ये बैंचें, एक के पीछे एक सामने की तरफ मुख किए रहती थीं और प्रवेश बाजू से होता था। ड्राइवर पहली बैंच के आगे खड़ा होता था। उसके चाबुक के निचले छोर पर लोहे का छल्ला होता था जिससे वह टक टक की आवाज पैदाकर, घोड़ों को हांकता था। ट्राम को रोकने के लिए एक घूमने वाला ''ब्रेक-हत्था' होता था जो 'रैचिट' (दांतल चक्र) से जुड़ा होता था जिसका उपयोग वह रास खींचने के साथ-साथ करता था। जहां तक मुझे

याद है उस घोड़ागाड़ी के कोई नियत स्टॉप नहीं थे, जहां यात्री मिलते या उतरना चाहते वह वहीं रोक लेता था। ट्राम की पटरियों से पथिकों तथा हाथगाड़ियों को हटाने के लिए ड्राइवर की एडी के नीचे एक घंटी होती थी। पुल या अन्य चढ़ाव वाले स्थानों पर घोड़ागाड़ी की अश्वशक्ति बढ़ाने के लिए एक अतिरिक्त घोड़ा तैयार रहता था जिसे उसका घोड़ाचालक बड़ी होशियारी से चलती ट्राम में जोत लेता था और ड्राइवर के बाजू में उचककर खड़ा हो जाता था। चढ़ाई चढ़ने के बाद वह घोड़ाचालक कूदकर उतरता, घोड़े को अलग करता और वापस चढ़ाई के नीचे, अगली ट्राम के लिए, पहुंच जाता था।

मुझे ट्राम के किराए के लिए रोज दो आने (बारह पैसे) मिलते थे जिससे मैं स्कूल (मनी स्कूल टर्मिनल) पहुंच जाता था, और वापस ग्रांटरोड जंक्शन ('प्ले हाउस', स्थानीय लोग जिसे 'पिला हाउस' बोलते थे)। यह हमारे मुहल्ले खेतवाड़ी की ट्राम का शीर्ष था। मनी स्कूल टर्मिनल तथा क्राफर्ड मार्केट के बीच एक घोड़ागाड़ी सेवा प्रत्येक पंद्रह मिनट पर चलती थी जहां पर हमें पिधोनी होकर ग्रांटरोड जाने वाली 'दो घोड़ों वाली सेवा-ट्राम' के लिए बदलनी पड़ती थी। पिधोनी में थके घोड़े बदले जाते थे। मेरे साथ अक्सर यह होता था कि टिफिन ब्रेक के दौरान लौटने वाला एक आना (छह पैसे) भेलपुरी को समर्पित कर दिया जाता था जिसके फलस्वरूप मुझे गलियों के शॉर्टकट लेने पर भी उबाऊ तीन किलोमीटर की पदयात्रा करनी पड़ती थी। एक ऐसे ही दिन, मनी स्कूल टर्मिनल पर, ख्यालों में डूबा आदतन ट्राम में चढ़ गया। और जब पैसे देने के लिए जेब में हाथ डाला तब होश आया कि जेब तो खाली कर चुका हूं। उत्तर प्रदेश का दढ़ियल बूढ़ा कंडक्टर सचमुच दयालु था, जैसे कि ट्राम सेवा के अनेक कर्मचारी थे। उसने जब मेरे चेहरे पर परेशानी देखी, और जो मुझे एक नियमित यात्री के रूप में जानता था, तब उसने मुझे बजाय ट्राम से उतारने के जिसकी मुझे आशंका थी, बिना तर्क कुतर्क के एक टिकट दे दिया और सांत्वना देते हुए प्यार से बोला, ''चिंता की कोई बात नहीं बेटे, यह पैसे तुम मुझे कल दे देना।'' यह तो ठीक है कि एक आने के खतरे से उसकी कमर नहीं टूट जाती किंतु आज के धन लोलुप भागदौड़ तथा सर्वव्याप्त असभ्यता के जमाने में खाली जेब वाले छोटे से बच्चे के प्रति इतना दयालु कौन कंडक्टर होगा? उसकी सद्भावना सदा-सदा के लिए मेरे हृदय में अंकित है। उस घटना से हम लोगों के बीच पिता-पुत्र का-सा संबंध बन गया और मैंने उसका लाभ उठाकर अपने भेलपुरी समर्पण की निष्ठा बनाए रखी।

मेरे विद्यालय के जीवन में कुछ विशेष उल्लेखनीय नहीं है, और हम इसके विषय में जितनी कम बात करें, उतना ही बेहतर होगा। अधिकांश विषयों में मैं औसत विद्यार्थी था, भूगोल तथा खेलों में औसत से ऊपर, तथा गणित में औसत से काफी नीचे था। मुझे अंग्रेजी का अच्छा विद्यार्थी माना जाता था और मेरे शिक्षक

मेरे निबंधों को कभी-कभी सारी कक्षा को जोर से पढ़कर सुनाते थे जिससे मुझे काफी खुशी होती थी। बाद में, 1934 में, मैं आश्चर्यचकित था और मुझे विश्वास नहीं हो रहा था जब मुझे पता चला कि हैदराबाद उस्मानिया विश्वविद्यालय के अंग्रेजी के वरिष्ठ प्रोफेसर, अंग्रेज श्री ई.ई. स्पाइट द्वारा चयनित तथा संपादित 'भारतीय लेखकों का अंग्रेजी गद्य' नामक पुस्तक में मेरा लेख भी सम्मिलित था। वह पुस्तक कालेज के विद्यार्थियों के लिए एक सहायक पुस्तक थी और वास्तव में उसका शीर्षक भव्य था, 'इंडियन मास्टर्स आफ इंग्लिश'। उसमें रवींद्रनाथ टैगोर तथा सरोजिनी नायडू मेरे सह-विद्वान प्रख्यात लेखक थे। विद्यालय में परीक्षाओं की जितनी भी बाधाएं आईं उन्हें मैं हमेशा, बिना किसी विशिष्टता के, बस पार ही कर पाया। जब मैं चौथी कक्षा में था, उस समय मुझे 'अच्छे आचरण' के पुरस्कार पर एक पुस्तक भेंट की गई थी जो संभवतः एक भविष्यवाणी कर रही थी, उसका नाम था 'एनिमल फ्रेंड्स' (मित्र जानवर), और सारे विद्यालय जीवन में मुझे यह एक ही पुरस्कार मिला। जो मैदानी-खेल मुझे अधिक पसंद थे, वे थे हाकी, टेनिस तथा बैडमिंटन, जिनमें संभवतया, मैं औसत से थोड़ा ही बेहतर था। मुझे फुटबाल में भी आनंद आता था, और यद्यपि मैंने कभी-कभी क्रिकेट भी खेली, किंतु इन खेलों के भीतर मैं कभी भी पैठ नहीं पाया। फिर भी मुझे तेज क्रिकेट, पांच दिवसीय क्रिकेट मैच नहीं, देखने में मजा आता है। मुझे घुड़सवारी पसंद है किंतु, देहरादून के लघु अंतराल के अतिरिक्त, अपनी अभिलाषा के अनुकूल घुड़सवारी के अवसर नहीं मिले। संभवतया बड़े वन्यजीवों का तथा पक्षियों का शौकिया शिकार मेरा सर्वाधिक प्रिय खेल है और मेरा ऐसा ख्याल है कि इनमें मेरी प्रवीणता औसत से थोड़ी कुछ बेहतर है। मेरे लिए शिकार का भारीपन या उसे मारना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है बाहर का खुलापन तथा वन्यस्थान का आकर्षण, उत्तेजना तथा रोमांच का वातावरण जिसमें कभी-कभार जोखिम का रंग चढ़ जाता है—ये सब मिलकर उस अनुभव को आनंददायक बना देते हैं। खैर, अब पाठशाला वापस चलते हैं।

जब मैं लगभग तेरह चौदह वर्ष का था (1910) मुझे सिरदर्द की पुरानी शिकायत थी, तथा उसके निदान का पता कभी नहीं लग पाया। फिर भी डाक्टरों ने सोचा कि हवा-पानी बदलने से लाभ हो सकता है। विद्यालय से छह माह के अवकाश का नुस्खा उन्होंने लिखा उससे मुझे जो खुशी मिली उसे मैं छिपा न सका। मेरे भाई हामिद और उनकी बीबी शरीफा ने मेरा भार संभालने का दायित्व प्रसन्नतापूर्वक लिया। वे सिंध में रहते थे और सोचा गया कि सिंध की सूखी जलवायु से मुझे स्वास्थ्य लाभ होगा। उस समय हामिद भाई सिंध में 'भूमि-अभिलेख' के सुपरिंटेंडेंट थे तथा हैदराबाद (सिंध) के (भू-सर्वेक्षण) 'तापेदार विद्यालय' के शीर्ष अधिकारी भी, और अपने कार्यों के लिए उन्हें सारे सिंध का ठंड के दिनों में लगातार दौरा करना पड़ता था। वे हैदराबाद शहर के एक छोर पर स्थित 'जेकब किला' नामक

पत्थरों से बने किले के सदृश चित्रोपम इमारत में रहते थे, इसे 1940 के लगभग सिंध को हथियाने के तुरंत बाद जनरल जेकब ने बनवाया था। उस इमारत के विशाल प्रवेश द्वार के दोनों तरफ दांतेदार दीवारों से बनी दो गोल मीनारें थीं तथा ऊपर ही ऊपर एक-दूसरे से एक खुली छत के द्वारा जुड़ी थीं। मेरा कमरा पहली मंजिल में था और स्नानघर उसी मंजिल पर मीनार में था। यह किला मिट्टी की दीवारों से घिरा, पहाड़ी पर नहीं बल्कि एक ऊंचे टीले पर बना था। दीवारों से घिरा विशाल क्षेत्र कांडी तथा बबूल का छोटा मोटा जंगल ही था जो कि कूजिनियों (वार्बलर्स) तथा अन्य छोटे पक्षियों का आदर्श आवास स्थल था। यद्यपि मैंने चेम्बूर में ग्रीष्म अवकाशों में, बया के सुंदर घोंसले देखे थे, वे खजूर के वृक्षों में ललचाती पहुंच के बाहर की ऊंचाइयों पर बनाए जाते थे। उस अहाते में जब मैंने बबूल की नीची शाखों पर बया के घोंसले देखे, वह प्रसन्नता मुझे अभी तक याद है। मैं यहां उन तक आसानी से पहुंचकर उनमें से अंडे आसानी से चुरा सकता था, क्योंकि मैं उन दिनों बड़ा ही व्यग्र अंडे संग्रह करने की धुन में था। हामिद भाई का अर्स नामक एक चपरासी दैत्याकार हब्शी था। शिकार में मदद करना उसका फर्ज था, बंदूकों तथा शिकार के साज-सामान की देखभाल करना उसमें शामिल था। कब कौन शिकार, विशेषकर तीतर, बटेर, हंसक और चाहा, कहां और कब मिलेगा—इसकी जानकारी प्राप्त करने का, शिकार के लिए हंकौओं को इकट्ठा करने का तथा अपने मालिक के दौरों के समय शिकार का सारा बंदोबस्त करने का दायित्व उसने स्वयं ही ले लिया था। दौरों के समय अर्स मेरा सदा का साथी था, वह मुझे शिकार के लिए उकसाता था, और घोंसले खोजने तथा अंडों का संग्रह करने में विशेष मदद करता था।

उस समय की एक घटना मुझे अच्छी तरह से याद है। उस अंधेरी सुबह हम लोग हामिद भाई के टांगे में, हैदराबाद से कुछ मील दूर टांडो हैदर गांव तीतर के शिकार पर जा रहे थे—उषापूर्व के तारों भरे अंधकार में हेली का पुच्छलतारा सिर पर चमक रहा था, और हम लोग सोच रहे थे कि जब 1986 में यह दुबारा आएगा तब क्या हम लोगों में से कोई भी जीवित बचेगा। लेकिन जब मैं अब्दुल अली की संतति की दृढ़ता तथा लंबी आयु देखता हूं (पितामह 114 वर्ष, चाचा 103, चाची 100 तथा बहन 97) तब मुझे संदेह होने लगता है कि यह घटना इतनी अनहोनी न सिद्ध हो जितनी तब लग रही थी।

सन् 1913 में उन रहस्यमय सिरदर्दों के कारण लगभग एक वर्ष तक स्कूल न जा पा सकने के फलस्वरूप मैं बंबई विश्वविद्यालय की मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण अवश्य हुआ, किंतु उस वर्ष के लगभग 3,000 प्रत्याशियों में मेरा नीचे से प्रथम होने का सम्मान मैं थोड़ी-सी दूरी से चूक गया।

यदि थोड़ा-सा पीछे जाएं तब 1908 में मेरी हार्दिक महत्वाकांक्षा बड़ा शिकारी

बनने की थी और यदि संभव हुआ तो प्रसिद्ध शिकारी बनने की भी थी। मेरी अधिकांश पढ़ाई, जो मैंने कभी भी अधिक और गहराई से नहीं की, प्राकृतिक इतिहास तथा शिकार के जोखिम संबंधी लेख या पुस्तकें ही थीं यथा सैंडरसन की 'भारत के वन्य जंतुओं के बीच तेरह वर्ष', कैप्टन ए.आर. ग्लैसफर्ड की 'बंदूक तथा भारतीय जंगलों से रोमांस', थियोडोर रूजवेल्ट की 'अफ्रीकी शिकार के पगचिह्न', और उन्नीसवीं शती के अन्य अनुभवी वृद्ध ब्रितानी शिकारियों की पुस्तकें आदि। ''नाश्ते के पहले दो या तीन गैंडे या बाघ का शिकार'' इस समय अविश्वसनीय लगता है। किंतु पुस्तकों में इस तरह की सुलभ टिप्पणियां यह दर्शाती हैं कि उस समय के वन तथा वन्यजीवन क्या होंगे।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं कि मामा अमीरुद्दीन हमारे हीरो थे और हमारी नजरों में भारतीय शिकार पर उनका प्राधिकार था। उनके अधिकांश पराक्रम विभिन्न भारतीय राज्यों के शिकारी राजाओं के अतिथि के रूप में किए गए थे जो कि राजसी-शैली में संचालित किए जाते थे। और मैं इस विषय में निश्चित नहीं हूं कि उन्होंने कभी शिकार यात्रा का प्रबंध किया हो अथवा अपने द्वारा मारे गए जंतुओं के विषय में अथवा जंगल के विषय में उन्हें कोई विशेष ज्ञान हो। आज की तुलना में उनके आयुध पुरातन लगते हैं। उनके पास एक 12 बोर की 'बिटैज' इंग्लैंड निर्मित दुनाली 'हैमर' बंदूक थी, 'थलसेना, जल-सेना सहकारी समिति' के लिए निर्मित दुनाली 12-बोर तथा 450 'ब्लैक पाउडर' 'एक में दो' राइफल थी, एक सुंदर किंतु प्राचीन 16-बोर दुनाली 'हैमर' बंदूक थी जिसकी नलें दमिश्क इस्पात की थीं, उसमें सोने का गुम्फाक्षरी तथा जड़ाऊ काम था तथा जिसे एक फ्रांसीसी कंपनी ने 1870 में विशेष आदेश देकर बनवाया था, तथा एक 'मार्टीनी हैनरी कैवलरी कार्बाइन 577/450' थी जिसमें 0.25 गोली दागने के लिए अनुकूलन भी लगा था। इनके अतिरिक्त, उनके पास 'वाकिंग स्टिक पिन-फायर' 410 बोर बंदूक थी, एक 32 गेज वाली तथाकथित 'रूक राइफल' थी जो चिकने बोरवाली एक नलिका 'हैमर गन' थी जिसमें से छोटे गोल कारतूस दागे जा सकते थे। इसे भरने के लिए नाल के नीचे लगे अंगुष्ठ लीवर को बाजू में घुमाकर नाल को एक या दो इंच आगे खींचकर, पश्च भाग में कारतूस भरकर नाल को वापस पीछे खींचा जाता था। यही बंदूक थी जो हम कुछ बड़े लड़कों को आवारा कुत्ते-बिल्लियों या कौवे मारने के लिए दी जाती थी। अब सोचता हूं कि हम लोग उस समय, खेतवाड़ी के उस भीड़ वाले पड़ोस में, कितनी लापरवाही से उस बंदूक को चलाते थे, यह आश्चर्यजनक है तथा इसे हमारा सौभाग्य ही समझना चाहिए कि कोई दुर्घटना नहीं घटी। बिना 'हैमर' वाली बंदूकें तथा मैगजीन वाली बंदूकें उस समय उतनी लोकप्रिय नहीं हुई थीं; तथा पुराने सुरक्षा प्रधान शिकारी हैमर-हीन बंदूकों की निंदा करते थे तथा उन्हें निश्चित रूप से खतरनाक मानते थे क्योंकि उनमें बंदूक को

दागने की तैयार स्थिति बतलाने के लिए कोई 'हैमर' दिखते नहीं थे।

राजाओं, बड़े जमींदारों और इसी तरह के गणमान्य एवं असंदिग्ध निष्ठावान व्यक्तियों के अतिरिक्त भारतीयों को शस्त्रों के लिए लाइसेंस कड़े रूप से प्रतिबंधित थे। वे प्रतिष्ठा-प्रतीक माने जाते थे और इसलिए भी उन्हें प्राप्त करने के लिए काफी कुछ करना पड़ता था। लाइसेंस बहुत ही कम दिए जाते थे, वह भी आवेदनकर्ता की आर्थिक स्थिति एवं चरित्र की कड़ी जांच पड़ताल के बाद ही। यद्यपि ये लाइसेंस मात्र 'दिखावे' के लिए भी लिए जाते थे, और यह एक कारण भी आवेदन पत्र में लाइसेंस प्राप्त करने के कारणों में शिकार, और सुरक्षा के साथ लिखा होता था ! 'शांति-न्यायमूर्ति' होने के कारण मामा अमीर युक्ति संगत संख्या में शस्त्र, बिना लाइसेंस तथा फीस के, रखने के अधिकारी थे। इसलिए भारतीय शस्त्र-व्यापारी भी बहुत कम थे, यह व्यापार ब्रितानी कंपनियों के अधिकार में था, यथा, बंबई तथा कलकत्ता के 'आर्मी एंड नेवी स्टोर', 'आई हॉलिस एंड सन' (बंबई), 'आर.बी. रौड्डा एंड कंपनी' तथा 'मैंटन एंड सन' (कलकत्ता)। इन सभी की डाक-सूची में 'शांति-न्यायमूर्तियों' तथा ऐसे ही अन्य व्यक्ति रहते थे जिन्हें वे शस्त्रों, कारतूसों तथा शिकार एवं तंबुओं आदि की सारणियां प्रत्येक वर्ष क्रिसमस के पहले भेजा करते थे। मैं और मेरे समान चचेरे-ममेरे भाई इन सूची पत्रों की टोह में बैठे रहते थे और उनके आते ही उन्हें घोलकर पी जाते थे। हम प्रत्येक नई बंदूक की विशिष्टताएं यथा व्यास, मुखवेग, 'फुट/पाउंड्स' में मारक ऊर्जा, भिन्न प्रकार के बारूद तथा भिन्न कारतूसों के वजन आदि का पूरा अध्ययन करते, एक तरह की 'खिड़की-खरीद' भी करते थे, और इस या उस गुण या नाम की उच्चता पर अंतहीन तर्क-वितर्क तथा बहसें किया करते थे। हम लोगों को अपने प्रिय शस्त्रों के प्रमुख आंकड़े याद रहते थे और उन्हें एक लंबे समय के बाद भी बता सकते थे। बाद के वर्षों में इसी प्रकार का मोह, मेरे लिए, मोटरसाइकिल पर स्थानांतरित हो गया था और मुझे ऐसी करतूतों में बड़ा मजा आता था।

सन् 1917 से प्रारंभ करते हुए जो शस्त्र मैंने समय समय पर रखे, वे थे टेवॉय में निर्मित 'बी एस ए एक नाल 0.410 बंदूक' जिससे मैंने 1927 तक बर्मा तथा भारत में अपना अधिकांश पक्षिसंग्रहण तथा शिकार किया। मेरे 31वें जन्मदिन पर मेरी बीवी तैहमीना ने मुझे लिंकन जैफरीज़ द्वारा निर्मित 'दुनाली, हैमरहीन, निष्कासक 20 बोर शॉटगन' भेंट दी। तभी से 56 वर्ष हुए यह गन मेरी क्षेत्र-साथिन रही, और इस बीच क्षेत्रीय सर्वेक्षणों में हजारों पक्षियों में से अधिकांश का इसी अतिप्रिय शस्त्र की सहायता से संग्रहण किया गया और इसके अतिरिक्त काफी शौकिया शिकार भी। 1918 में मेरे भाई हामिद ने अपने शस्त्रागार में से '0.351 व्यास अर्ध स्वचालित आवर्तक विंचैस्टर राइफल' मुझे भेंट की थी। अनाक्रामक मध्यम शिकार के लिए यह शस्त्र उत्कृष्ट था किंतु कभी कभार यह अचानक फंस जाता

था जो चिंताजनक था। यद्यपि यह राइफिल ज्यादा नहीं फंसती थी किंतु इसकी विश्वसनीयता पर संदेह तो निश्चित था और इसलिए खतरनाक स्थितियों में इस पर निर्भर नहीं किया जा सकता था। 1922 में मैंने इसके बदले में '0.423 (10.5 मि.मी.) मोजर बोल्टैड मैगेजीन राइफल' ले ली जिससे टेवॉय में गौर, तथा भारत में दो बाघ, दो बड़े तेंदुए, अनेक मंदरीछ, सांभर, चीतल, नीलगाय, काला हरिण आदि अधिकांश शिकार किए। 1927 में जब मुझे बी.एन.एच.एस में सहक्यूरेटर का कार्य मिल गया तब मैंने अपने शस्त्रागार में एक आसान, छोटा, परिशुद्ध और परितोषप्रद शस्त्र जोड़ा– '6.5(0.256) मानलिचेर-शूनोएर मैगेजीन कार्बाइन'। कोमलाग्र कारतूसों से यह नीलगाय तथा सांभर जैसे तगड़े जानवरों के लिए भी प्रभावकारी था, तथा निकिल मंडित ठोस कारतूसों से, शाटगन की परास से भी दूर उड़ते क्रौंच, प्रसह पक्षियों जैसे बड़े पक्षियों को कम नुकसान कर, उन्हें नमूने के योग्य रखता हुआ, मारती थी। इसके द्वारा किया नुकसान 0.22 बंदूक से हुए नुकसान के बराबर ही होता था किंतु यह अधिक दूरी तक मार कर सकती थी।

टेवॉय में, बाद के वर्षों में मैंने 0.32 व्यास की कोल्ट स्वचालित पिस्टल के बदले में एक प्रशंसनीय शस्त्र मोजर पिस्टल प्राप्त की, यह प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मन अश्वसेना का शस्त्र था। परंपरागत पिस्टलों की अपेक्षा 12 इंच लंबी नाल के कारण कुछ भारी थी, किंतु जिस काष्ठ होल्स्टर में रखकर इसे कमर से या घोड़े की जीन से लटकाया जाता था, उसमें इसे लगाकर यह एक कार्बाइन के समान कंधे पर से दागी जा सकती थी। दस कारतूसों वाली मैगेजीन के साथ यह अर्धस्वचालित थी और 1,000 मीटर तक की मार कर सकती थी। यह परिशुद्ध पिस्टल निकट दूरियों के लिए अपने बचाव हेतु यद्यपि कम उपयोगी थी, मैंने इसे 150-200 गज की दूरियों पर बहुत प्रभावी पाया। बंबई वापस आने पर मेरे चचेरे भाई, आजीवन मित्र और व्यग्र सहशिकारी आसफ फैजी ने अपनी 0.366 (9.5 मि.मी.) मोजर मैगेजीन राइफल' भेंट की जो कि उल्लेखनीय रूप से बहुकाजी शस्त्र है।

सन् 1909 के लगभग खेतवाड़ी में मेरे समवयस्क लड़कों में जो शिकार तथा अन्य गतिविधियों के लिए आया करते थे उनमें मेरे दूर के भाई इस्कंदर मिर्ज़ा थे। पाकिस्तान के प्रथम मिलिटरी शासन के दौरान उनका सत्ता में अचानक तथा भाग्यशाली उदय, तथा तुरंत ही कलंकित पतन की कहानी में इस दिशा में नवागंतुकों के लिए एक शिक्षा तथा एक चेतावनी है। हम लड़कों में इस्कंदर मिर्ज़ा निश्चित रूप से अच्छा साथी था, सूझबूझवाला, दुस्साहसी तथा हम शरारती लड़कों की सभी चुहलबाजियों में माना हुआ नेता था। उसकी अचूक निशानेबाजी से ईर्ष्या होती थी, जब वह अपनी जैम गन से खेतवाड़ी की छतों पर से किए जा रहे कबूतरों के शिकार में भाग लेता था। वह अन्य अधिकांश खेलों में औसत से बेहतर था और क्रिकेट में विशेष कुशल था। हम लोगों के शनिवारी तथा रविवारी स्कूली क्रिकेट

मैचों में, जो सैंडहर्स्ट रोड के बाजू के खुले मैदान (आज जहां हरकिशन दास अस्पताल है वहां से दूर नहीं) में खेले जाते थे, मुझे अच्छे से याद है कि इस्कंदर की बॉलर के रूप में बड़ी मांग रहती थी क्योंकि वह जिस कौशल तथा रहस्यमय ढंग से अचानक ही करामाती बॉल देता था उससे बैट्समैन को अचंभित कर उसका विकेट ही उड़ा देता था। बाद के जीवन में चालाकी से उसी रहस्यमय ढंग से जब वह राजनैतिक करामात करता होगा तब उसे अवश्य उसका लाभ मिलता होगा। उदारहणार्थ, जब वह खान अब्दुल गफ्फार खान के 'खुदाई खिदमतगार आंदोलन' के दौरान उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रांत में ब्रिटिश राजनैतिक एजेंट था, तब उसने बहुत से राजनैतिक विकेट जीते जिसके फलस्वरूप उसके मालिकों ने उसकी जोरदार प्रशंसा की। हो सकता है कि, विभिन्न क्षेत्रों में, उसकी किसी राजनैतिक करामात से उसका स्वयं का पाकिस्तान का राष्ट्रपति बनने का विकेट उड़ गया। क्रिकेट से ही वह लार्ड विलिंगडन की नजरों में चढ़ा जो स्वयं भी विख्यात क्रिकेटर थे। लार्ड साहब के सरंक्षण तथा प्रभाव से ही 1924 में भारतीय थल सेना के 'किंग कमीशन' अफसरों के प्रशिक्षण के लिए उसका चुनाव सैंडहर्स्ट भेजे जाने वाले भारतीयों के प्रथम बैच में हुआ था। भारतीयों को इस तरह भेजने की इस नवीन पद्धति का भारत के कट्टर ब्रितानियों ने बहुत विरोध किया किंतु भारतीय राष्ट्रवादियों के दबाव के फलस्वरूप इसे स्वीकार करना पड़ा था।

3
बर्मा : 1914-1917

खेतवाड़ी के प्रारंभिक पंछी निहारन के दिनों से ही मैंने प्राणिविज्ञान, विशेषकर पक्षिविज्ञान को ही बड़े होकर अपनी आजीविका बनाने का तथा एक निडर खोजी और बड़ा शिकारी बनने का स्वप्न भी देखा था; बड़ा शिकारी उन दिनों एक सम्माननीय उपाधि थी और एक प्रतिष्ठा प्रतीक भी। उन दिनों मैं अधिकांशतया पक्षी शिकार, विशेषकर 'अपने' जोखिम तथा रोमांचवाले बड़े-शिकार से संबंधित पुस्तकें पढ़ता था। वैसे, मेरी आदत बहुत ज्यादा पढ़ने की नहीं थी। किंतु उन दिनों उस स्तर तक पहुंचने के लिए जहां जैवविज्ञान की शास्त्रीय पढ़ाई विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में प्रारंभ होती थी, प्रत्येक को मैट्रिक पश्चात प्रथम वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा करना पड़ता था। सेंट जेवियर कालेज में प्रारंभिक महीनों में जब मुझे 'लॉगरिदम' तथा इसके समान अन्य पापकृत्यों से जूझना पड़ा तब मुझे लगा कि मैं इस दुर्जेय अवरोध को कभी पार नहीं कर पाऊंगा। मैं अत्यंत दयनीय स्थिति में था और उसमें से बच निकलने की कोई चतुर युक्ति खोज रहा था। सौभाग्य से तभी बर्मा से भाई जाबिर ने एक बचाव-पत्र मामा अमीरुद्दीन को लिखा। जाबिर कैंब्रिज से कृषिविज्ञान में डिप्लोमा प्राप्त करने के पश्चात अगस्त 1910 में बड़ी आशाओं से लौटे थे; तथा कृषि विभाग में कार्य या अन्य उपयुक्त कार्य न मिलने के कारण, निराश होकर उन्होंने रंगून में एक संभ्राता सालाह तैयबजी के साथ व्यवसाय करने का निश्चय कर लिया। उसी समय तेनासैरिम के टेवॉय जिले की टंग्स्टेन (वुल्फ्रम) की खदान में सालाह ने एक हिस्सा लिया था।

उन दिनों टिन तथा टंग्स्टेन खदानों के कारण टेवॉय अचानक महत्वपूर्ण बन गया था और उसकी तरफ (अमेरिका की विख्यात) स्वर्ण-दौड़ (गोल्ड रश) की तरह जोखिम उठाने वाले तथा चोर उचक्के आकर्षित हो रहे थे। संकर कुत्ते और नीच बाजारी कुत्ते सभी जल्दी धनवान बनने के लिए वहां पर संघर्ष और ठेलम ठेल कर रहे थे, धक्कम-धक्का कर घुस रहे थे, आवश्यक नहीं कि यह सब वे सब ईमानदारी से कर रहे थे। सालाह का व्यवसाय रंगून में मुख्यतया लोहे-लंगड़ तथा इंजीनियरी

सामानों की दूकानें थीं जिनके ग्राहक उस समय पनप रही चावल मिलें तथा लकड़ी की मिलें थीं। और मुझे याद है कि उस समय उनका मुख्य आधार बर्मा के लिए 'ग्रिपोली' के चमड़े की किनारी वाले बेल्ट (इनके शानदार विज्ञापन ऐसा ही कहते थे) की विक्रय एजेंसी थी। काम बढ़ने से उनके पास काम करने वालों की कमी थी, इसीलिए उन्होंने जाबिर से पूछा था कि क्या वह टेवॉय में उनकी टंग्स्टेन खदान के उपक्रम में जुड़ना चाहेगा। जाबिर, जो एक साल से काम ढूंढ़ते-ढूंढ़ते बुरी तरह थककर निराश हो गया था, तुरंत ही तैयार हो गया। उसने कैंब्रिज में जो थोड़ी बहुत भूवैज्ञानिकी पढ़ी थी उससे खदान की प्रौद्योगिकी में कुछ मदद मिलने की आशा थी। किंतु जाबिर का पहला लगाव तो कृषिविज्ञान तथा खेतीबाड़ी थी। वह अपना मनपसंद काम न पा सकने के कारण दुखी तथा हताश था, किंतु उसने रंगून का आमंत्रण इस आशा से स्वीकार कर लिया कि उचित समय में वह यथेष्ट धन बचा सकेगा और अपनी खेती कर सकेगा। टंग्स्टेन की खदान का लाइसेंस बर्मा सरकार ने एक बर्मी श्री माडंग लू पे को दिया था जिनके साथ तैयबजी ने हिस्सेदारी की थी। खदान के कार्य के प्रबंध तथा देखभाल के साथ-साथ जाबिर ने टेवॉय नगर में एक और व्यवसाय भी प्रारंभ कर लिया था चूंकि खदान के काम के लिए जाबिर को अक्सर लंबे अर्से के लिए टेवॉय में रुकना ही पड़ता था। टेवॉय नगर जिले का मुख्यालय तथा खदान उद्योग का केंद्र भी था। जाबिर ने निर्माण सामग्री, खदान के उपकरण तथा विकासशील टंग्स्टेन-खदान उद्योग के लिए अन्य उपयोगी वस्तुओं का व्यवसाय शुरू किया था। उनकी दूकान में बड़े कुदाली-फावड़े, खदान की इस्पाती ड्रिल, लहरिएदार लौह चादरें, सीमेंट के बैरल, कीलें, नारियल की रस्सी और इसी तरह के छोटे-मोटे विभिन्न सामान थे। यह सब सामान केंद्रीय बाजार के पास बाजार रोड स्थित एक मकान के निचले कमरे में फर्श पर प्रदर्शित थे। मकान का भूतल उन्होंने बर्मी मुसलमान (ज़रबादी) मकान मालिक माउंग ई चो से किराए पर लिया था। मकान मालिक अपने बड़े परिवार के साथ ऊपर रहता था। उनके परिवार में अक्सर झगड़े होते थे। भूतल का सामने का हिस्सा दूकान था तथा पिछले हिस्से में हम लोग रहते थे। उस मकान के भीतर एक कुआं था। आज साठ वर्षों के बाद भी मुझे उस अप्रिय मकान की फफूंदी गंध याद है।

जाबिर पैदायशी तथा असाध्य आशावादी था। उसे कोई भी ईमानदार काम करने में—चाहे वह अधिक संवेदनशील व्यक्ति तथा घमंडियों को कितना भी असम्माननीय या अटपटा लगे—कोई हिचक नहीं होती थी और न झूठा घमंड होता था। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह उसका धुंधले भविष्य में अपने खेत का स्वप्न था जिसे उसने सच बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया था, जिसने उसे लोहे-लंगड़ की दुकान खोलने को विवश किया था। जब तक खदानें फल-फूल रही थीं, उसका उद्देश्य पूरे होने के आसार भी अच्छे नजर आ रहे थे, किंतु कुछ

'आनों' (पैसों) के लिए आधा किलोग्राम कीलों को तौलना, पुड़िया में बांधना तथा फुटकर बेचना उस सरीखे व्यक्ति के चरित्र में, जो उस तरह पाला गया, शिक्षित किया गया तथा बौद्धिक पृष्ठभूमि लेकर बड़ा हुआ था, असामान्य जिद्दीपन की मांग करता था।

इस तरह के हालात में जाबिर ने मामा अमीरुद्दीन को पत्र लिखा था और सुझाव दिया था कि यदि मैं अपनी कालेज की पढ़ाई पूरी करने के लिए विशेष रूप से उत्साहित नहीं था तब वह मुझे अपनी नई दूकान में हिस्सा देने को तैयार था बशर्ते कि मैं तुरंत ही उसके पास टेवॉय पहुंच जाऊं। बचपन से ही मेरे मन में दूकान तथा दूकानदारों के लिए व्यवसाय तथा व्यवसायियों की अपेक्षा कम सम्मान था, चाहे मैं इनके बीच का अंतर समझा न पाऊं।

जाबिर का पत्र ऐसे नाजुक समय में आया जब मैं 'लॉगरिदम' तथा उच्च बीजगणित से छुटकारा पाने के लिए कोई दीर्घकालीन रास्ता आकुलता से खोज रहा था। और मैंने सहर्ष ही कालेज-शिक्षा से विदा मांग ली तथा व्यवसाय के लिए प्रयाण की तैयारी की। यह जानते हुए कि मेरे इस कार्य से मेरा प्राणिशास्त्री बनने का स्वप्न टूट जाएगा, मैं तनिक भी विचलित नहीं था, कम से कम उस समय, क्योंकि कालेज में गणित ने मुझे अत्यधिक निराश कर दिया था। यह सब सन् 1914 में हुआ जिस समय मैं कोई अठारह वर्ष का था और विश्वविद्यालय के प्रथम-वर्षीय पाठ्यक्रम से आठ महीने बुरी तरह जूझ चुका था। सन् 1914 की सितंबर को मैं कलकत्ता होते हुए रंगून के लिए रवाना हुआ। उसके एक माह पूर्व ही प्रथम विश्वयुद्ध का तांडव शुरू हुआ था। हमारे ब्रितानी मालिकों ने, हमें, युद्ध में हमारी इच्छा-अनिच्छा के बीच, शामिल कर लिया था; इस छलपूर्ण आश्वासन के साथ ही ब्रितानी सम्राट के प्रति, उनके कठिन समय में, हमारी निष्ठा से प्रसन्न होकर हमें 'स्व-राज्य' का पारितोषक मिलेगा। बंगाल की खाड़ी में, बहुचर्चित जर्मन युद्धपोत ('क्रूजर') 'एम्डैन', नौवहन के साथ वीरोचित उदारतापूर्वक खिलवाड़ कर रहा था--जहाजों को डुबाता और यात्रियों को बचाता। राडार के विचार का उदय भी नहीं हुआ था, रेडियो भी उपलब्ध नहीं था, हां बेतार अपनी शैशव अवस्था में था। इस सबने, ऐसे समय में, रंगून की नौ-यात्रा के रोमांच को और भी बढ़ा दिया था। प्रतिदिन 'एम्डैन' के जादुई करामातों की ताजी अफवाहें तथा अद्भुत कहानियां अवतरित होती थीं--'एम्डैन' दो या तीन दूरस्थ स्थानों में अचानक और एक साथ प्रकट हो जाता था और विध्वंस के बाद अचानक गायब हो जाता था, उसका कार्य था तटीय नगरों पर बमबारी करना, यात्रियों को बचाकर जहाजों को डुबाना। इस तरह एक से दूसरे को बतलाने की प्रक्रिया में इन कथाओं का 'अद्भुत-रस' बढ़ता ही जाता था और एम्डैन के विषय में ऐसी कथाओं के एक भंडार का निर्माण हो गया था जिससे उसका प्रभामंडल और भी प्रदीप्त होता जाता था। इसके साथ ही

यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि एम्डैन का कमांडर कैप्टैन शिमट निस्संदेह निर्भय, बहादुर तथा वीरोचित उदार शत्रु था। यद्यपि उस समय जब मैं रंगून जा रहा था, ऐसा विश्वास किया जाता था कि 'एम्डैन' बंगाल की खाड़ी में सक्रिय था, और जहाज पर से ही एक या दो बार संदिग्ध जहाजों के दिखने की डराने वाली अफवाहें उड़ी थीं। हम लोगों की यात्रा निरापद रही, हां मानसून के अंतिम दौर में खाड़ी क्षुब्ध थी। नित्य की जहाज-ड्रिल में उपस्थिति पूरी रखने के लिए इन झूठी चेतावनियों तथा अफवाहों में मुझे कैप्टन की साजिश नजर आई और वह सफल भी रही।

कलकत्ता-रंगून पथ पर एक संतति से चलने वाली अनुभवी ब्रिटिश-इंडिया वाष्पचालित डाक-नौका पर रंगून-नदी के ज्वारीय मुहाने पर एक 'पायलट' नौचालन करने आया। नदी में हम लोगों ने धीमे ही रंगून नदी में प्रवेश किया, अपने रास्ते से अन्य वाष्प नौकाओं तथा सम्पनों (चीनी नौकाओं) और धान ढोते बजरों को हटाने के लिए भोंपू बजाते हुए चले। तटों पर लहरित लौहचादरी छप्परों वाली चावल-मिलों तथा लकड़ी-मिलों को देखा, उनके साथ ही तटों पर भाटों की दलदली मिट्टी में बिखरे तथा धंसे हुए सागौन के विशाल लट्ठों को भी देखा जो ऊपर नदी से बजरों द्वारा लाए गए थे और नए रूपों में आने के लिए हाथियों की प्रतीक्षा में पड़े थे।

कलकत्ते वाली यात्रा में 40 घंटे लगे थे, वह यात्रा मेरे लिए एक नवीन 'एडवेंचर' (साहसिकता) थी। इसके पूर्व समुद्री यात्रा का मेरा अनुभव कभी कभार मुंबई बंदर (पत्तन, 'पोर्ट') से छुट्टियों के लिए 'किहिम' जाना था; जहाज पर रहना, खाना तथा सोना एक नयापन तो लिए था। किंतु उसमें न तो कुछ स्मरणीय हुआ और न ही वह अत्यंत सुखप्रद था क्योंकि हम 'यूरोपीय-डैक'[1] श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। 'त्सीकाई माडंग ताडले' जहाज-घाट पर हमें लेने के लिए बहन अख्तर तथा बहनोई सालाह आए थे। कुछ समय पहले ही उनकी सारी संपत्ति आग में जल गई थी। और इसलिए वे ब्रुकिंग स्ट्रीट की एक साधारण-सी एंग्लो-इंडियन बस्ती में कामचलाऊ फ्लैट में बड़ी तंगी में रह रहे थे। उनके साथ उनके एक साल का एक जुड़वां बच्चा नादिर भी था और दूसरा सहोदर अहसान बड़ौदा में अपने दादा दादी अब्बास तथा अमीना के पास था, जो अपने माता पिता के पास रंगून दो-तीन साल बाद ही आ सका था जब वे एक बेहतर बस्ती के कम तंग मकान में रहने लगे थे। सन् 1914 से 1923 तक छोटो-सा पृष्ठजल कस्बे टेवॉय को मेरा निवासस्थल

1. इस श्रेणी में यूरोपीय सुविधाएं थीं इसलिए यह यूरोपियों, यूरेशियों तथा अन्य पाश्चात्य आदतों वालों के लिए सुरक्षित था। इसका किराया साधारण 'डैक' किराए से कुछ अधिक था किंतु द्वितीय श्रेणी के किराए से कुछ कम था।

बनना था, हां अक्तूबर 1917 से फरवरी 1919 तक के पंद्रह महीने मुंबई की वापसी एक महत्वपूर्ण घटना सिद्ध हुई, संभवतया मेरे जीवन तथा आजीविका के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधि। कुछ दिनों रंगून में 'जलवायुमेल' या जैसा कि आजकल कहते हैं। देशानुकूलन के बाद मैंने टेवॉय के लिए प्रस्थान किया। पहले तो बी.आई.एस.एन.कं. की पैडल वाली पुरातन वाष्प नौका से टेवॉय नदी के मुहाने तक पहुंचने में 24 घंटे लगे। यह पैनांग-यात्रा की साप्ताहिक सेवा थी और ये पैडलित नौकाएं अपने काल के अंतिम चरण में थीं। इसके बाद 'थैंग्युआ' नामक आधुनिक छोटी किंतु तेज वाष्प नौका से प्रतिप्रवाह चलकर दो घंटे में टेवॉय पहुंचे। इसमें हम दलदली संकरी खाड़ियों से गुजरे जिनके दोनों तटों पर घने कच्छ-वृक्ष तथा 'नेपा' ताड़ थे और दूर धान के खेत लहलहा रहे थे। सन् 1870 के ब्रितानी कब्जे के कुछ वर्षों बाद तक तेनाश्रिम अपराधियों का, अंदमान की तरह, अधिनिवास था जिसमें मुख्यतया बर्मी, चीनी तथा भारतीय कैदियों को आबाद किया जाता था। जेल से छूटने के बाद इनमें से अनेक ने बर्मी औरतों से विवाह कर उसे ही अपना निवासस्थल बना लिया था। इनमें से कुछ ने तो अपने को सुधार लिया था और संभ्रांत नागरिक बन गए थे, जबकि अनेक अपने कृत्यों से अपने विगत इतिहास को ही प्रमाणित कर रहे थे। खदानों के विस्फोट के बाद टेवॉय तरह-तरह के धोखेबाज, धूर्त तथा बदमाश आदि निकृष्टतम मनुष्यों का अड्डा बन गया था।

पहले कुछ महीने तो मैंने, अपने वरिष्ठ साझीदार तथा भाई जाबिर से लोहे-लंगड़ की दूकानदारी, दफ्तर की कागजी कार्यवाही, टाइपिंग तथा व्यापार के गुर सीखे। हम लोगों की कंपनी 'जे.ए.अली ब्रदर्स एंड कं.' नई नई बनी थी। भाई बहुत ही विवेकशील और साथ ही कड़ाई से काम करवाने वाले थे। अब मैं उनसे खुलने लगा और सप्ताहांतों में जाबिर की सफेद घोड़ी लेकर मीलों घूमने निकल जाता था—मित्रों के फलों के बगीचों तथा रबर-वनों में मुझे आनंद आता था और साथ-साथ पंछी निहारन का निराला आनंद भी। उस समय मेरे पास दूरबीन नहीं थी, किंतु एक तो आंखें नव-युवा थीं और दूसरे मैं पंछी निहारन में नौसिखिया ही था, इसलिए 'दूरबीन-विहीनता' ने कोई मुश्किल पैदा नहीं की। उन प्रारंभिक दिनों में मैं बर्मी पंछियों से इतना अनभिज्ञ था कि सुलभ पक्षियों की भी पहचान नहीं थी। इसलिए पक्षियों की पहचान गुत्थी ही बनी रहती थी क्योंकि एक तो कोई मददगार नहीं था और दूसरे मेरे पास जो पक्षिसंबंधी एक ही पुस्तक थी—मरे की 'भारत के पक्षी'—उसकी अनुपयुक्तता उसके घटिया चित्रों से और बढ़ जाती थी। तब भी अपने आप भुगतते हुए सीखने का आनंद ही कुछ और है; उसमें निहित असफलता जनित निराशा के बाद भी वह अंततः गहराई से ज्ञान देने वाला तथा संतोष देने वाला होता है। टेवॉय जिले के वन्य जीवों, विशेषकर पक्षियों की समृद्धि तथा वैविध्य मंत्रमुग्ध करने वाला था। मेरे लिए वह सभी नवीन था और वहां मैंने अपना एक

संदर्भ-संग्रह बनाना शुरू कर दिया था। वहां कठफोड़ों की जाति की बहुलता अद्भुत थी और जिस जाति ने मेरा ध्यान सबसे पहले आकर्षित किया वह थी काला-पांडु कठफोड़ा[1] जो भारतीय 'हृदयांकित'[2] से कितनी समानता रखती थी और तब भी कितनी भिन्न थी। बहुरंगी 'चोड़-चंचुओं' (ब्रॉडबिल) की नवीनता आह्लादकारी थी। किंतु 'सितपंखी कलनीलकंठ'[3] का मेरा प्रथम दर्शन सर्वाधिक स्मरणीय है क्योंकि वह भारतीय नीलकंठों से नितांत भिन्न है। यह भी अजीब है कि कितनी नगण्य घटनाएं स्मृति कोश में किस तरह सुरक्षित रहती हैं—साठ वर्षों पश्चात आज तक मुझे वह वृक्ष अपने पूरे विवरण सहित, उसका पास-पड़ोस, वह शाखा तथा उस पक्षी के बैठने की मुद्रा स्पष्ट याद है।

विशाल हृदय, मददगार तथा हितैषी जे.सी. हॉपवुड की खोज मैंने आकस्मिक ही कर ली थी, वे उस समय वहां 'साम्राज्य वन सेवा' में वन मंडलाधिकारी थे। स्टुअर्ट बेकर उस सयम 'ब्रितानी भारत के जीव जंतु—पक्षी' के द्वितीय संस्करण पर कार्य कर रहे थे। स्टुअर्ट बेकर के लिए हॉपवुड, जो बर्मी पक्षियों के जानकार थे, स्वयं पक्षियों के नमूने, घोंसले तथा अंडों का संग्रह कर रहे थे। बिहार के पक्षियों के प्रामाणिक जानकार चार्ल्स एम. इंग्लिस के साथ मेरा थोड़ा-बहुत पत्राचार था। मैं इंग्लिस से जानकारी तथा नमूनों की अदला बदली अक्सर किया करता था। मेरे टेवॉय संग्रह के कुछ नमूने, संभवतया, अभी तक, इंग्लिस संग्रहालय में हैं, जो 1954 में उनकी मृत्यु के पश्चात यहां वहां बंट गया था, और जिसका अधिकांश भाग डा. डिल्लन रिप्ली ने येल विश्वविद्यालय के प्राणिविज्ञानी संग्रहालय के लिए खरीदा था। डा. रिप्ली उस समय येल विश्वविद्यालय में प्राणिविज्ञान के प्रोफेसर थे। तब भी मेरा पक्षिसंबंधी कार्य, 1914 से 1917 की मेरी बर्मी प्रथम 'इनिंग्ज' के दौरान तथा मेरे विधिवत 1919 के प्राणिविज्ञान के शिक्षण तक छुटपुट तथा नौसिखियाई ही रहा।

लोहे-लंगड़ तथा मशीनों के फुटकर व्यापार तथा खदानों के टिन तथा टंग्स्टेन के काम के अतिरिक्त 'जे.ए.अली ब्रदर्स' के व्यवसाय में दो और कार्य भी थे—खनिज तथा छोटे-मोटे निर्माताओं से धूम्रित कच्ची रबर चादरों का क्रय-विक्रय कर बड़े व्यवसायियों को बेचना। उस समय के युद्धकालीन डगमग बाजार में रबर वाला काम सट्टेबाजी की तरह ही था।

नवंबर, 1915 में जाबिर जब विवाह कराने दो-तीन माह के लिए भारत गए तब मैं टेवॉय के व्यवसाय की देखभाल के लिए अकेला ही था। विवाह के बाद

1. (ब्लैक एंड बफ, Meiglyptes jugularis)
2. (हार्टस्पॉटेड, Hemicircus Canente)
3. (व्हाइट विंग्ड ब्लैक जे) (Platysmurus Leucopterus)

अपना घर बसाने के लिए, जाबिर के मुंबई प्रस्थान से पूर्व ही हम लोगों ने बाजार-रोड की दूकान के धुंधले पिछवाड़े हिस्से को छोड़कर, शहर के बाहरी और अधिक मनोहर क्षेत्र में एक मंजिला मकान किराए पर ले लिया था। जिसमें दीवारें लकड़ी की तथा छत लकड़पट्टियों की थी। यद्यपि इस मकान में बगीचा नहीं था तथा प्रवेश सीधे सड़क से होता था लेकिन इसके सामने खुले धान के खेत थे, जिनके पीछे क्षितिज पर हरी भरी पहाड़ियां थीं; यह मकान पिछले 'बदबूदार अस्तबल' की तुलना में कहीं अधिक आनंददायक था। जब मेरी भाभी सफिया, वरिष्ठ बदरुद्दीन तैयब की बेटी, उस मकान में आईं तो उनके महिला-स्पर्श ने उस मकान को स्नेहमय तथा सुखद घर में बदल दिया। 1921 में जाबिर तथा उसकी पत्नी टेवॉय छोड़कर रंगून में लोहे-लंगड़ के व्यापार के लिए एक शाखा स्थापित करने चले गए; ऐसा टेवॉय की खदानों के कारोबार की मंदी के कारण करना पड़ा। रंगून में जाबिर के व्यापारी-साझेदार तथा वित्तदाता ('बलूची पी डबल्यू डी कांट्रैक्टर्स' की कंपनी थी) 'उस्मान मुस्तिखान एंड कं.' थे। मैं और मेरी पत्नी तैहमीना इस घर में 1923 तक बहुत सुख से रहे।

थोड़े ही दिनों में जाबिर अपनी पत्नी तथा एक नए साझेदार के साथ, रंगून-शाखा हेतु यूरोप तथा यूएसए में व्यावसायिक संपर्क स्थापित करने के लिए ब्रिटेन गए। जाबिर के साथ जो साझेदार गए थे वे युवा यूसुफ खान थे जो तीनों मुस्तिखान भाइयों में सर्वाधिक शिक्षित एवं तर्कशील तथा मधुर और रंगून के व्यापार में वास्तविक साझेदार थे। लंदन पहुंचने के कुछ ही दिनों बाद, दुर्भाग्य से यूसुफ खान को घातक हृदयाघात हुआ जिसके फलस्वरूप व्यवसाय-कार्य की सारी योजनाएं मिट्टी में मिल गईं और जाबिर खाली हाथ रंगून लौट आए। यूसुफ खान की मृत्यु के बाद मुस्तिखान भाइयों ने लोहे-लंगड़ के साझीदार-व्यवसाय में रुचि लेना बंद कर दिया। वह कार्य वास्तव में ठीक से शुरू ही नहीं हो पाया। जाबिर ने देखा कि दोनों मुस्तिखान भाई सहयोग नहीं दे रहे, इसलिए एक वर्ष पूरी किंतु असफल कोशिश के बाद उन्होंने वह काम छोड़ दिया। 1923 में वे भारत लौट आए और अपने खेती-बाड़ी के पुराने सपने को साकार बनाने में लग गए। उनके आशावाद, दृढ़ निश्चय और निर्मम परिश्रम से अंततः उनका सपना साकार हुआ।

जाबिर और सफिया के टेवॉय छोड़ने के दो वर्ष बाद, मैं और मेरी पत्नी एक सुहावनी तथा अधिक आरामदेह कुटिया में रहने लगे। वह कुटिया उस कस्बे के अधिक संभ्रांत भाग—सिविल लाइंस में थी, जो कस्बे के बाहरी क्षेत्र में था; उस कुटी में विशाल मैदान तथा कुछ छायादार काजू के वृक्ष भी थे। वह कुटी नीचे की नमी से बचने के लिए खंभों पर बनाई गई थी और उसकी बनावट आधी-पक्की थी, हां उसका अभिकल्पन कुशलता से किया गया था तथा वह आकर्षक थी। उसकी दीवारें एसबैस्टस-सीमेंट की चादरों की बनी थीं तथा छत लकड़पट्टियों की। इस

मकान के मैदान का तैहमीना ने सब्जी का बाग लगाकर तथा घरेलू पोल्ट्री बनाकर पूरा लाभ उठाया। और शीघ्र ही हमें स्वादिष्ट भुनी बत्तखें तथा नरम हरे मटर भोजन में मिलने लगे। हमने जंगल से बटोरे अंडों से निकले 'बर्मी सिल्वर फैजैंट' भी पाले, इसके अतिरिक्त शैशव अवस्था से लालन-पालन कर हमने तेंदुआ बिल्ली[1] तरु छछूंदर[2], उड़न निशाकपि[3], सितकिनार कल धनेश[4] पाले थे, और एक संभ्रांत मादाश्वान 'जिप' तथा सज्जन नर श्वान 'जनरल डायर' तो घर में ही थे। श्रीमान श्वान जनरल डायर का व्यवहार अन्य साथियों के साथ अपने प्रसिद्ध नामधारी—जलियांवाला बाग के हीरो—की ही तरह था। भाई हामिद और उनकी पत्नी शरीफा ने इसी कुटी में एक सप्ताह हमारे साथ बहुत आनंदपूर्वक बिताया और तैहमीना उनके साथ रंगून होते हुए बंबई वापस लौट गई क्योंकि इमारती लकड़ी के जोखिम भरे उद्यम के असफल होने पर हमने टेवॉय के व्यवसाय को बंद करने का निश्चय कर लिया था। बी.आई.एस.एन.कं. (नौवहन कं.) रंगून के दैनिक समाचारपत्रों में प्रथम श्रेणी के यात्रियों के नाम प्रकाशित करवाया करती थी। कलकत्ता के यात्रियों की सूची में श्री हामिद अली और तीन श्रीमती अली के नाम पढ़कर मुझे बहुत हंसी आई, इसे पढ़कर लोग अवश्य समझ गए होंगे श्री हामिद अली सच्चे मुस्लिम हैं ! ऐसा लगता है कि इस यात्रा के लिए जाबिर की पत्नी सफिया ने शरीफा तथा तैहमीना का संग ले लिया होगा और इस तरह परिवार की संख्या बढ़ाई होगी।

अपने व्यवसाय का समापन करते तक मैं 'टेवॉय एशियन क्लब' के एक कमरे में रहने लगा था, बिना इच्छा के इसका स्वामित्व मेरे गले पड़ गया था। केवल इसलिए कि उसके 'बंधक' की राशि मैंने बैंक को चुकाई थी। कुछ समय से प्रस्थान तक मैं 'टेवॉय खेलकूद संस्था' का सचिव था जो कि वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय फुटबाल क्लब था और जिसे हम लोगों ने कुछ वर्ष पहले ही प्रारंभ किया था। मेरी बनाई इस टीम में सर्वाधिक उत्साही खिलाड़ियों में एक सुहृदय, पूर्ण असामान्य तथा सनकी आई.सी.एस. अंग्रेज एफ.डब्ल्यू. स्कॉट थे जो उस समय तेनाश्रिम संभाग के 'पीठ न्यायाधीश' थे। उन्होंने कट्टरतापूर्वक फुटबाल मैदान की, अनधिकृत चलने वालों से सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वयं ही ले रखी थी। ऐसे अनधिकृत लोगों में अधिकांश दूधवाले थे जो घास वाले 'शॉर्टकट' का उपयोग करते थे। यदि स्कॉट उन्हें देखते तो गुस्से से उनका पीछा करते थे और यदि वे उसे पकड़ने में सफल होते तो उसकी पिटाई तक वे खुद ही करते थे। कचहरी लगने से पूर्व, एक सुबह वे हांफते हुए

---

1. (लैपर्ड कैट, *Felis bengalensis*)
2. (ट्री श्रू, *Tupaia glis*)
3. (फ्लाइंग लेम्यूर, Galleopithecus volans),
4. (ग्रेट पाइड हार्नबिल, buceros bicornis)

मेरे कमरे में आए और मुझसे दस सेर दूध की कीमत पूछी। उनके सनकीपन से परिचित होते हुए भी यह माजरा मेरी समझ में नहीं आया। कार से कचहरी जाते समय फुटबाल मैदान के पास से जाते समय उन्होंने एक ग्वाले को हाथ में बाल्टी ले जाते हुए देख लिया। उन्होंने कार तुरंत रोकी और कूदकर उस ग्वाले का पीछा किया। उस ग्वाले ने भयातुर हो बाल्टी हाथ से छोड़ी और सिर पर पैर रखकर भागा। स्कॉट ने उसकी बाल्टी का सारा दूध जमीन पर उंडेल दिया और अब वे उसकी क्षतिपूर्ति करना चाहते थे ! एक और समय, कचहरी से लौटते समय स्कॉट मेरे कमरे में घुसे; उनका चेहरा पीला पड़ गया था, मन विक्षुब्ध था और वे अत्यंत दुखी थे, तुरंत ही वे एक आरामकुर्सी पर धम से बैठ गए। वे भावावेश में लगभग कांप रहे थे। उन्होंने बतलाया कि अभी अभी वे एक बर्मी डाकू को हत्या के आरोप में मृत्युदंड देकर आ रहे हैं। पुलिस द्वारा ले जाने से पूर्व उससे उसकी अंतिम इच्छा पूछी गई। अपने मृत्यु दंड को सुनने के बाद भी वह हत्यारा बिलकुल अविचलित था और बड़ी शांति से उसने उत्तर दिया कि वह एक दुरियन् (एक प्रकार का फल) खाना चाहेगा ! दंड देने वाले तथा दंड पाने वाले की प्रतिक्रियाओं में जो विषमता थी, वह मानव स्वभाव को उजागर करने वाली घटना थी।

4
बंबई में छुट्टियां और शादी

अपनी नियमित शिक्षा को अधूरा छोड़कर, अठारह वर्ष की कच्ची आयु में मैंने अपने को व्यवसाय में झोंक दिया था लेकिन उसमें भी मुझे कोई ट्रेनिंग नहीं दी गई थी और न ही मेरा रुझान उस तरफ था। दो ही वर्षों में मुझे बेचैनी होने लगी थी। मेरा गृह-अवकाश सन् 1917 के अंत में आने वाला था। वरिष्ठ तैयबजी की सलाह से यह तय किया गया कि मैं अपने बंबई (गृह)-अवकाश को बढ़ाऊं और 'डावर वाणिज्य कालेज' में एक वर्ष की 'वाणिज्य विधि तथा लेखाशास्त्र' की नियमित शिक्षा लूं। एक तरह से यह ऐसा श्राप था जो वरदान सिद्ध हुआ। सेंट जेवियर कालेज में रिवरैंड फादर ब्लैटर जीव विज्ञान विभाग के निदेशक थे। जिन्होंने मेरे असली रुझान का पता शीघ्र ही लगा लिया था; उनकी सतत प्रेरणा तथा प्रोत्साहन के कारण उसी एक वर्ष में मैंने प्राणिविज्ञान में बी.एससी. (उन दिनों बी.ए. आनर्स) पाठ्यक्रम को प्रोफेसर जैल पी.मुल्लन के स्फूर्तिप्रद शिक्षण की कृपा से सफलतापूर्वक पूरा कर लिया। प्रोफेसर मुल्लन विलक्षण व्यक्ति तथा प्रशंसनीय शिक्षक थे, जो 1953 में अपनी मृत्यु तक मेरे प्रमुख मित्र बने रहे।

सेंट जेवियर कालेज में प्राणिविज्ञान के पाठ्यक्रम से मेरा परिचय रटंतू किस्म की एक पतली-सी पाठ्यपुस्तक 'कालेज विद्यार्थियों के लिए जानवरों के प्रकार' से हुआ। इसका आरंभ ही मानो गर्जन करती बमबारी से होता है, जो जीवविज्ञान के लिए मेरे से भी अधिक उत्साह वाले को धराशायी कर दे, किंतु पुस्तक के लेखक स्वयं हमें पढ़ा रहे थे। पुस्तक के पहले अध्याय 'एमीबा' का पहला वाक्य (मुझे कितनी अच्छी तरह से अभी तक याद है) इस तरह था—'एमीबा लोबोसा गण का एक-कोशीय जीव है, इस गण के जीवों के रूप सरल होते हैं जिनके कुंठित पादाभ प्रशाखन नहीं करते।' क्या अद्भुत जानकारी ! इस तरह आतंकित करने वाली बमबारी के बावजूद प्रोफेसर मुल्लन की शिक्षण पद्धति थी जिसकी कृपा से न केवल जीवविज्ञान में मेरी रुचि बनी रही वरन् उसकी लौ दीप्तिमान एवं चिरस्थायी बन गई।

डावर कालेज में हमारी कक्षाएं सुबह आठ से दस बजे तक होती थीं। इसलिए सुबह, बमुश्किल, मैं अपनी डगलस मोटर साइकिल पर स्टैनली प्रेटर को उसके एल्फिस्टन सर्कल स्थित बरसाती के छोटे फ्लैट से लेकर सेंट जेवियर की प्राणिविज्ञान की कक्षा शुरू होने तक पहुंच पाता था। प्रेटर एंग्लो-इंडियन था जिसने स्कूल से बाहर आते ही, दस वर्ष पहले मानो अपनी पंखहीन अवस्था (कच्ची उम्र) में ही, बी.एन.एच.एस. में 'बोतल धोनेवाला' की नौकरी कर ली थी। सोसायटी के प्रथम वैतनिक 'क्यूरेटर' एन.बी.किन्नियर के मार्गदर्शन में प्रेटर को अपनी प्रशिक्षुता के दौरान 'म्यूजियम सहायक' तथा 'क्षेत्र-संग्राहक' कार्य में प्रतिभा की संभावनाएं दिखलाई दीं। प्राकृतिक-इतिहास, विशेषकर पक्षियों के विषय पर मैंने टेवॉय से प्रेटर के साथ काफी नियमित पत्राचार रखा था जिसका क्रमशः अन्य उभयनिष्ठ विषयों में प्रसार हुआ। हमारे बीच गहरी समझ तथा मित्रता का विकास हुआ जो भविष्य में सोसायटी के साथियों के रूप में प्रगाढ़ होती गई। इसके पहले कि उसकी सोसायटी के वैज्ञानिक सदस्य के पद की उसकी मांग पर विचार हो सके, सोसायटी की कार्यकारिणी ने इच्छा व्यक्त की कि वह फादर ब्लैटर के मार्गदर्शन में जीवविज्ञान की नियमित शिक्षा ले ले।

प्रेटर की बौद्धिक बहुमुखी प्रतिभा का मैं प्रशंसक था और हृदय से उसका आदर करता था। यद्यपि वह विज्ञान में कोई भी मौलिक योगदान का दावा, संभवतया, नहीं कर सकता, किंतु उसका अध्ययन विस्तृत था और वह प्राकृतिक-इतिहास के आधुनिकतम विकासों से परिचित था। उसकी स्मरणशक्ति तो उल्लेखनीय थी ही, जटिल प्रविधियों को पचाने की शक्ति तथा पांडित्यपूर्ण गरिष्ठ विशिष्ट भाषा को आम आदमी की भाषा में अभिव्यक्त करने की क्षमता भी अद्भुत थी। सचमुच में, प्राणिविज्ञान को लोकप्रिय भाषा में प्रस्तुत करना उसकी विशेष प्रतिभा थी। इस कला कौशल की साक्षी उसकी सारी कृतियां हैं। उन्होंने रुचिकर तथा अक्सर रोचक शैली में अपना लेखन किया। सेंट जेवियर के प्राणिविज्ञान के प्रयोगों में जोड़ों में ही कार्य करना होता था, और मुझे अच्छी तरह से याद है कि जब भी तिलचट्टों का विच्छेदन (चीर फाड़) करने सरीखा अप्रिय प्रयोग होता था, मेरे लिए उसका साझीदार होना कितना सुगम तथा लाभप्रद था।

स्वतंत्रता के समय निराधार भय से आतंकित पत्नी तथा अन्य शंकालु एंग्लो-इंडियन मित्रों ने प्रेटर को बाध्य किया कि वह भारत छोड़ दे; इस घटना से मुझे बहुत दुख हुआ और मेरा विश्वास है कि प्रेटर को भी हुआ होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रेटर, जो कि भारत में पैदा हुआ, जिसने भारत में ही अधिकांश जीवन जिया, इंग्लैंड में शांति नहीं पा सका। कभी-कभी उसकी बातों से ऐसा लगता था। वह अपने चिर-परिचित व्यक्तियों तथा पास-पड़ोस में वापस आना चाहता था, किंतु भारत से अपनी जड़ें उखाड़ने के पश्चात, उसके स्वाभिमान ने उसे निर्वासन

में ही सुख का मुखौटा पहना दिया था। उसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व ही जब मैं उससे लंदन में मिला था, उस दुख का वर्णन मैं शब्दों में नहीं कर सकता। आंशिक पक्षाघात से पीड़ित वह, घर में अकेला, बिस्तर पर निस्सहाय लेटा था। उसका साथ देने के लिए उसके पास केवल एक रेडियो था। उसकी पत्नी तथा बेटी अपने-अपने काम पर गई थीं। कभी-कभार उनकी दयालु किराएदार वृद्ध महिला झांककर देख जाती थी कि सब ठीक ठाक है। कोई नौकर छोटी-सी मदद के लिए भी नहीं था। प्रेटर सरीखे सक्रिय एवं शारीरिक तथा मानसिक दोनों तरह से जीवंत व्यक्ति के लिए तथा जो भारत में चौबीसों घंटों निष्ठावान नौकरों का आदी रहा हो, मैं अच्छी तरह से कल्पना कर सकता हूं कि यह सब कितना पीड़ादायक रहा होगा।

सेंट जेवियर की प्राणिविज्ञान की कक्षा के बाद हम लोग सोसायटी की तरफ भागकर आते थे। उन दिनों सोसायटी (सन् 1953 तक) 'फिप्सन एंड कं., वाइन मर्चेंट्स' के परिसर में ही थी। भारतीय पक्षियों के अध्ययन और प्रेटर अथवा किन्नियर की मदद से तेनाश्रिम में जिन पक्षियों ने मुझे अचंभे में डाल दिया था उनकी जान-पहचान के लिए प्रति सप्ताह, सोसायटी के पुस्तकालय तथा पक्षिसंग्रह में मैं कई घंटे बिताता था।

यह मेरा सौभाग्य था कि प्राणिविज्ञान की कक्षा में मेरा एक साथी आसफ अली असगर फ़ैज़ी, मेरा दूर के रिश्ते का भाई था जो मेरा बचपन से मित्र था और आजीवन बना रहा। प्यार से उसे मित्र लोग ए.ए.ए. कहकर बुलाते थे, उसकी बुद्धि प्रखर थी और पुरस्कार जीतने की उसे जैसे आदत ही पड़ गई थी। इसका मुझे दुख हुआ तथा निराशा भी जब उसने जैवविज्ञान में बी.ए. आनर्स प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर जैवविज्ञान छोड़कर कैंब्रिज में कानून की शिक्षा आरंभ कर दी। जैसी कि आशा करनी चाहिए, यहां भी उसने अनेक ललचाने वाली छात्रवृत्तियां तथा विशेष योग्यताएं अर्जित कीं। इसके अतिरिक्त आसफ सभी खेलों का उत्कृष्ट खिलाड़ी था। स्कूल के दिनों में वह औसत से बेहतर छर्रेदार बंदूक तथा दागने वाली बंदूक का निशानेबाज था; तथा कालेज के लिए उसने क्रिकेट तथा टैनिस खेला था। सेंट जान कालेज, कैंब्रिज की टैनिस टीम का वह कप्तान था और इस तरह उसने प्रमाणित कर लिया कि वह अपने चाचाओं, टैनिस में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त फ़ैज़ी भ्राता द्वय, अजहर और अथर का योग्य चेला था। कैंब्रिज, और बाद के जीवन में, आसफ ने अरबी भाषा में विशेष योग्यता प्राप्त की तथा पुरस्कार ('प्राइजमैन') जीता। अरबी भाषा में अर्जित निपुणता ने आसफ को 'मुहम्मदी-विधि' की जड़ों तक पहुंचने में मदद की, विशेषकर इस्माइली विधियों की; तथा उन विधियों की समालोचनात्मक एवं तार्किक व्याख्या करने में भी मदद की। उन्होंने इन विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखीं, जिनमें से कुछ भारत तथा विदेश के विश्वविद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों के रूप में स्वीकृत हैं। उन्होंने मुस्लिम देशों में बहुत सम्मान पाया।

यह अत्यंत दुख की बात है कि ऐसा ज्वलंत तथा बहुमुखी प्रतिभाशील व्यक्तित्व बाद में पारिवारिक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के कारण अवसाद ग्रस्त हो गया जिसने उसे मानव द्वेषी तथा एकांतवासी बना दिया।

जब मैं सितंबर 1917 में बंबई वापस आया तब मैं अपनी बहन अशरफ उन्निसा (छोटे में अशरफ) तथा शिकारी एवं एडवोकेट बहनोई शम्स के साथ उनके खेतवाड़ी फ्लैट में (जो अस्तबल के ऊपर था—मेरे बचपन के गौरैया-शिकार का क्षेत्र) रहा। जब मैं बर्मा में ही था, फरवरी 1917 में मामा अमीरुद्दीन की मृत्यु हो गई; यह फ्लैट उनके घर 'अमीर मंजिल' की अनेक्सी थी। उनकी मृत्यु के बाद संपत्ति का बंटवारा हुआ था जिसके फलस्वरूप वह बिक गई थी। बड़ी बहन अशरफ तथा छोटी कमू दोनों ने प्यारी बहनों की तरह चुपचाप, मुझे बिना बतलाए, साजिश कर योजना बनाई थी, वे मेरा विवाह रिश्तेदारी में ही एक आकर्षक लड़की से करना चाहती थीं, स्पष्ट ही उस लड़की ने उनका मन मोह लिया था। टेवॉय में लिखे पत्रों में तथा बाद में बातचीत में उस लड़की का संदर्भ आवश्यकता से अधिक आ रहा था। और यह सब तब भी कि जब मैंने यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया था कि उस अवधि में मेरी रुचि महिलाओं में कतई नहीं थी। मुझे बतलाया गया कि तैहमीना और मैं 1904-1905 में गिरगांव के जैड.बी.एम.एम.कन्या शाला में किंडरगार्टन कक्षा में सहपाठी थे; इसके बाद उसके पिता सी.ए.लतीफ़ यूरोप में अपना मोती का व्यवसाय बढ़ाने के लिए लंदन चले गए थे। मुझे वह छोटी-सी लड़की तनिक भी याद नहीं थी, जब तक कि वर्षों बाद, मुझे उस शाला का पुराना समूह फोटो नहीं दिखलाया गया। 'सरे' की विशिष्ट वर्ग की छात्रावास शाला से लंदन की मैट्रिक परीक्षा पास करने के बाद तैहमीना के पिता ने उसे, कालेज में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित न कर, सभ्य एवं शिष्ट आचार व्यवहार का शिक्षण देने वाले युवतियों के 'फिनिशिंग स्कूल' (समापन शाला) में प्रवेश कराया। तैहमीना अक्सर उस शाला में उच्चवर्ग के लिए उचित व्यवहार के लिए दी गई शिक्षाओं की व्यर्थता का चटखारे लेते हुए वर्णन करती थी। उदाहरणार्थ, एक जो मुझे अभी भी याद है, जब भी आप सभ्य समाज में हल्की चाय की केतली को चम्मच से हिलाना चाहें तब पहले पास के साथियों से क्षमाप्रार्थी मुस्कराहट के साथ 'क्षमा कीजिए' ('एक्सक्यूज मी') अवश्य कहें। 1915 में जब प्रथम विश्वयुद्ध के बादल लंदन के ऊपर मंडराने लगे और उनका विलयन निकट नहीं दिख रहा था, तब लतीफ परिवार देश वापस लौट आया था। प्रारंभ में वे चौपाटी के सुरुचि-संपन्न 'एडनबाला मैशन' के फ्लैट में किराए पर रहे, तत्पश्चात, सड़क पार 'हार्वे रोड' में जहां उनका अपना मकान 'लतीफिया' बन गया था। मेरी बहनों ने इसी फ्लैट में कुशलतापूर्वक हमारे अचानक-मिलन की योजना बनाई थी और क्रमशः उनकी योजनाओं ने साकार रूप ग्रहण किया। प्रारंभ में मुझे यह चिंता हुई कि विदेश

के नितांत भिन्न परिवेश में पली एवं शिक्षित, तथा जीवन की परिष्कृत सुविधाओं से अभ्यस्त कन्या आदिम परिस्थितियों तथा सामाजिक जीवन से शून्य एवं मनोरंजन के साधनों से विहीन टेवॉय सदृश जलपृष्ठ के अत्यंत साधारण जीवन के प्रति क्या सोचेगी!

ब्रिटेन से लौटने के बाद तैहमीना तथा कमू प्रथम भेंट में ही अच्छी मित्र हो गई थीं, और कमू के संभ्राता हसन एफ.अली से 1908 में विवाह के पश्चात जापान चले जाने के बाद भी तथा जुलाई 1939 में तैहमीना की मृत्यु तक घनिष्ठतम मित्र रहीं। यह तो स्पष्ट हो गया था कि कमू ने बर्मा से मेरे लौटने के पहले से ही 'बमबारी कर शत्रु की शक्ति का क्षय करना' या कहना चाहिए उपयुक्त 'पुल' बनाने की प्रक्रिया प्रारंभ कर दी थी, क्योंकि तैहमीना को मेरे विषय में मेरी अपेक्षा से कहीं अधिक जानकारी थी। निकटता से जानने के बाद मुझे यह जानकर कि तैहमीना की अभिरुचियां तथा रुझान, और पसंदगी तथा नापसंदगी लगभग मेरे ही समान थी, मुझे बहुत राहत मिली। उसके परिष्कृत परिवेश तथा लालन-पालन के बावजूद वह हृदय से 'ग्राम-युवती' ही रही। सौभाग्य से 'फिनिशिंग स्कूल' (समापन शाला) ने उसे पूरी तरह 'फिनिश' (समाप्त) नहीं किया था। उसे उबाऊ सामाजिक पार्टियां, विशेषकर 'समाज महिलाओं' ('सोसायटी लेडीज') तथा 'थोथी बातचीत' से बच निकलने में मेरे समान ही बहुत आनंद मिलता था। थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अनौपचारिक मित्रवत मेल मिलाप तथा समान अभिरुचि एवं दृष्टिकोण वाले व्यक्ति उसे पसंद थे। तैहमीना को आडंबर, कोरी बातचीत और तड़क-भड़क से तो घृणा थी ही, वह आत्मश्लाघा को भी बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। उसे वन बहुल देहात तथा जंगलों में घूमना, अच्छी पुस्तकें, उर्दू तथा अंग्रेजी कविता, बागवानी तथा फूल बेहद पसंद थे; और बाद में, मेरे पक्षिशास्त्रीय सर्वेक्षणों के दौरान वह पक्षियों में गहन रुचि लेने लगी। संक्षेप में हम लोगों के अधिकांश सरोकार तथा रुचियां इतनी मिलती जुलती थीं जितनी कि कोई भी इच्छा कर सकता है; इस खोज ने मुझे भविष्य के प्रति आश्वस्त किया। बाद में जब हम लोग देहरादून में रह रहे थे, तब मुशायरों का आनंद लेने का अवसर मिला। विदेशी परिवेश में पली तैहमीना ने जब देखा कि उसे शायरी का आनंद नहीं मिल रहा है तो उस व्यथा ने उसे उर्दू के गहन अध्ययन की ओर निष्ठा के साथ प्रेरित किया जिसमें एक दुहरे शब्दकोश ने तो सहायता की ही, एक विद्वान मुंशी ने भी मदद की और आग में घी डालने का काम किया। शीघ्र ही उसमें उर्दू विशेषकर उर्दू शायरी, के प्रति तीव्र प्रेम उत्पन्न हो गया। वह घर में या कैंप में प्रतिदिन अवकाश के कई घंटे अपने प्रिय (इंतखाबों) उर्दू-दीवानों के साथ बिताने लगी थी, और हां, शब्दकोश तो हमेशा अपने पास रखती ही थी।

यह मेरा भी सौभाग्य था और तैहमीना का भी कि उसके जीवंत स्वभाव तथा

मित्रवत मनोवृत्ति ने उसे मेरे सभी बहनों-भाइयों का प्रिय बना दिया और परिवार में स्नेही वातावरण बना रहा। कमू तथा फरहत उसे विशेष प्रिय थीं, और मुझे लगता है कि उनके संग वह सर्वाधिक तनावमुक्त तथा सुखी रहती थी। फरहत तैहमीना को विशेष प्यार करती थी। फरहत मेरी दूसरी बड़ी बहन थी, जो अशरफ से दो वर्ष छोटी थी तथा हम भाई-बहनों में चौथी थी। उसने जैड.बी.एम.एम कन्या शाला में प्राथमिक अंग्रेजी का अध्ययन मेरे उस शाला में प्रवेश के बहुत पहले ही कर लिया था। तत्पश्चात वह मामी हमीदा बेगम की खेतवाड़ी-घर चलाने में मदद करती थी और साथ ही परिवार के छोटे बच्चों के विकास के कार्य भी। वास्तव में वह मेरी मां के समान थी : उसने मुझे उर्दू के प्रथम पाठ पढ़ाए और अंत तक (1982) अनेक रूपों में मेरी सर्वप्रिय बहन रही। परिवार का 'बेबी' होने के नाते मैं बहलाकर अनेक विशेष अधिकार तथा छूट प्राप्त कर सकता था जो बड़े बच्चों को मना थे, और अवसर मिलने पर फरहत बहन के लाड़ प्यार का अनुचित लाभ उठाने में भी मैंने कभी देर नहीं की। वे स्वभाव से बहुत सुशील तथा हंसमुख थीं और उनकी विनोद-वृत्ति सजीव थी, और उनमें हामिद की तरह, सभी स्तरों पर मित्रता बनाने की आश्चर्यजनक योग्यता थी जिसके कारण जो उनसे एक बार मिल लेता उन्हें बराबर याद रखता था। उन्होंने 1911 में चाचा अब्बास तैयबजी के छोटे बेटे शुजाउद्दीन[1], (शम्स के छोटे भाई) से विवाह किया। मुझे उनका मेरे घर पर आना अच्छी तरह याद है—सबसे पहले, किहिम तथा कोटगिरि में जहां पर मैं हैदराबाद तथा केरल में कार्य मिलने की प्रतीक्षा कर रहा था, और फिर देहरादून में जहां हम लोग रह रहे थे—और हम लोगों ने उनकी आनंददायक उपस्थिति तथा विनोदपूर्ण संवादों का, और उनके द्वारा मुसद्दस-ए-हाली, गालिब और इकबाल के पाठों और प्रेमचंद के उपन्यासों के पाठों का भरपूर आनंद उठाया। बाद के वर्षों में, जब शुजा हैदराबाद निजाम के राजस्व अधिकारी थे तब, मैंने और तैहमीना ने जगह-जगह हफ्तों की छुट्टियां आनंदपूर्वक बिताईं। और शुजा के अवकाश प्राप्त करने पर उनके दौलताबाद के घर में फिर आनंददायक समय बिताया।

अब हम उस समय में वापिस आएं जब तैहमीना से मेरी मंगनी हो गई थी, मुझे उस टेलीग्राम की याद आती है जिसने अपनी सर्वोत्तम विकृति से, उन परिस्थितियों में, विनोद के स्थान पर मुझे, परेशान ज्यादा किया था। शायद बहुतों को याद हो 1918 में महाद्वीपों में 'फ्लू' की जानलेवा महामारी फैल गई थी और थोड़े से सप्ताहों में उसने पूरे प्रथम विश्वयुद्ध में मृत व्यक्तियों की संख्या से अधिक जानें ले ली थीं। मैं उस समय बंबई में वाणिज्य तथा प्राणिविज्ञान का शिक्षण ले रहा था। निज़ाम की सेवा में तैहमीना के बड़े भाई हसन लतीफ जिला-इंजीनियर

1. चाचा अब्बास के तीन बेटों ने मेरी तीन बहनों से विवाह किया, इस तरह मानों उन्होंने हमारे घर पर कब्जा कर लियाः शम्स-अशरफ, शुजा-फरहत, और सालाह-अख्तर।

थे। उस समय समाचार आया कि उनके घर के सारे लोग—पत्नी, सारे बच्चे, नौकर—फ्लू से पीड़ित थे तथा उनकी परिचर्या के लिए घर पर कोई नहीं था। एक तो नई मंगनी, वह भी उनके घर के हल्के प्रतिरोध के बावजूद हुई थी, और दूसरे उस परिवार पर अपना प्रभाव जमाने हेतु मैंने बहादुरी से हैदराबाद जाकर अपनी परिचर्या की सेवाएं अर्पित करने का प्रस्ताव भेजा। इसमें क्या आश्चर्य कि जब हसन को टेलीग्राम मिला, तब वे अपने साले द्वारा इतनी शीघ्रता से पैसा ऐंठने के विचार पर चिंतित अवश्य हुए होंगे ! वास्तव में मैंने जो टेलीग्राम भेजा था—शैल आई कम एंड हेल्प—वह वहां पहुंचने पर इस तरह विकृत हुआ था—स्मॉल इनकम सेंड हेल्प। मेरी समझ में टेलीग्राम के विकृतीकरण का यह सर्वोत्तम उदाहरण है और अमरता प्राप्त करने योग्य है।

हम लोगों का विवाह दिसंबर 1918 में हुआ। मैं यद्यपि इस समय 22 वर्ष का था, शायद विवाह के लिए उम्र में छोटा, मुझे समझाया गया कि मैं विवाह कर ही लूं क्योंकि मेरे बंबई लौटने का निकट भविष्य में कोई आसार नजर नहीं आ रहा था। और यह बहुत ठीक हुआ कि मैंने विवाह को नहीं टाला क्योंकि युद्ध समाप्ति के साथ ही हम लोगों की आर्थिक स्थिति बिगड़ती ही गई फलस्वरूप मेरे लिए अगले अनेक वर्षों तक विवाह करना असंभव ही होता। एक वर्ष पूर्व, मुझसे चार वर्ष बड़े भाई आमिर ने सुंदर तथा सुयोग्य लैला हैदरी से विवाह किया था, तथा निजाम पुलिस सेवा से निराश होकर उन्होंने जे.ए.अली ब्रदर्स कंपनी में एक अली भाई की तरह शामिल होकर व्यवसाय में अपना भाग्य आजमाने का निर्णय लिया था। उस समय उनकी युवा पत्नी गर्भवती थी इसलिए उन्होंने पत्नी को उसकी मां के पास हैदराबाद में छोड़ने का निश्चय किया। आमिर के भाग्य में यह दुख लिखा था कि वे उससे फिर नहीं मिल पाएं। कुछ महीने बाद एक दुर्भाग्यपूर्ण तथा अजीब स्थिति में बर्मा में उनका देहांत हो गया (जिसे मैं बाद में समझाऊंगा)। खैर 1919 में अपने भविष्य से अनभिज्ञ आमिर हम नवविवाहितों के साथ कलकत्ता से रंगून के लिए जहाज पर चल पड़े।

5
बर्मा की स्मृतियां

रंगून के भारतीय समाज में अख्तर बहन तथा बहनोई सालाह तैयबजी की छोटी जोड़ी की लोकप्रियता मुझे अचरज में डालती थी। यह लोकप्रियता व्यावसायिकों जैसे वकील, डाक्टर तथा उच्च प्रशासनिक अधिकारियों, उच्च न्यायाधीशों के उच्च समाज तक ही सीमित नहीं थी, वरन रिक्शावालों तथा टिक्का गाड़ी चालकों जैसे गरीबों में भी छाई हुई थी। बर्मा आवास के पैंतीस वर्षों की उनकी लोकप्रियता न केवल दीर्घकालिक थी वरन उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही। विभिन्न अवधियों में सालाह तैयबजी विभिन्न श्रमिक तथा राजनैतिक संघों के सचिव या अध्यक्ष रहे, वे बर्मा की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता तथा स्वतंत्रता-पूर्व की द्वितंत्रीय बर्मी विधान परिषद में भारतीय समाज के प्रतिनिधि तो थे ही, औपनिवेशिक तंत्र के गले में फांस की तरह भी थे। कन्याओं के शिक्षा प्रसार, विशेषकर भारतीय अधिवासियों, मुसलमानों तथा ज़रबादियों की कन्याओं के शिक्षा प्रसार की प्रेरणा स्रोत अख्तर थीं। जब 1942 में जापानियों ने बर्मा को रौंद डाला था तब सालाह और उनके पुत्र नादिर (बाद में कैप्टन एन.एस.तैयबजी, भारतीय नौ सेना) ने, नागालैंड वाले भंयकर थलमार्ग से, अदम्य साहस तथा भारी शारीरिक कष्टों को झेलते हुए, भारतीय नागरिकों के निष्क्रमण में वीरतापूर्ण तथा प्रमुख योगदान दिया। इस दौर के अतिशय शारीरिक कष्टों तथा उस भयंकर रास्ते में कालाज्वर से पीड़ित सालाह जब मसूरी पहुंचे तब वे बिस्तर पर गिर पड़े और अनेक दिनों तक हामिद तथा शरीफा के स्नेहमय घर 'साउथवुड' की छाया में मृत्यु से जूझते रहे। उनके मित्रों तथा जानकारों का परिवृत्त विशाल था। बर्मा, विशेषकर रंगून, में उस अवधि में रहे विशिष्ट या सामान्य लगभग सभी भारतीय, वरन वे भी जो उस अवधि में वहां से गुजरे वे सभी तैयबजी युगल को जानते थे। उनका घर सबके लिए खुला था, खुले दिल से वे सबका स्वागत करते थे और किसी की भी, किसी भी मुश्किल में, यथासंभव सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। बर्मा छोड़ने के पैंतीस वर्षों बाद भी, निर्वासित लोगों की पुरानी पीढ़ी उन्हें कितने प्यार से याद करतीं है, यह सचमुच अद्भुत है। ऐसे

शरणार्थी बहुत कम हैं जो किसी न किसी समय इस उल्लेखनीय युगल में से एक या दोनों के संपर्क में न आए हों तथा मित्रवत व्यवहार या मदद की बात न करते हों।

प्रथम विश्वयुद्ध के अंतिम दिनों में टंग्स्टेन खदानों के व्यवसाय के अवसान के समय हमने बर्मा में व्यवसाय के वैविध्य को बढ़ाने के लिए, भारतीय रेल को सलीपट ('स्लीपर') की आपूर्तिहेतु जंगलों की पट्टेदारी प्रारंभ की। उस समय बर्मा में बड़े शिकार से मेरा परिचय हुआ। रेल सलीपट के लिए कठोर लकड़ी, जिसे बर्मी में प्यिंकाडो (Xylia dolabrilfrmis) कहते हैं, की मांग सर्वाधिक थी। टेवॉय नदी के ऊपरी क्षेत्रों के भव्य नम-पतझड़ी वनों के भीतर नटकाइजिन (Natkyzin) तथा हाइन्ज (Heinze) कछारों में यह लकड़ी कामचलाऊ मात्रा में उपलब्ध थी। इनकी उपलब्धि, घनत्व, काटना तथा लट्ठों की वहनीयता की दृष्टि से विशाल क्षेत्रों का सर्वेक्षण आवश्यक था। इस दूरदराज तथा अविकसित क्षेत्र में सड़कों तथा संचार-सुविधा के न होने से कार्य करने की समस्या गंभीर थी। सलीपट के माल को शासपत्रित (चार्टर्ड) विशेष पोतों (ट्रैम्प्स) में दूर दराज से वहन करने में भयंकर कठिनाइयां थीं, विशेष इसलिए भी कि गोदी (डॉकिंग) की सुविधाएं उपलब्ध न थीं, और न भारी सामानों को पोतों या 'धौ' में लादने उतारने की। परिणामस्वरूप हमें यह टिंबर उद्योग घाटा खाकर छोड़ना पड़ा जब कि मेरे साझीदार के 'अदम्य आशावाद में' तथा 'कागजों में' इससे हमारा भाग्य चमकने वाला था। 'टेवॉय टिंबर्स' नाम से यह उद्योग हमने रंगून के पारसी मित्र जमशेदजी माणिकजी के साझे में शुरू किया था। वे अत्यधिक ऊर्जस्वी, सूझबूझ वाले व्यक्ति थे किंतु किन्हीं भी परिस्थितियों में असंगत तथा अतिशय आशावादी भी थे। उनकी इसी कमजोरी ने उन्हें, कुछ वर्षों पूर्व टिन तथा टंग्स्टेन खदानों के अल्पकालिक उत्कर्ष की भंवर ने खींचा था। हम लोगों का टिम्बर उद्योग आर्थिक रूप में कभी नहीं खड़ा हो सका; किंतु व्यक्तिगत रूप से मेरे शिकार तथा प्राकृतिक-इतिहास की दृष्टि से बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। दूर-दूर के अनछुए घने जंगलों में घूमने के, दुनिया से दूर एकांत वनों के वन-बंगलों में कई दिनों तक कैंप करने के, तथा (मेरे मार्गदर्शक करैन के मित्रवत संपर्क द्वारा उपलब्ध) वन्यजाति टौंग्या के साथ रात बिताने के दुर्लभ तथा सुनहले अवसर मिले। एक हंसमुख 'पीर बावर्ची भिश्ती खर' मद्रासी रसोइए की कृपा से गरम भोजन ('इक्मिक कुकर' की सहायता से) तत्काल मिलता था। बिस्तर मेरी पीठपर 'रकसैक' में चलता था और मेरी विश्वसनीय बंदूक माउजर मेरे कंधे पर टंगी रहती थी। दाल चावल आदि की बोरियां ढोने के लिए एक नौकर किराए पर ले लिया था।

हमारा पथ प्रदर्शक 'ऊ क्यान था' (करैन का ईसाई होने के बाद का नाम) हाथी का मालिक था और लट्ठों को जंगल से आराम शीन तथा ढोने के लिए हमारा

ठेकेदार भी था। उसके जंगल का गहरा ज्ञान हमारे उपयुक्त वनखंडों की खोज के लिए बहुमूल्य सिद्ध हुआ। 'था' बहुत भला मानुस था जो जंगल-ज्ञान से भरपूर तो था ही, साथ ही अनुभवी शिकारी भी था। एक 'बेल्जियन प्राचीन 12 बोर एकनली बंदूक' उसके साथ हमेशा-हमेशा रहती थी। उसका दावा था कि उससे उसने हमेशा सांभर, ककड़ (बार्किंग डियर), सूअर और यहां तक कि गौर का सफल शिकार किया है। उसका दावा था कि एक बार उसने उससे एक शेर मारा था, एक बार गैंडा तथा एक बार मस्त हाथी भी। जैसा कि सम्राट बाबर कहा करते थे, 'दावा करने वाले की सचाई उसके साथ'; किंतु इसमें संदेह नहीं कि वन्य जीवन के विषय में उसका ज्ञान तथा वृक्षों का ज्ञान बहुत उपयोगी था। मैंने उससे स्थानीय वनों के विषय में तथा 'लोक ज्ञान' बहुत सीखा। उसे हाइन्ज कछार की सभी दलदली झीलों की जानकारी थी और यह कि उनमें से किसमें 'एक शृंगी गैंडा' ('लैसर वनहार्न्ड राइनॉसेरॅस,' Rhinoceros sondaicus) आते थे, जो उस समय (1922) तेजी से विलुप्त हो रहे थे। मैं उन्हें देखने तथा उनका फोटो खींचने के लिए बहुत उत्सुक था। वह मुझे अनेक बार गैंडों के अड्डों पर ले गया किंतु दुर्भाग्यवश उस जंतु से हमारा सामना कभी नहीं हो पाया; हां एक बार एक दलदली झील में गैंडों के लोटने के ताजे निशान तथा गंध मिली जो यह प्रमाणित करती थी कि उन जंतुओं का अस्तित्व तो है। उसके कुछ समय पहले बर्मी सरकार ने गैंडों के शिकार पर पूरा प्रतिबंध लगा दिया था, किंतु अन्य स्थानों की तरह, उसके सींगों के लिए शिकार-चोर सक्रिय थे; और अब तक, संभवतया, वह जाति विलुप्त हो गई होगी।

आज जब मैं निचले बर्मा के नक्शे में हाइन्ज कछार को देखता हूं तब वनों के उन कठिन किंतु उल्लासमय घुमंतू दिनों की दुख भरी स्मृतियां मन पर छा जाती हैं। और आज इतनी लंबी अवधि के बाद, जब हम मच्छरों, जोंकों, मानसून की लगातार बारिश से भीगे दिन तथा गीले बिस्तर वाली रातें भूल गए हैं, तब वे सब अनुभव रूमानी भी लग सकते हैं। फिर भी साठ वर्ष पूर्व के वे अनुभव बहुत आनंददायक थे।

बर्मा के प्रारंभिक तथा खदान वाले रंगीन दिनों में, आकस्मिक ही एक विलक्षण एवं रहस्यमय चरित्र मेरे जीवन में आया; उसकी कहानी के बिना मेरी बर्मा-खंड की कहानी भी अधूरी रह जाएगी। खदानों की बढ़ोतरी की लहरों पर बहता हुआ बर्ट रिबनट्राप टेवॉय पहुंच गया था। वह अबूझ था किंतु कुछ दृष्टियों से उल्लेखनीय यहां तक कि प्रशंसनीय व्यक्ति था। उन आपत्तियों से भरे खदानों वाले तीन वर्षों तक मेरा उसका साझेदारी का निकट का संबंध था; अक्सर तीन-चार दिन लगातार हमें एक साथ, मीचुंग खदान क्षेत्र में खंभों पर बांस-पत्ती से बनी उसकी झोपड़ी में, बिताने पड़ते थे। तब भी उसके जीवन के इतिहास या पूर्व-घटनाओं के विषय में मैं बहुत कम पता लगा पाया था। वह जर्मनी के वन विशेषज्ञ श्री बर्थोल्ड रिबनट्रॉप,

सी.आई.ई. का पुत्र था। सर डियैट्रिच ब्रांडिस की सलाह पर, सन् 1866 में ब्रितानी भारतीय सरकार ने उन्हें (बर्थोल्ड) भारत में वैज्ञानिक वानिकी का संगठन करने तथा 'प्रांतीय वन सेवा' की स्थापना करने के लिए आमंत्रित किया था। बर्ट शिमला के विषय में खूब बातें करता था जहां उसके पिता ने इंस्पैक्टर जनरल के पद पर सन् 1900 में सेवानिवृत्त होने तक कुछ वर्ष बिताए थे, और साथ ही उसके पिता के अन्य प्रशासन में कार्यरत मित्र भी थे। किंतु मैं यह नहीं जान सका कि उसका जन्म भारत में हुआ था या नहीं, या कि उसने अपना बचपन भारत में बिताया था या नहीं। उसने अपनी मां के विषय में कभी कोई बात नहीं की, कि वह जर्मन थी या नहीं। बातें करते हुए उसने अपनी एक बहन का लंदन में रहना बतलाया था जिससे उसके संबंध स्नेहमय थे। मुझे ऐसा समझ में आया कि उसकी पत्नी भी थी जो बेटी के साथ लंदन में रह रही थी जिससे वह विच्छेदन या तलाक ले चुका था। वह अपने व्यक्तिगत जीवन तथा संबंधों के विषय में बहुत कम बात करता था, और उन वर्षों में न तो उसने किसी को पत्र लिखा और न उसे कोई पत्र मिला, न कभी उसने अपने घर इंग्लैंड जाने की इच्छा व्यक्त की, और न तो उसे कभी कोई पैसे किसी ने भेजे और न उसने किसी को। यह तो ठीक है कि उस गरीब के पास भेजने के लिए कुछ था ही नहीं। मैं अक्सर सोचा करता कि मीचुंग खदान से बर्ट की अदम्य किंतु निराधार आशावादिता के बावजूद शायद ही कोई आमदनी होती हो तब यह व्यक्ति किस तरह जीवित है। मैं सोचता हूं कि कुछ समय तक नित्य ही दाल-चावल में आशावादिता के मसाले डालकर, खाकर जीवित रहना संभव है। बर्ट तो जन्मजात आशावादी था यद्यपि उसकी आशा के आधारों को खोजना बहुत कठिन था; कम से कम खदानों की उत्पत्ति तो वे आधार नहीं थे।

तीन वर्षों की खदानों की साझेदारी के बाद मैं 'जब चोट खाकर सेवानिवृत्त' होकर लौटा, चाहे भ्रांति मुक्त एवं विवेकशील व्यवसायी के रूप में, तब रिबनट्रॉप को पूर्ण स्वामित्व देकर चला था। वह तब भी पूर्ण आस्था और विश्वास के साथ वीरतापूर्वक जूझ रहा था किंतु बीच-बीच में अनभ्यस्त विषाद के दौरे उसे पड़ने लगे थे। आने के कुछ महीनों बाद मुझे यह दुखद समाचार मिला कि ऐसे किसी एक अवसाद-दौरे के समय बर्ट दूर किसी वन-बंगले में रात बिताने गया था जहां उसने पिस्तौल से आत्महत्या कर ली। मेरे ख़दान-उद्यम की यह चरम दुखद परिणति थी, और उसकी भी जो खदानों के व्यवसाय की सच्ची परंपरा के अनुसार विश्व के अडिगतम आशावादियों में निस्संदेह गिना जाएगा। जर्मनी के फ्राइबुर्ग विश्वविद्यालय से उसने खदान-प्रशिक्षण लिया था। तत्पश्चात उसने कुछ वर्ष ब्रितानी गायना में स्वर्ण खनन में बिताए थे, संभवतया बिना सौभाग्य के। उसके एक मित्र जे.डब्ल्यू. डोनेल्डसन आइकैन ने टेवॉय की टिन खदानों से उसका परिचय कराया था। आइकैन

ऊपरी नदी के क्षेत्र ईगान में रबर बागान के मालिक थे तथा पगाये में टंग्स्टेन खदान के, जो बाद में 'बर्मा फाइनेंस एंड माइनिंग कंपनी' को बेच दी गई। रिबनट्रॉप खुश-मिजाज, दयालु तथा मित्रवत व्यवहार करने वाला व्यक्ति था। खदान के श्रमिक तथा गांववासी उसे बहुत चाहते थे जो उसके पास अक्सर घरेलू तथा दफ्तरों के मामलों में सलाह मशविरे तथा मदद के लिए आते थे। उसकी बहुमुखी प्रतिभा में एक था 'दाई का कार्य'। सुनने में चाहे अजीब लगे किंतु इस कार्य में उसने ख्याति प्राप्त कर ली थी। और आसपास के गांवों से उसे रात-बिरात बुलावे आते थे। वह हमेशा अपना ग्लैडस्टोन बैग, दवाइयों तथा शल्य उपकरणों के साथ तैयार रखता था। चाहे कितना भी कठिन समय हो, उसने इस कार्य के लिए कभी नाहीं नहीं की। उससे सेवाप्राप्त लोग उसके लिए अक्सर फल, केले, ताजी पकड़ी हुई मछली, अंडे या मुर्गी लाकर उसे देते थे जो उनका आभार प्रदर्शन था, उसकी फीस नहीं क्योंकि वह यह कार्य निःशुल्क करता था।

जर्मनी में रिबनट्रॉप नाम बिरला होता है। 1937 में जब लंदन में उस नाम का हिटलर का राजदूत आया, मुझे बहुत कौतूहल हुआ। मैंने अपने पक्षिविज्ञानी मित्र कर्नल आर मैनहर्ट्जन, जो राजदूत को व्यक्तिगत तौर से जानते थे, से पूछा कि वे पता लगाएं कि क्या राजदूत भारत में रहे इंस्पेक्टर जनरल वन विभाग से किसी तरह संबंधित हैं। अवसर पाते ही कर्नल मैनहर्ट्जन ने राजदूत वान रिबनट्रॉप को घेरा और मुझे पत्र लिखा : (लंदन 16.12.1938) ''तुमने रिबनट्रॉप के विषय में पूछा था, मुझे याद है, किंतु हमारे वान (और 'वान' एक झूठ है) ने कहा है कि वाणिज्य से उनके कोई संबंध नहीं हैं (उन्हें तो ऐसा करना ही था क्योंकि वे महाभिमानी हैं और जर्मनी के निकृष्टतम आदमियों में से एक हैं) अथवा टिम्बर व्यापार से भी कोई संबंध कभी नहीं थे।''
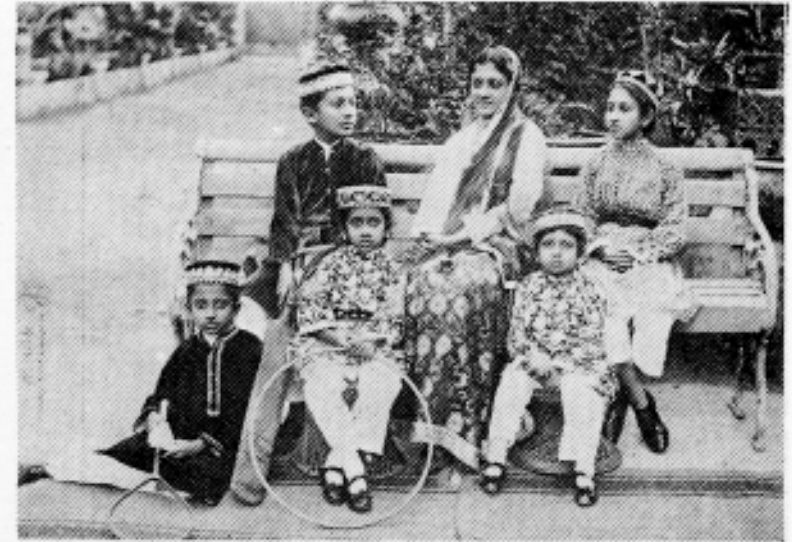
पांच में से दो तथा चार जो आ गए हैं, सन् 1902, सालिम अली दाहिने स्टूल पर (फोटो : शम्सुद्दीन लुकमान जी)

अमीर मंजिल, खेतवाड़ी का पारिवारिक घर, बंबई, सन् 1912 ऊपर दाहिनी खिड़की—'मातृत्व खिड़की', जिस कमरे में हम पांच भाई तथा चार बहनों की पूरी शृंखला का 1878 से 1896 तक जन्म हुआ।
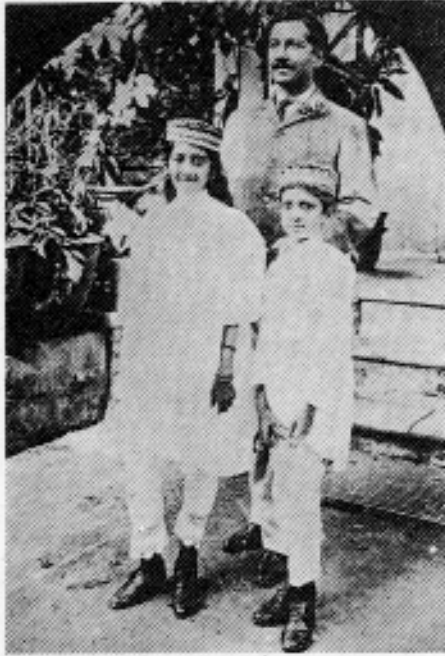
खेतवाड़ी में हामिद भाई तथा बहन कमू के साथ, सन् 1905

तैहमीना तथा उसका भाई सरहन, लंदन में, सन् 1905 या 6
(फोटो : डब्ल्यू व्हिटली लि. —फोटोग्राफर्स)

अमीरुद्दीन तैयबजी (पिता/मामा), अगस्त 1910
(फोटो : शम्सुद्दीन लुकमानजी)

सालिम अली हैदराबाद में हाशू भाई के यहां, सन् 1910

तैहमीना, जाबिर (पीछे); कमू, सातिम अली, साद, सफिया, टेवॉय; 1920

पक्का आशावादी, बी. रिव्वेन ट्रॉप, टेवॉय; 1922

तैहमीना तथा 'जेन'—मृत हरिण के साथ, शोलापुर; 1928

मेरे गुरु–प्रोफेसर अर्विन स्ट्रैसीमान, हेलिगोलैंड, अक्तूबर 1929

अल्मोड़ा जिले के सोसा में नारायणस्वामी के आश्रम में; 1945

वी.आई.पी. कोच, कोचिन वन ट्राम; 1933

हसन अली दंपति का 46 पाली हिल : मैं भी जिस घर में चालीस वर्ष रहा (फोटो : शाहिद अली)

भारत के राष्ट्रपति पद्म-विभूषण प्रदान करते हुए, 3 अप्रैल, 1976

पद्मविभूषण मानाभिषेक के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ (फोटो : अनंत देसाई, प्रेस फोटोग्राफर)

6

बंबई : 1924-29

1924 में बर्मा से भागने पर तेहमीना और मैं कुछ समय के लिए बहन कमू तथा बहनोई हसन के साथ रहे। उन्होंने पाली हिल, बंबई (अब मुंबई) में अपने नवनिर्मित विशाल बंगले में हमें नाममात्र के 'शुल्क अतिथि' (paying guest) बनने का सुअवसर दिया। हसन ने सैम्युएल, सैम्युएल एंड कंपनी के जापान के कोबे शहर में भारतीय विभाग के प्रबंधक के रूप में अच्छी सफलता प्राप्त की थी, किंतु वे भारत में रहने के लिए उत्सुक थे। यहां उन्होंने अपने स्कूल के मित्र रतनचंद तलकचंद मास्टर के साथ साझेदारी की, जो शेयर तथा मुद्रा-बाजार के समृद्ध दलाल थे। बाद में पता चला कि रतनचंद अंधाधुंध सट्टा खेलने वाले थे और शीघ्र ही उन्होंने मार खाई, दिवालिया हुए तथा इस तरह साझेदारी समाप्त हो गई। हसन ने शेयर-दलाली करने की कोशिश की, किंतु असफल होने पर उन्होंने जापान जाने का निश्चय किया। कमू तथा तीन बच्चों—साद, लईक़ और आमिर (जन्म 1924) को वे भारत में ही छोड़ गए जो उनके जापान में बसने पर वहां पहुंचे। उसके बाद पाली हिल का बंगला बर्मा शैल के प्रबंधक को किराए पर देना था। पाली हिल के चारों तरफ, मछुआरे के गांव डांडा से पूर्व की तरफ खार, विले पार्ले, सांताक्रूज आदि दक्षिण की ओर बांद्रा तक आम, इमली तथा पाल्मीरा (Borassus) ताड़ के वृक्षों सहित हरे भरे धान के खेत थे। पाली हिल का अधिकांश भाग जिसमें डांडा तक का गोल्फ लिंक शामिल था, मूलराज खटाऊ की व्यक्तिगत संपत्ति थी। इसमें हापुस (अल्फांजो) तथा पायरी कलमी आमों के विशाल बाग थे। आवास के लिए प्लाट मुख्यतया यूरोपियों को बेचे जाते थे, इसलिए वह जगह मात्र यूरोपियों की रक्षित जगह थी। खपरैल छत वाले एक मंजिले आकर्षक बंगलों की वास्तु कला 'औपनिवेशिक' थी, जिनके चारों ओर सुंदर लान तथा फूलों की क्यारियां थीं। वास्तव में स्वतंत्रता तथा उसके बाद तक यह नियम था कि किसी भी प्लाट में दो-तिहाई खुला छोड़कर एक-तिहाई में ही मकान आदि बन सकते थे। इस समय वहां न तो पक्की सड़कें थीं, न बिजली, न म्युनिसिपल की नालियां व सफाई और पानी की आपूर्ति बिलकुल

निर्भर करने लायक नहीं थी। उस मोहल्ले की सर्वप्रथम पहचान मनोहर पारसी अनाथालय था—जो आज अवाबाई मनोहर कन्या हाईस्कूल है। सुखद है कि उस समय तक वह स्थान सिनेसितारों ने नहीं खोजा था।

गोल्फ लिंक्स से लेकर कार्टर रोड तक की पहाड़ी ढलान पर, वरन धान के खेतों तक, वृक्ष ही वृक्ष थे—करौंदा तथा बेर की झाड़ियां, बबूल तथा जंगली खजूर, इमली, वट आदि विशाल वृक्ष थे जो दक्षिण कोंकण दृश्यावली की चिरपरिचित पहचान हैं। यह सब स्थल पक्षी-अध्ययन के लिए बहुत उपयुक्त थे और जब मैं 1924 में पाली हिल में था तब 'बंबई एवं सालसैट्ट के पक्षी' नाम के प्रपत्र की तैयारी के लिए मैंने अधिकांश संग्रह तथा अध्ययन किया। मेरा प्रपत्र प्रेटर के बहुत उपयोगी प्रपत्र 'मुंबई तथा सालसैट्ट के सांप' के समानांतर ही था, जो सोसायटी द्वारा अभी-अभी प्रकाशित किया गया था। पक्षी वाला प्रपत्र हुमायूं अब्दुल अली के साथ संयुक्त प्रपत्र के रूप में सासोयटी के जर्नल में कई वर्षो बाद प्रकाशित हुआ। अब्दुलअली ने भी सैंट जेवियर्स कालेज से बी.ए. (प्राणिविज्ञान) की पढ़ाई के लिए बहुत-सी उपयुक्त सामग्री इकट्ठी की थी। इसमें कॉलेज के जीवविज्ञान के निदेशक स्पेनी जेस्युइट फादर पलासिया ने उसका हमेशा उत्साह बढ़ाया। बांद्रा से चर्चगेट तक आफिस तक आना जाना वाष्प एंजिन ट्रेन से होता था। सड़कें कच्ची तथा धूल भरी थीं तथा कारें बहुत कम। इसी समय बिजली से चलने वाली पहली लोकल ट्रेन प्रारंभ हुई। विद्युत खंभों में एक बंधनी होती थी जिसमें कौए अपने घोंसले बना लेते थे जिसमें वे कभी-कभार लोहे के तार ले आते थे जिसके फलस्वरूप 'शॉट सर्किट' हो जाता था और लोकल ट्रेन रुक जाती थीं। इसे ठीक करने के लिए बेहतर बंधनी का अभिकल्पन किया गया। पाली हिल के अतिरिक्त मेरा पक्षिसंग्रहण सालसैट्ट की पौवइ, तुलसी तथा विहार झीलों; ट्रॉम्बे पहाड़ियों, मुलुंद, विक्रोली, भांडुप, घोड़बंदर, भिंडर आदि के बहुल वनाच्छादित क्षेत्रों में किया गया था। रविवार तथा अन्य छुट्टियों के दिन प्रेटर, मैककान और जेकब्स (प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम के सचिव) ने अक्सर इन 'हमलों' में साथ दिया तथा अनेक पक्षियों की अनापेक्षित नई जातियां उस संग्रह में आईं यथा : 'मलावार ट्रोगन' तथा 'त्रिपादांगुली वन किलकिला'—ये दो मुझे स्पष्ट रूप से याद हैं। आज के विक्रोली स्थित गोदरेज क्षेत्र की पृष्ठभूमि की मुलुंद पहाड़ियां घने वनों से भरी थीं, तथा झीलों का अपवाह क्षेत्र और आज जो भी आरे दुग्ध कॉलोनी है तथा बोरिवली राष्ट्रीय अभयारण्य है, ये सब एक ही सतत घने वन तथा पाल्मीरा पाम का क्षेत्र था। सूअर तथा काकड़, तथा सांभर सुलभ दिखते थे। तेंदुए अक्सर भटकते आ जाते थे, अंतिम भटककर आया बाघ सन् 1929 में बिहार झील के पास मारा गया।

जब कमू और बच्चे जापान चले गए तथा बंगला किराए पर उठा दिया गया हम लोग तैहमीना के पिताजी सी.ए.लतीफ के चौपाटी स्थित, विल्सन कॉलेज के

पीछे, हार्वे रोड के अपार्टमेंट 'लतीफिआ' के 'उच्चतम' फ्लैट में रहने लगे। टाउन हाल के दक्षिण पक्ष में स्थित 'बाम्बे प्रेसिडेंसी विमेन्स काउंसिल' के दफ्तर में आंशिक-समय सचिव का कार्य तैहमीना को शीघ्र ही मिल गया था। 'भारतीय प्राणिविज्ञान सर्वेक्षण' ने उसी समय एक 'पक्षिविज्ञानी' पद के लिए विज्ञापन दिया था। मैंने फादर ब्लैटर, डा. स्ट्रैसमान तथा बी.एन.एच.एस. को रैफरी बनाते हुए आवेदन पत्र भरा था। किंतु मेरे पास कोई डिग्री नहीं थी, अतएव एम.एससी. तथा पीएच.डी के सामने मुझे कोई उम्मीद नहीं थी। वह पद एम.एल रूंवल को मिला जो 1965 में 'भारतीय प्राणिविज्ञान सर्वेक्षण' के निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए तथा उन्होंने वह पद सुंदर लाल होरा से लिया था। उस समय मुझे गहरा विषाद हुआ क्योंकि उस समय निकट भविष्य में भारत में एक और 'पक्षिविज्ञानी' के पद के विज्ञापन की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। सभी सरकारी पदों के आकांक्षियों को मेरी सलाह यही है : विश्वविद्यालय की डिग्री लेना न चूकें, उसके चाहे जो उपयोग हों। किंतु अब पीछे की ओर देखते हुए, मुझे लगता है कि जो हुआ वह मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य था क्योंकि इससे मैं जीवाश्मित पदाधिकारी बनने से बच गया।

जब कमू 1917 में भड़ोंच में पारसी कन्या विद्यालय में पढ़ा रही थी तब बाम्बे प्रेसिडेंसी के विद्यालयों की निरीक्षक, श्रीमती ड्रैकप कमू की मित्र बन गई थीं। चेम्बूर स्थित बंबई विकास समिति द्वारा प्रस्तावित 'गार्डन सिटी' के लिए प्रतिमान सदृश बनाया हुआ एक मनमोहक 'अंग्रेज-पसंद' बंगला था। गार्डन सिटी की यह योजना बाद में त्याग दी गई। उस बंगले में श्रीमती ड्रैकप अपने पुत्र, जो बंबई प्रशासन में सचिव (1925/26) थे, के साथ, अपनी सेवानिवृत्ति के बाद रह रही थीं। श्रीमती ड्रैकप ने हम लोगों (तैहमीना के पिता कमरुद्दीन लतीफ, तैहमीना और मुझे) को चाय पर आमंत्रित किया। उस बंगले को सरकार बेचना चाहती थी और कमरुद्दीन उसे अपनी पुत्री तैहमीना के लिए खरीदना चाहते थे। श्रीमती ड्रैकप ने हमें उस मकान को देखने के लिए आमंत्रित किया था। विचार यह था कि चौपाटी का फ्लैट बेचकर कहीं उपनगर में रहा जाए जहां बगीचा हो जिसमें फूल और सब्जियां पैदा कर सकने के लिए तैहमीना अत्यंत उत्सुक थी और मैं खुले ग्रामीण क्षेत्र तथा पक्षी संबंधी अध्ययनों के लिए।

बंगले की अवस्थिति ही मोहक थी, उसका अभिकल्पन उपयुक्त, तथा उसे सुंदर रखा गया था, उसके चारों तरफ हरियाली थी और बगीचे अच्छे से बनाए गए थे। हम तीनों उस पर एकदम मोहित हो गए। चतुर तथा धैर्यवान व्यवसायी चाचा कमरुद्दीन दूसरे ही दिन से सरकार से सौदा करने लगे। इसके बाद भाव-ताव हुए और उस सौदे के पूरे होने की संभावना लगने लगी। हम दोनों बहुत ही आवेशित और उत्सुक थे। तैहमीना ने गृहसज्जा की योजना बनाना शुरू कर दिया—कौन-से

पर्दे, सोफे के साज-सामान क्या होंगे, और मैं प्रायोगिक-पक्षिगृह बनाने की योजना बनाने लगा, जिसकी मैं बहुत समय से कल्पना कर रहा था। हमने यह तो समझ लिया था कि रोज शहर आना-जाना हम दोनों के लिए असुविधाजनक तथा थकाऊ होगा क्योंकि उन दिनों चेम्बूर के लिए कोई बस नहीं थी, रेलवे स्टेशन पांच कि. मी. दूर तथा लोकल ट्रेन में बहुत-सी कमियां थीं। किंतु कुल मिलाकर बंगला इतना अच्छा लगा था कि हम लोगों ने असुविधाओं की तरफ ध्यान नहीं दिया।

शायद भाग्य को कुछ और मंजूर था। जिस समय सरकार ने चाचा कमरुद्दीन का प्रस्ताव स्वीकार किया, उनकी मृत्यु हो गई—सरकार का स्वीकृति पत्र मृत्यु के दूसरे दिन ही आया था। तैहमीना के पिता की सहायता के बिना मात्र हम दोनों की आय पर उस नए मकान में गृहस्थी चलाना असंभव होता, हम लोगों ने दुखपूर्वक उस विषय को वहीं रोक दिया। इस तरह एक सपने का अंत हुआ।

जब मुझे बी.एन.एच.एस. में कार्य मिल गया, हम लोग चौपाटी के 'लतीफिया' फ्लैट में ही रहते रहे। अनेक्सी में सइफ़ तथा बद्र पेईंग गेस्ट की तरह रह रहे थे। उनके माता पिता सलीमा तथा फैज तैयबजी सिंध में फैज की 'न्यायिक आयुक्त' की नियुक्ति पर कराची चले गए थे। सइफ़ तथा बद्र अपनी पढ़ाई क्रमशः विधि कालेज तथा सैंट जेवियर्स में पूरी करने के लिए रुक गए थे। फरवरी 1927 में अपने श्वसुर की मृत्यु पश्चात हमें चौपाटी से हटना पड़ा। हम लोग बायकला की रिबैश स्ट्रीट पर एक सुंदर इमारत 'यूनिटी हाल' के आरामदेह दो बैडरूम वाले फ्लैट में रहने लगे। वहां से दो इमारतें दूर ही क्रिकेट का मैदान था जिस पर वाई.एम.सी.ए. की टीमें खेला करती थीं। उन दिनों वह मोहल्ला सुखद, शांत तथा समादरित था, उसे आज के बदनाम गंदे 'स्लम' से नहीं समझना चाहिए, जब कि मैदान में निम्न मध्यवर्ग की 'चालें' कंधे से कंधा भिड़ा रही हैं।

तैहमीना ने 23 जून, 1927 को एक पत्र मेरी बहन कमू को जो जापान में थी, लिखा—

> ...एक प्यारा-सा छोटा फ्लैट—जो भी मुझसे मिलने आते हैं, इस फ्लैट की दिल खोलकर प्रशंसा करते हैं। यह एक अच्छे इलाके में पहली मंजिल पर है। सामने एक मैदान है जो खुलापन देता है और बगीचे की 'क्षति-पूर्ति' करता है। सामने के एक बड़े कमरे को हम लोगों ने एक लकड़ी की चिलमन से ड्राइंग तथा डाइनिंग कक्षों में बांट दिया है। दो छोटे कमरे और हैं और एक सुंदर नहाने का कमरा। एक कमरा हम लोगों का शयनकक्ष है तथा दूसरा सालिम की 'गुफा' है जिसमें उसके द्वारा निर्मित गन-अलमारी है, उसकी डैस्क, हमारी पुस्तकें तथा कुछ आराम-कुर्सियां हैं। वह अपने कमरे में बहुत प्रसन्न रहता है और तनिक भी बाधा उसे अच्छी नहीं लगती। मेरे पास पिता की

> संपत्ति में से कुछ अत्यंत सुंदर चीनी क्राकरी और अन्य वस्तुएं हैं जिनसे मेरा फ्लैट एकदम मनोहरी बन जाता है। हम लोगों ने कुछ फर्नीचर तो खरीदा है और कुछ बनवाया है—जैकोबियन काल का—और सचमुच, कहना तो नहीं चाहिए, बहुत सुंदर लगता है। हम लोगों की टेबल पर टेबल क्लॉथ नहीं है पर 'मैट' वगैरह हैं, टेबल बहुत सुंदर है उसकी पालिश चमकती रहती है तथा अंडाकार है। पिछली रात श्रीमती नायडू तथा पद्मजा ने हमारे साथ भोजन किया और हम लोगों को बहुत आनंद आया। वे दोनों मुग्ध करने वाली हैं, और इतनी मिष्टभाषी, इतनी हंसोड़ कि हम लोगों के हंसते-हंसते पेट में दर्द होने लगा।

अचानक ही मैंने देखा कि इस इमारत की तीसरी मंजिल पर मेरा स्कूल के दिनों का सहपाठी रहता है—उस्मान सोभानी। खिलाफत असहयोग आंदोलनों में उसने अपने भाई उमर की अपेक्षा सीधे तौर पर कम ही भाग लिया था, तब भी उस्मान बड़े-बड़े राजनैतिक नेताओं—मौलाना शौकत अली, सरोजिनी नायडू, शुएब कुरैशी और अन्य अनेक—के निकट था तथा वे उसके यहां, एक अविवाहित के रमणीय एवं सुरुचिपूर्ण अपार्टमेंट में अक्सर आते थे। उस राजनैतिक भंवर में फंसने से हम अपने को रोक न सके किंतु हम उसकी बाहरी सतह पर ही रह सकने में समर्थ रहे, यह इसलिए कि इनके 'विरोध' में भी हमारे भारतीय तथा ब्रितानी मित्र थे जिनसे हम अपनी मित्रता बनाए रखने के लिए उत्सुक थे। तथा मैं अपनी प्रमुख रुचि—प्राकृतिक इतिहास तथा पक्षियों से भटकना भी नहीं चाहता था।

इस तरह हमने दोनों संसारों से चाहे वे जैसे भी रहे हों, अच्छा लाभ उठाया। राजनैतिक गहमागहमी के उन दिनों सरोजिनी नायडू ताज होटल में रहती थीं ताकि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की, बहुत बैठकों में वे तुरत-फुरत भाग ले सकें, जहां तक मुझे याद है वे उस समिति की अध्यक्ष थीं, और किसी भी हालत में वे गांधीजी की निकट सहयोगी तथा विश्वासपात्र थीं। उनकी उल्लेखनीय तीक्ष्ण बुद्धि तथा हास्यबोध—आज के समान ही उन दिनों के राजनीतिज्ञों में इसकी कमी थी—की सहायता से वे गरमागरम वातावरण को शीतल बना देती थीं तथा गुटों के बीच शांति ला देती थीं। श्रीमती नायडू को न केवल आनंददायक हास्यबोध का वरदान था वरन वे उन बिरले राजनीतिज्ञों में से थीं जो स्वयं अपने ऊपर हंस सकते हैं तथा अपनी महत्ता से सम्मोहित नहीं रहते। संभवतया निकट सहयोगियों में से केवल वे ही थीं जो गांधीजी के साथ विनोद-संवाद तथा ठिठोली कर सकती थीं, और गांधीजी स्वयं भी अच्छे विनोद का आनंद लेते थे और स्वयं अपने ऊपर किए विनोद पर हंस सकते थे। श्रीमती नायडू अक्सर महात्मा गांधी को 'मिकी माउस' कहा करती थीं और गांधीजी इस प्रशंसा को उसी हल्के विनोदीपन के साथ अपनी

दंतहीन मुस्कराहट के साथ स्वीकार करते थे। अपने राजनैतिक जीवन के पूर्व से ही श्रीमती नायडू के निकट मैत्री संबंध तैयबजी परिवार से थे, विशेषकर बड़ौदा वाले तैयबजी से। उस परिवार के 'कुलपिता' मेरे मामा अब्बास थे जो बाद में (1930) बारदोली तथा नमक सत्याग्रहों में श्रीमती नायडू के निकटतम सहयोगी थे। उस्मान के यहां की किसी मुलाकात में श्रीमती नायडू को पता लगा कि तैहमीना और मैं नीचे ही रहते हैं, तब से वे उनके यहां ऊपर जाते हुए या नीचे उतरते हुए, अक्सर आनंददायक अनौपचारिकता से हमारे यहां आ जाती थीं। वे बहुत वाक् पटु थीं, कहानी सुनाने वाली तथा नकल उतारने वाली थीं। वे ताजी घटनाओं, संस्मरणों तथा हास्यबोध से और ताजी कविताओं के पाठ से हमें आह्लादित तथा तृप्त कर देती थीं। उनके समकालीन राजनीतिज्ञों की कमजोरियां तथा सनकों के आकलन विशेष तीक्ष्ण तथा मनोरंजक होते थे।

इस तरह की एक अनियोजित मुलाकात के समय वे हमारे यहां हांफते हुए मौलाना शौकत अली, जो बंबई के खिलाफत आंदोलन के नेता थे, को लाईं तथा हमारा परिचय कराया, साथ ही उनके साथी मनोहर, प्रिय शुएब कुरैशी से भी, जो हमारे घनिष्ठ मित्र बन गए तथा नित्य ही मिलने लगे। कुरैशी की आवाज भारी तथा मधुर थी और वे अक्सर इकबाल के मर्मस्पर्शी, देशभक्ति तथा इस्लाम भक्ति की कविताएं गाकर हमारा मनोरंजन करते थे। कुरैशी कवि तथा इस्लाम के प्रशंसक इकबाल के भक्तों में से थे। उनका एक मधुर तथा ललित पाठ आज तक मेरे कानों में गूंज रहा है। उसमें सिसली द्वीप की महत्वपूर्ण घटनाओं का मर्मस्पशी प्रशंसात्मक वर्णन है, सिसली जिसमें कभी इस्लाम का प्रभुत्व था और जो यूरोप के लिए महत्वपूर्ण था। शुएब एक उत्साही तुर्क भक्त था जो अनवर पाशा को पूजता था। 1912 के बाल्कंस के युद्ध में वह डा. एम.ए. अंसारी के चिकित्सा मिशन में तुर्कों की सहायता के लिए गया था, तथा गोला-बारूद के बीच से घायल सैनिकों को निकाल लाने वाली बहादुरी के लिए उसकी बहुत प्रशंसा की गई थी।

सन् 1927 में भारत में रेफ्रिजरेटर पहली बार लाए गए थे और मुझे याद है कि तैहमीना और मैं अपने परिवार में उसे खरीदने में वाले पहले थे। गर्मियों के आम के मौसम में वह केल्विनेटर विशेष आनंद देता था क्योंकि ठंडे अल्फांजो (हापुस) एक निराली वस्तु है। इससे मुझे एक घटना याद आती है जब एक उदार मित्र ने अपने बाग में से आठ बढ़िया अल्फांजो भिजवाए थे; उसका बाग सचमुच में आमों के उत्तम स्वाद के लिए विख्यात था। उसी समय उस्मान के यहां ऊपर जाते हुए मौलाना ने हमारे दरवाजे पर दस्तक दी और हांफते हुए एक विशाल डीलडौल वाले भारी भरकम मौलाना ने प्रवेश किया। अतिथि सत्कार के लिए उत्सुक दिखने के प्रयास में तैहमीना ने एक गलती की–जो कभी नहीं दुहराई गई–उसने पूछा कि क्या मौलाना ठंडे किए आम खाना चाहेंगे। निश्चय ही वह महान व्यक्ति

कृपा करने के लिए तैयार थे और कहा कि पहले उन्होंने कभी भी फ्रिज में रखे आम नहीं खाए हैं। तैहमीना ने जो बड़ी गलती की, जिसका अहसास उसे देर के बाद हुआ, वह यह कि सभ्यता के नाते उसने एक कटोरे में आठों आम रख दिए–वह भी उस विशाल आकार के भूखे व्यक्ति के सामने। हमारी दबाई गई भयाकुलता के सामने वे आम एक के बाद एक उस विशाल तोंद में तीव्रगति से गायब होते गए, हां बीच में एक या दो बार प्रशंसात्मक उच्चार अवश्य आए, और अंत में हम लोग खाली कटोरा ही देखते रह गए। सचमुच एक अच्छी शिक्षा को सीखने की यह कीमत चुकानी पड़ी।

शुएब एक समय तक पक्के गांधीवादी, राष्ट्रवादी तथा कांग्रेसी थे, किंतु दुर्भाग्यवश उन्हें कोई कारण मिल गया और वे पूरा पलटा खाकर पक्के कांग्रेस विरोधी, जिन्नावादी तथा पाकिस्तान समर्थक हो गए। भोपाल राज्य में वे एक मंत्री थे और जब भोपाल राज्य का भारत गणतंत्र में विलयन हुआ तब वे पाकिस्तान चले गए तथा समय पर पाकिस्तान के केंद्रीय मंत्रिमंडल में मंत्री हुए।

श्वसुर की मृत्यु पश्चात, तथा अपने फ्लैट में जमने के बाद सबसे पहले हम लोगों ने एक छोटी कार खरीदी। हमारी कार सात हार्स पावर वाली 'बेबी आस्टिन' थी जिसकी कैनवस की मुड़वां छत थी तथा उसके पहिए साइकिल के समान तार के 'स्पोक' वाले थे। नई कार की कीमत 1700 रु. थी जब कि 'शॉक एब्जार्बर' तथा 'विंड शील्ड वाइपर' के दाम इसमें शामिल नहीं थे। वह एक गैलन पैट्रोल में 45 मील देती थी, और दो मुख्य तेल कंपनियों 'बर्मा आइल' तथा 'शैल' में स्पर्धा के फलस्वरूप एक गैलन के दाम मात्र 11 आना थे। सड़क के किनारे पैट्रोल पंप कम तथा दूरी पर थे। दो गैलन की वपनी ('कैनिस्टर') में पैट्रोल मिला करता था–बर्मा आइल की वपनी का रंग हरा होता था तथा शैल का लाल। उस समय की जर्जरित जेबी पुस्तिका मुझे बतला रही है कि 300 मील से ऊपर की पूना से भी आगे लोनंद तक की शिकार यात्रा का आने जाने का पैट्रोल खर्च मात्र 13 रु. 8 आना था।

सामान्यतया हम लोग फोर्ट तक साथ-साथ जाते थे। 'प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम' के रास्ते में टाउन हाल के दक्षिणपक्ष में मैं तैहमीना को ('वीमेंस काउंसिल) उसके दफ्तर के पास उतार देता था। तैहमीना ने कार का नाम, अपनी प्रिय लेखिका 'जेन ऑस्टिन' के नाम पर 'जेन' रखा था। 'नेचुरल हिस्ट्री' वीथिका के बाहर खुले बरामदे में जेन को दिन भर के लिए 'पार्क' करता था, ऊंचे बरामदे पर चढ़ाने के लिए जमीन से दो समानांतर पटिये रखे गए थे। रविवार तथा छुट्टियों के दिन वह छोटी-सी कार बहुत आनंद देती थी–पिकनिक, पक्षिसंग्रह या छोटे शिकार के लिए वह हमें साल्सैह में मुंबई के पास-पड़ोस तक, तथा प्रधान भूभाग और उसके पार तक ले जाती थी। मुंबई से 350 कि.मी. की दूरी तक, छुट्टियों में वह हमें

पूना, औरंगाबाद, नासिक आदि तक मजे से घुमाती थी। सड़कें बिना डामर की, धूल तथा गड्ढों से भरी थीं इसलिए अधिक दूर तक जाने का साहस करना मना था। इस हल्की कार को चलाते समय बहुत धीरे तथा सावधानी से चलाना पड़ता था क्योंकि ट्रकों तथा दूसरे बड़े वाहनों का उत्पात तो रहता ही था तथा जब वे आंगे जाते तो हमें धूल से ढांक देते थे। मानसून में बिना पुल वाली नदियां तथा नाले उस छोटी कार से पार नहीं किए जा सकते थे। मुख्य पूना-औरंगाबाद सड़क पर, मुझे याद है, एक बार हमारी कार भीमा नदी के रेतीले तल के ठीक बीच में रुक गई थी—आधी पानी में तथा आधी पानी के ऊपर; और उसके बाद एक बैल की जोड़ी ने बड़े अभिमानपूर्वक, बिना विशेष ताकत लगाए, यूं ही, उस कार को उस मुश्किल में से निकाला था और सारा दिन खींचने के बाद हमें गांव तक पहुंचाया था। उसके हल्केपन का एक और लाभ था—यदि पैट्रोल शहर के बीच में खतम हो जाए तब उसे एक ही व्यक्ति मजे से 'बच्चा-गाड़ी' की तरह घुमाता हुआ निकट के पैट्रोल पंप तक ले जा सकता था।

कृष्ण हिरण पूना के थोड़ा आगे से शोलापुर तथा उससे भी आगे तक प्रचुर संख्या में थे, और सड़क के दोनों तरफ शायद ही कभी न दिखते हों, वरन कार के सामने से सड़क भी पार करते रहते थे। कोई कहीं भी रुककर, थोड़ा-सा दबे पांव जंगल में जाकर शिकार किए जाने वाले उपहार तक पहुंच सकता था। शिकार लाइसेंस की कोई भी अनिवार्यता नहीं थी। बहुत-से सप्ताहांत शिकारी, अपने अतिरिक्त शिकारों को किसी भी ताज जैसे बड़े होटल को रेल से 'मृत हिरण लो' तथा 'भाड़ा दो' की तर्ज पर भेज दिया करते थे। यह सामान्य प्रथा थी, तथा होटल वाले उस शिकार को पैसे देकर रेल विभाग से लेकर अपने 'मैन्यू' में गर्व से दर्शाते थे, तथा शिकारी को धन्यवाद सहित पांच रुपए भी दिया करते थे। शिकार के खुले मौसम में असली शिकारी भी ऐसा ही करते थे और होटल रोज ही अपने 'मेन्यू' में 'मृग-मांस' गर्व से दर्शाते थे। मानसून में चिकनी काली मिट्टी कुरंग ('एंटीलोप') के शीघ्र भागने में बाधा डालती है इसलिए वे बहुत सुलभ हो जाते हैं, जिसका पूरा लाभ व्यावसायिक शिकारी उठाया करते थे। इसलिए इसमें क्या आश्चर्य कि इस तरह के व्यावसायिक 'कत्ले आम' द्वारा, जिसे चार पहियों वाली जीपें, तीव्र संकेंद्री लैंप, बंदूकों का मुफ्त बंटवारा (उपज बचाव के नाम पर) तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात, विशेष तथा स्वतंत्रता प्राप्ति बाद, कानून और व्यवस्था का ढीलापन आदि भी उकसाते थे, इस क्षेत्र से 'कृष्ण हिरण' (कृष्ण कुरंग) का सफाया हो गया।

'यूनिटी हाल' के फ्लैट में सरोजिनी नायडू तथा उनकी पुत्री पद्मजा हमारे यहां आया करती थीं और सादे भोजन के लिए रुक जाती थीं। तत्पश्चात हम अपनी 'जेन' में उन्हें उनके होटल तक छोड़ आया करते थे। उस छोटी नाजुक

कार में चार पूर्ण विकसित वयस्क प्रेम से 'फिट' होते थे, किंतु उतने प्रेम से कभी नहीं हुए जितने जब भारी भरकम मौलाना शौकत अली सामने की 'बाल्टी सीट' में से, लबालब भरने के बाद, जैसे छलके जा रहे थे। मैं चालक की सीट पर था तथा पीछे की सीट पर सरोजिनी तथा तैहमीना भी एक दूसरे से 'सटी' हुई—यह घटना मुझे अभी तक याद है। इस तरह लदी कार मौलाना की तरफ झुककर एक मनोरंजक दृश्य प्रस्तुत कर रही थी। इस दृश्य को देखकर उस कार के निर्माताओं के हृदय आनंद से अवश्य भर जाते; यह सप्रमाण प्रदर्शित हो रहा था कि मौका पड़ने पर यह ठिगंचू क्या कर सकती थी।

7
नौकरियां : 1923-29 और जर्मनी : 1929-30

जब मैं अपने स्वभाव के अनुरूप 'प्राकृतिक इतिहास' संबंधी विषयों में नौकरी के लिए प्रयत्नों में सफल नहीं हो रहा था तब मेरे कृपालु संभ्राताओं ने मदद करने के लिए कपास निर्यात करने वाली 'एन. फतेहअली एंड कंपनी' में अस्थायी क्लर्क की नौकरी दिलवा दी थी। वहां मैंने अपने पद को भव्य नाम दिया था, 'एक्स्ट्रा असिस्टेंट सब डिप्टी हैडक्लर्क, प्रोटैम (अस्थायी)। उसका वेतन, जिसे मधुर भाषा में भत्ता कहा जाता था, 150 रु. प्रतिमाह था; किंतु जापान में एक महत्वपूर्ण कपड़ा मिल वाले ग्राहक के असफल होने पर, शीघ्र ही वह वेतन नीचे खिसककर 100 रु. हो गया था। क्योंकि उसके फलस्वरूप कंपनी को भी गंभीर घाटा हुआ था।

परिस्थितियों के दबाव में मैंने वह नौकरी आभारपूर्वक, यद्यपि बिना विशेष उत्साह के, स्वीकार की थी। चूंकि आफिस-प्रबंध में मैंने कुछ ही शिक्षण प्राप्त किया था, तब भी मुझे आशा थी कि उस 'आफिस रूटीन' में दयालु मालिकों के कारण जो गड्डमगड्ड व्याप्त था उसमें कुछ तो व्यवस्था ला पाऊंगा। वह कंपनी लगभग सन् 1870 में स्थापित की गई थी। और मुझे अचरज हो रहा था कि व्यावसायिक कारोबार में पद्धतिसंगत तंत्र की ओर ध्यान दिए बिना इस लंबे अंतराल के ध्वंसात्मक उलट-फेरों के बीच, इस कंपनी ने अपना अस्तित्व कैसे बचाकर रखा है। मुझे खेद के साथ स्वीकार करना पड़ रहा है कि प्रारंभिक आशावादी बाहुल्य तथा सुधारक उमंग के बाद मैंने हार मान ली। स्पष्टतया उस 'सब चलता है' वातावरण में, सभी में बदलने की इच्छा के अभाव में मेरा प्रभाव नगण्य लग रहा था। अनेक संकटों को पार करने की शक्ति जो 'एन. फतेहअली एंड कं.' ने दिखलाई थी, वह पूर्णरूप से पांचों भाई-साझेदारों की सामान्य तथा असामान्य परिस्थितियों में प्रशंसनीय एकता तथा तर्कसंगत समंजन भावना के बल पर थी।

इसी समय, मेरे एक और संबंधी अदन में अपनी शाखा के लिए आफिस खोल रहे थे, उन्होंने मुझें व्यावसायिक नौकरी के लिए पूछा। मेरी उस बेरोजगार

स्थिति में आर्थिक रूप से वह प्रस्ताव आकर्षक अवश्य था किंतु मैं सुखी हूं कि मैंने, लालच के वश में न आकर, उसे ठुकरा दिया। वे बगुला भगत संबंधी बहुत सफल व्यवसायी थे, उनके पिछले कार्यों एवं चतुर पद्धतियों को देखते हुए, वे मुझसे भी उसी तरह के चतुर कार्यों की अपेक्षा करते, जो मैं अपनी नैतिकता के कारण खुशी-खुशी न कर पाता।

जैसा कि भाग्य में था, बी.एन.एच.एस. ने दीर्घ वाद विवाद के पश्चात बंबई शासन को एक 'गाइड व्याख्याता' की नियुक्ति के लिए बजट का अनुमोदन करने के लिए समझाने में सफलता पा ली थी; यह नियुक्ति प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम के नए-नए प्राकृतिक इतिहास विभाग के लिए थी। इस नियुक्ति की चयन समिति के अध्यक्ष रिवरेंड फादर ब्लैटर थे जिन्होंने मेरी पूरी मदद की। मेरी नियुक्ति का श्रेय उन्हें तथा म्यूजियम के क्यूरेटर प्रेटर को ही था। 'गाइड-व्याख्याता' को क्यूरेटर के मातहत कार्य करना था। जिस समय मेरे बहनोई शम्स तथा मैंने हैदराबाद के अदीलाबाद जिले के उत्नूर वन में शिकार-उत्सव मनाने की योजना बनाई थी, भाग्यवश उसी अवधि में चयन समिति अपनी बैठक कर रही थी। उस समय वह वन इस प्रायःद्वीप में एक अति उत्तम बाघ देश था। चूंकि मैं उस नियुक्ति के लिए एक अभ्यार्थी था, बहुत निराश होकर, मुझे उस शिकार-उद्यम के लिए ना करनी पड़ी (जो हालांकि बाद में दुर्भाग्यपूर्ण निकाला)। नई नियुक्ति में कार्य प्रारंभ करने के कुछ ही दिनों बाद मुझे एक दुखद समाचार मिला। शम्स जब अपने द्वारा घायल किए गए बाघ को, किंचित असावधानी के साथ, टोह रहे थे तब उस बाघ ने उन्हें क्षत-विक्षत कर मार डाला। यद्यपि उनके युवा पराक्रमी साथी अजीम ने लड़कर उस बाघ को भगा अवश्य दिया था किंतु उस बाघ ने उन्हें भी पंजों से नोचा तथा दांतों से काट लिया था, किंतु वे भाग्यशाली ही थे कि उन्हें बंबई के अच्छे अस्पताल में समय पर लाया जा सका जहां हफ्तों की भारी चिंता एवं शुश्रूषा के बाद वे जीवित बच गए।

मेरी बड़ी बहन अशरफ के पति शम्स, अपने तौर से उल्लेखनीय, अजीब विरोधाभासों से पूर्ण किंतु प्रिय एवं बहुत अच्छे साथी (विशेषकर शिकार-कैंप में) थे। उनका स्वभाव अच्छा था, निपुणता से कार्य करने की योग्यता उनमें थी, और जो भी काम पसंद आ जाए उसे सामान्य लोगों से बेहतर करने की क्षमता थी, बशर्ते कि उसका व्यवसाय अथवा पारिवारिक जिम्मेदारियों से सरोकार न हो। उदाहरणार्थ डाक टिकटों का संग्रह, शौकिया नाटक, संगीत, क्रिकेट अंपायरिंग तथा क्लब की गतिविधियों में वे असीम परिश्रम तथा समय गंवा सकते थे; और उनके हृदय को बड़ा शिकार सर्वाधिक प्रिय था, जिसमें, यह विडंबना ही थी कि भाग्य ने उनका ज्यादा साथ नहीं दिया। उनके जीवन की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा थी बाघ का शिकार, जिसके लिए ही वे जीवित थे और जैसा कि हुआ, उसी के लिए

वे मरे। शिकार से उनका इतना मोह था कि देसी साहब लोगों ने उनका नाम 'नवाब हरदम शिकार जंग' रख दिया था।

नवीन 'प्रकृति अध्ययन विभाग' के लिए पाठ्यक्रम बनाने तथा उसके कार्य की व्यवस्था करने का कार्य आनंददायक था। उस योजना के लघु जीवन में, भाग लेने वाले विद्यालयों के शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में प्राकृतिक इतिहास की गहरी समझ में निश्चित उन्नति हुई, तथा म्यूजियम के प्राकृतिक इतिहास विभाग की सामान्य जनता में लोकप्रियता स्पष्ट दृष्टिगोचर हुई। प्रारंभ में कुछ विद्यालय ही चुने गए थे जो अपने विद्यार्थी पूर्व नियत समय पर भेजा करते थे, उन्हें पारदर्शियों, मिट्टी के नमूनों तथा म्यूजियम-नमूनों की सहायता से जंतु-जीवन पर सरल तथा अनौपचारिक जानकारियां दी जाती थीं। अंध-विद्यालय से आए विद्यार्थियों से बात करने में विशेष आनंद आता था। वे विषय में जीवंत रुचि रखते थे, और उनके लिए विशेषरूप से तैयार किए गए अस्थियों तथा खोपड़ियों के माडलों पर मात्र अंगुलियां फेर कर ही शारीरिक संरचना को समझ लेने की उनकी जादुई क्षमता पर मैं हमेशा चकित ही रहा। सोसायटी की 'प्रकृति शिक्षा योजना' की उपयोगिता तथा सफलता इतनी संतोषजनक थी कि वित्तीय कठिनाइयों जैसे संदिग्ध बहाने के आधार पर बंबई प्रशासन द्वारा मात्र तीन ही वर्ष में उसे बंद कर देना असंगत लगा, विशेषकर इसलिए कि इस योजना पर खर्च नगण्य ही था। इसलिए स्वतंत्रता के शीघ्र बाद जब बाम्बे प्रांत के मुख्यमंत्री बी.जी.खेर हुए, जो सोसायटी के मित्र थे, इस योजना को पुनर्जीवित करने के प्रयास किए गए। प्रेटर तथा सोसायटी के क्यूरेटर तथा अवैतनिक सचिव के बतौर मैंने मिलकर दबाव डाला और सफलता पाई। एम.आर.राउत उस योजना के व्यवस्थापक बने। लगभग 1949 से इसके उद्देश्यों तथा गतिविधियों में विस्तार के साथ यह संतोषजनक रूप से कार्यशील है, और इसमें संदेह नहीं कि पिछले कुछ वर्षों में, महाराष्ट्र की सामान्य जनता में तथा युवा वर्ग में वन्य जीवन तथा प्रकृति संरक्षण के प्रति चेतना में निश्चित वृद्धि हुई है जिसके लिए सोसायटी आंशिक रूप से निश्चित ही जिम्मेदार है।

मेरे लिए गाइड-व्याख्यान के दो वर्ष ही पर्याप्त सिद्ध हुए। मैं समझ गया कि मेरा हृदय पक्षियों में है। इसलिए मैंने तय किया कि इस विषय में पूर्णकालिक कार्य की आशा के साथ जुड़ने से पहले, मैं विधिवत क्षेत्र पक्षिविज्ञान में शिक्षण लूं। तब मैंने नहीं सोचा था कि आटे-दाल का प्रबंध कैसे होगा। भारतीय प्राणिविज्ञान में पक्षिविज्ञान हमेशा सिंडरैला (सौतेली लड़की) ही रही है, इसलिए भारत में कोई विश्वविद्यालय या संस्था नहीं थी जहां ऐसी शिक्षा मिल सके। अतएव मैंने ब्रिटिश म्यूजियम (प्राकृतिक इतिहास) तथा बर्लिन विश्वविद्यालय प्राणिविज्ञान संग्रहालय से लिखकर पूछा कि उनके यहां इस शिक्षण के लिए क्या क्या सुविधाएं हैं। उस समय, 1929 में, ब्रिटेन का वातावरण भारत के विरुद्ध पक्षपात तथा कड़ुवाहट से

भरा था जैसा कि बदनाम चर्चिल के कथन से पुष्ट होता है—'आधा नंगा फकीर महामहिम सम्राट (His Majesty the King Emperor) के प्रतिनिधि से बराबरी से, शर्तों के साथ, बहस करने की धृष्टता करता है'। इसलिए ब्रिटिश म्यूजियम से जो उदासीन-सा उत्तर आया उससे मैं समझ गया कि ब्रिटेन में काम करने के लिए अनुकूल वातावरण नहीं मिलेगा। दूसरी तरफ, यद्यपि उस समय प्रोफेसर अरविन स्ट्रैसैमान मुझे व्यक्तिगत रूप से नहीं जानते थे, उनका उत्तर इतना सद्भावपूर्ण तथा स्वागती था कि मैंने बर्लिन जाने का निश्चय तुरंत ही कर लिया।

वर्गीकरण विज्ञान के प्रायोगिक शिक्षण में मदद के लिए स्ट्रैसैमान ने सुझाव दिया था कि मैं कुछ भारतीय पक्षियों का संग्रह लेकर पहुंचूं ताकि उनके पथ प्रदर्शन में वह कार्य कर सकूं। बर्मा से 200 पक्षियों का संग्रह हाल ही में बंबई (सोसायटी) पहुंचा था। उसका संग्रह बी.एन.एच.एस. के सक्रिय पक्षिविज्ञानी सदस्य जे.के. स्टैनफोर्ड, आई.सी.एस. द्वारा सोसायटी के चर्म संस्कारी ई. हेनरिक्स की सहायता से मेरे ख्याल से हैनजादा जिले में किया गया था। स्टैनफोर्ड ने यह कार्य डा. क्लोड बी. टाइसहर्स्ट की प्रेरणा से लिया था जो स्पष्टतया आगे का कार्य स्वयं करना चाहते थे। इस कार्य को एक अनजाना अपरिपक्व भारतीय करे, वह भी एक बदमाश जर्मन (काइजर के युद्ध के तुरंत बाद) की सहायता से, इस जानकारी से टाइसहर्स्ट को इतना क्रोध आया कि, मेरी पीठ पीछे, उन्होंने शिकायत करते हुए सोसायटी को एक विधिवत प्रचंड विरोध करने वाला पत्र लिखा। उन्होंने लिखा कि संग्रहकर्ता श्री स्टैनफोर्ड इस अपमान को कभी क्षमा नहीं करेंगे। सर रेजिनाल्ड स्पेंस, मानक सचिव, तथा प्रेटर दोनों को मेरी योग्यता पर विश्वास था और इस बात से सहमत थे कि स्ट्रैसैमान की सहायता तथा पथ-प्रदर्शन से संग्रह के प्रति न्याय ही होगा। इतिहास यह कहीं नहीं दर्शाता कि सचमुच ही श्री स्टैनफोर्ड को सोसायटी के इस कार्य से आक्रोश हुआ था या वह मात्र टाइसहर्स्ट की व्याकुल कल्पना ही थी। श्री स्टैनफोर्ड ने स्वयं या तो विधिवत या अनौपचारिक ढंग से, उस समय या बाद में इस आक्रोश को व्यक्त नहीं किया। वरन् 1950 में अंतर्राष्ट्रीय पक्षिविज्ञानी कांग्रेस में, हम जब उप्साला, स्वीडन में मिले तथा इसके बाद की बैठकों व पत्राचार में भी वे मेरे प्रति सद्भाव तथा मित्रता से परिपूर्ण थे।

मेरे 'पक्षिविज्ञानी कैरियर' में बर्लिन सर्वाधिक लाभदायक एवं प्रभावशाली सिद्ध हुआ। मैं उस समय पक्षिविज्ञान का एक अनजाना महत्वाकांक्षी विद्यार्थी ही था, और व्यक्तिगत रूप से स्ट्रैसैमान के लिए एकदम अनभिज्ञ, तब भी उन्होंने जो स्नेह मुझे दिया और पहले दिन से ही श्रमपूर्वक सहायता तथा प्रथप्रदर्शन किया, वह पूरी अवधि तक बराबर चलता रहा, उसे मैं विशेष कृपा मानता हूं जिसने मेरे हृदय को आह्लादित किया। उनकी सादगी और विनम्रता, उनका निरभिमानी पांडित्य, उनका सरल किंतु सजीव हास्यबोध तथा उनके वैज्ञानिक ज्ञान की विशालता से

उस व्यक्ति, वैज्ञानिक, सलाहकार एवं मित्र के प्रति मैं प्रशंसा से भरपूर और प्रभावित हूं जो कि समय के साथ बढ़ती ही गई है। प्रारंभ से अंत तक मैं उन्हें अपना गुरु मानता हूं। वर्गीकरण की गुत्थियां हों, पारिस्थितिकी या प्राणिभूगोल की समस्याएं हों, जब भी उनसे सलाह मांगी, वह तुरंत और हमेशा मिली, पूरे विवरण के साथ वह भी उनके हाथ की लिखाई में। यह दूसरी बात है कि उनकी पंक्तियां आड़ी टेढ़ी हों और पढ़ने में दुश्वार हों, किंतु ज्योंही वे समझ में आती हैं तब उनका सूक्ष्म-तार्किक और असंदिग्ध अर्थ एकदम स्पष्ट हो जाता है। विश्वभर में उनके पास मेरे जैसे बहुत-से रक्षित मित्र होंगे, अतएव मेरे लिए यह सदा ही आश्चर्य रहा है कि वे किस तरह सभी के पत्रों का उत्तर देते होंगे, और दिन प्रतिदिन बढ़ते वैज्ञानिक ज्ञान के समकक्ष रहते होंगे, स्वयं अपना अनुसंधान करने के लिए कैसे समय निकालते होंगे तथा पक्षिविज्ञान संसार के जाने माने स्थापित विद्वान के रूप में उनकी जो अन्य जिम्मेदारियां हैं, उन्हें किस तरह निभाते होंगे !

बी.एन.एच.एस. के क्यूरेटर किन्नियर उन व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने प्रारंभिक वर्षों में मेरे युवा हृदय में पक्षियों के प्रति जिज्ञासा की लौ जगाई थी। किंतु वे गांधी युग के कलुषित भारत-ब्रितानी वातावरण में और 'ब्रिटिश म्यूजियम' के प्रभामंडल में अब बदले नजर आ रहे थे। 1929 अगस्त में बर्लिन में चम्पकरमन पिल्लै मिले, वे प्रथम विश्वयुद्ध के पहले से ही बर्लिन में रह रहे थे। वे 'अंतरिम भारत सरकार' नामक क्रांतिकारी दल के 'फरार' सदस्य थे। इस तथाकथित सरकार को काइजर ने एक प्रकार की मान्यता दी थी। उत्तर प्रदेश के निर्वासित तालुकदार राजा महेन्द्र प्रताप इस संस्था के अध्यक्ष थे। वे बहुत ही सरल, कहना चाहिए अत्यंत भोले व्यक्ति थे, यद्यपि वे गंभीर तथा निष्ठावान राष्ट्रवादी दृष्टा थे। इस अंतरिम सरकार के एक और सदस्य थे एम.एन.राय जिन्होंने शायद मास्को को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था, इनसे मेरी भेंट नहीं हुई। युद्ध के दौरान, पिल्लै का दावा था कि वे काइजर से अक्सर मिलते थे और भारत में ब्रिटिश के विरोध में जो विध्वंसक प्रचार अंतरिम सरकार परोक्ष रूप से करती थी उसकी जानकारी काइजर को दिया करते थे। पिल्लै राजा महेन्द्र प्रताप की तरह गंभीर तथा सच्चे थे किंतु, अपने नेता के असमान, व्यावहारिक तथा उपयोगितावादी क्रांतिकारी थे। युद्ध में जर्मनी की हार के उपरांत ब्रिटिश सरकार ने दोनों के सिर पर पुरस्कार घोषित कर दिया था, अतएव उन दोनों ने जर्मनी में ही रहने में बुद्धिमत्ता समझी। हम लोगों ने पाया कि पिल्लै एक उत्कृष्ट रसोइये थे और विदेशी मसालों की सहायता से भी भारतीय स्वादिष्ट भोजन यदाकदा बनाकर हमें खिलाया करते थे। अनेक वर्ष विदेश में रहने के बाद, स्वतंत्रता के बाद पिल्लै केरल आए थे किंतु पुनः जर्मनी वापिस लौट गए जहां उनकी मृत्यु हुई। काइजर के पतन के बाद राजा महेन्द्र प्रताप सिंह जापान चले गए थे और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वहीं से भारत आकर देहरादून में निवास करने

लगे थे। नेहरू सरकार तथा सामान्य जनता ने उन्हें जिस तरह अनदेखा किया उससे उन्हें बहुत निराशा अवश्य हुई होगी। किंतु जो उन्हें जानते थे उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ यद्यपि राष्ट्र के लिए उन्होंने जो त्याग किए, उनकी ईमानदारी तथा देशभक्ति पर किसी को संदेह नहीं था।

बर्लिन विश्वविद्यालय प्राणिविज्ञान संग्रहालय में कार्य करते समय मैंने बर्नहार्ड रेंश से पहचान बनाई। तेजस्वी युवा प्राणिवैज्ञानिक बर्नहार्ड रेंश सुंडा द्वीपों में पक्षियों तथा अन्य जंतुओं का व्यवस्थित संग्रह कर रहे थे। जातियों के उद्भव एवं विकास के संदर्भ में जलवायु के कारकों द्वारा उत्पन्न भौगोलिक वैविध्य की समस्याओं का भी वे विशेष अध्ययन कर रहे थे। उनकी नियुक्ति संग्रहालय के कर्मचारियों में 'मलाकॉलॉजी विभाग' (मृदुजीव विभाग) में तभी हुई थी, यह भी उनका एक विशेष क्षेत्र था। वास्तव में विभाग में उस समय कोई स्थान खाली नहीं था। मैं और बर्नहार्ड एकदम मित्र बन गए और तैहमीना तथा बर्नहार्ड की मित्रवत तथा मोहक पत्नी ईल्से भी। युद्ध और शांति के दौरान वे हमारे निकटतम विदेशी मित्र रहे हैं। उन्होंने प्राणिविज्ञान संबंधी अनेक महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। हिटलर ने जब चेकोस्लोवाकिया को मुक्त किया तब वे प्राहा म्यूजियम के निदेशक बने। कुछ वर्ष पूर्व ही वे म्युंस्टर की विश्वविद्यालय प्राणिविज्ञान संस्था के निदेशक पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। व्याख्याकार जैवविज्ञानी तथा संवेदनशील, कलात्मक, तथा सुसंस्कृत मनीषी के रूप में मैं उनका बहुत सम्मान करता हूं।

संग्रहालय के पक्षिकक्ष में मैं अर्न्स्ट मायर से भी पहली बार मिला। वे भी स्ट्रैसैमान के तेजस्वी तथा उदीयमान चेले थे। वे न्यूगिनी से महत्वपूर्ण पक्षिसंग्रहण अभियान से उसी समय लौटे थे। मैं उन्हें इसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात अमेरिका में ही मिला। विश्वयुद्ध के पूर्व ही उन्होंने जर्मनी से उत्प्रवासन किया था। उन्होंने उसके बाद न्यूयार्क में 'प्राकृतिक इतिहास का अमेरिकी संग्रहालय' द्वारा खरीदे गए 'राथ्सचाइल्ड पक्षिसंग्रह' पर वर्गीकरण तथा जाति विभेदन पर विस्तारपूर्वक गहरा कार्य किया। अर्न्स्ट मायर इस समय हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्राणिविज्ञान के अवकाशप्राप्त (सम्माननीय) प्रोफेसर हैं। इस समय विश्व के उच्चतम जैव वैज्ञानिकों में उनकी गणना निर्विवाद रूप से होती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि अपने गुरु स्ट्रैसैमान की तरह निरभिमान विनम्र न होकर, वे आपको यह अनुभूति देते हैं कि वे इस गुण से नितांत अपरिचित नहीं हैं।

यहीं पर मेरी पहली मुलाकात विनोदी तथा अध्यवसायी जैव-विज्ञानी ऑस्कर हाइनरॉथ और उनकी असाधारण पत्नी माग्दलीना से हुई। ऑस्कर बर्लिन 'जू' प्राणि-उपवन (जू) तथा जलजीवशाला' (अक्वेरियम) के निदेशक थे जहां बाद में उनसे अक्सर भेंट होती थी। वे 'पक्षिव्यवहार' के अध्ययन को 'आधुनिक विज्ञान' की स्वतंत्र शाखा बनाने के लिए समर्पित प्रणेता थे। सचमुच ही हाइनरॉथ को

'जीवपारिस्थितिकी' (Ethology) का पिता कह सकते हैं। पहले विभिन्न पक्षिसमूहों के बीच संबंध--जैवविकासीय संबंध--मात्र शारीरिक रचना तथा आकृति विज्ञान के आधार पर किए जाते थे। जीवपारिस्थितिकी ने इस अवधारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है और इस तरह 'सिस्टमैटिक्स' (वर्गीकरण का आधुनिक रूप) तथा जैवविज्ञान में जो बड़ी खाई थी उसे पाटा है। पक्षियों के जीवन संबंधी आचार-व्यवहार के हाइनरॉथ के अध्ययनों ने मेरी आंखें खोल दीं, उन समस्याओं और संभावनाओं की ओर जिन पर पहले नगण्य ध्यान दिया जाता था। इस सबने भारतीय पक्षियों पर किए गए, मेरे बाद के कार्य को सही दिशा दी तथा पारिस्थितिकी का सुदृढ़ आधार दिया, जिसकी समीक्षकों ने प्रशंसा की।

जो बर्मी पक्षिसंग्रह मैं बंबई से लाया था उस पर स्ट्रैसैमान के मार्गदर्शन में कार्य करने से मुझे वर्गीकरण कार्य के लिए तकनीकों तथा प्रक्रियाओं का उपयोगी ज्ञान मिला। साथ ही उस ज्ञान ने आधार वाक्यों पर विश्वास के कारण जल्दी में निकाले जाने वाले निष्कर्षों के कारण सामने आने वाले खतरों के समान अंधकूपों से भी अवगत कराया। जर्मनी में मेरे अध्ययन-अवकाश में संग्रहालय में कार्य के अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण कार्य थे उनमें स्ट्रैसैमान के साथ हैलिगोलैंड में पक्षियों के प्रवासन का अध्ययन भी था। वह अध्ययन उत्साही डॉ. रुडौल्फ ड्रौस्ट के मार्गदर्शन में हो रहा था।

उत्तर सागर में एल्ब तथा वैसर नदियों के मुहाने पर जर्मनी के प्रधान भूभाग से पचास किलोमीटर दूर, हैलिगोलैंड एक वृक्षहीन खड़ी चट्टान है। यह चट्टान तिकोनी तथा 60 मीटर ऊंची है और उत्तर से आते पक्षियों के प्रवासन मार्ग पर है। इस द्वीप का ऊपरी भाग, 'ओबरलैंड', लहरियादार समतल है जिसमें हरी मखमली घास है किंतु सतत चलती अत्यंत तेज हवाओं के कारण उस पर कोई वृक्ष नहीं है। इसलिए पक्षियों को उस पर उतरने का आकर्षण देने के लिए उसके उत्तरी कोने पर एक बाग बनाया गया है। यह 'साप्सकुल' नामक बाग निचाई पर फंदों का छद्म बाग है। 120 मीटर लंबे तथा 15 मीटर चौड़े इस बाग में घनी झाड़ियां और झंखाड़ हैं तथा पक्षियों के लिए ताजे पानी के कुंड या ताल हैं। चतुराई से बनाए गए शंकवार जाली के फंदे झाड़ियों में अच्छी तरह छिपे रहते हैं। पक्षियों को इस शंकवार जालियों में से बढ़ाते हुए कांच की दीवार वाले बक्सों में खदेड़ा जा सकता है। वहां से उन्हें छल्ला पहनाने के लिए निकाला जा सकता है। विशाल गड्ढे में बने बाग की गहराई बढ़ाने के लिए चारों तरफ 2.5 मीटर ऊंची कंक्रीट की दीवार बनाई गई है, जो झाड़ियों की तूफानी हवाओं से रक्षा करती है। हैलिगोलैंड में मैंने पहले बार पक्षियों को छल्ले पहनाने की तकनीकों को व्यवहार में देखा था, जिनका उपयोग तब से बी.एन.एच.एस. की विभिन्न 'क्षेत्र-परियोजनाओं' में किया जा रहा है।

हैलिगोलैंड में फंदेदार बाग के अतिरिक्त 42,000 कैंडल पावर वाला जबर्दस्त

प्रकाश स्तंभ है। बसंत तथा पतझड़ की बादलों से घिरी रातों में इसके प्रकाश पुंज हजारों-लाखों पक्षियों को चुंबक के समान आकर्षित करते हैं। प्रकाश स्तंभ के शिखर या कंगूरे के कांच की दीवारों से ये भ्रमित पक्षी टकराते हैं और चकाचौंध होकर उसकी बालकनी में फड़फड़ाते रहते हैं। वहां से उन्हें बोरों में भरकर लाया जाता है तथा छल्ला पहनाया जाता है। प्रवासी पक्षियों का बादलों से घिरी रातों में प्रकाशस्तंभ पर आकर्षित होने वाली प्रक्रिया बिलकुल वही है, जो पूर्वांचल में मेघालय के जटिंगा गांव में होती है तथा जिसे कुछ अखबार सनसनीखेज बनाते हुए लिखते हैं--'पक्षियों द्वारा सामूहिक आत्महत्या'। बसंत तथा पतझड़ी प्रवासों के दौरान हैलिगोलैंड के जैव-विज्ञानी स्टेशन पर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी तथा शौकिया पंछिनिहारक भी प्रचुर संख्या में आते हैं। ये न केवल जर्मनी से वरन यूरोप के अनेक देशों से आते हैं अतएव अनुभवी स्वयंसेवकों की भी वहां कोई कमी नहीं होती। ऐसी व्यस्त रात में प्रकाशस्तंभ में पक्षियों को बोरों में भरकर ऊपर नीचे दौड़ते, उत्साही युवा, सुनसान प्रकाशस्तंभ को सजीव बना देते हैं। जिस सीढ़ी से यह धमाचौकड़ी होती है वह प्रकाशस्तंभ के रखवाले के घर की मंजिल से गुजरती है, और स्वभाववश तथा ऐसी रात में उनकी नींद में जबर्दस्त बाधा पड़ती है। रखवाले की पत्नी से स्वयंसेवक आतंकित रहते हैं क्योंकि वह आधी रात में, नींद में बाधा पड़ने पर कभी भी चंडी का रूप रखकर उन पर चिल्लाती हुई बरस पड़ सकती है। उसके गरजते हमले से भारी भरकम तगड़े लोग जब डरकर दबे पांव भीगी बिल्ली के समान चढ़ने उतरने लगते हैं, तब एक तरफ तो उस दृश्य को देखकर हंसी आती है; तथा दूसरी तरफ ऐसी रात का हुड़दंगी वातावरण देखकर उस दुखित महिला के साथ सहानुभूति भी होती है।

अनुकूल मौसम की रात में 1200 तक या इससे भी अधिक पक्षी छल्ला पहनाने के लिए पकड़े जा सकते हैं। साथ ही हैलिगोलैंड के निवासी उस रात को, ईश्वर प्रदत्त अवसर मानकर सैकड़ों और हजारों पक्षी व्यक्तिगत उपयोग के लिए ले जाते हैं। स्तंभ के आधार के चारों तरफ दसियों मीटर की शाद्वल पट्टी पर या तो निश्शेष पक्षी, या वे जो टकराकर बदहवास हो गए हैं या मृत्यु के निकट पहुंच गए हैं, फड़फड़ाते रहते हैं। पक्षियों के महानाश को फालतू बिल्लियां अपनी लूटखसोट से सर्वनाश में बदल देती हैं। ये फालतू बिल्लियां हमारी पूज्य गायों की तरह लोकभावनाओं के द्वारा सुरक्षित रहती हैं जिसके लिए हैलिगोलैंड उतना ही कुख्यात है जितना प्राचीन काल में कुस्तुन्तुनिया कुत्तों के लिए था। यह सब द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले की बातें हैं। हो सकता है कि उसके बाद स्थिति में कुछ सुधार हुआ हो--अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने आदेश (इन आदेशों को लगभग सभी देशों ने स्वीकार कर लिया है।) दिए थे कि प्रकाशस्तंभ के दीपों के चारों ओर नरम जाली लगाई जाएं ताकि प्रवासी पक्षी टकराकर आहत या मृत न हों।

8
हैदराबाद राज्य पक्षिवैज्ञानिकीय सर्वेक्षण

जर्मनी से 1930 के प्रारंभ में लौटने पर मैं किहिम में एक बेरोजगार तथा असफल रोजगार-शिकारी की तरह शरणार्थी जीवन व्यतीत कर रहा था और उस समय मैं सोच रहा था कि विदेश में प्राप्त निपुणता का उपयोग किस तरह किया जाए। तब सबसे पहले क्षेत्रीय पक्षिवैज्ञानिक सर्वेक्षणों का विचार मेरे मन में आया। भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल क्षेत्र थे, विशेषकर राजाओं के राज्य, जिनके पक्षिजीवों की खोज तथा अध्ययन बहुत कम किया गया था। मैंने बी.एन.एच.एस. के सामने प्रस्ताव रखा कि मैं स्वयंसेवक की तरह, इन क्षेत्रों का सुव्यवस्थित क्षेत्र-सर्वेक्षण करने के लिए तैयार हूं बशर्ते कि सोसायटी कार्यगत खर्च तथा वाहन आदि के लिए धन का प्रबंध करे, कैंप सुविधाओं की व्यवस्था करे, राज्य वन सेवा तथा अन्य प्रशासनिक विभागों से स्थानीय सहायता प्राप्त कराए, तथा सोसायटी के एक या दो क्षेत्र-संग्राहकों एवं चर्मसंस्कारकों की सेवाएं मुझे प्रदान करे। हैदराबाद राज्य का हमारा पक्षिवैज्ञानिक ज्ञान सबसे कम था अतएव स्पष्टतया सर्वेक्षण के लिए इसका सर्वप्रथम चयन स्वभाविक था क्योंकि इसके पड़ोसी क्षेत्र के 'पूर्वी घाटों' के 'वर्ने वैज्ञानिक सर्वेक्षण' के परिणाम महत्वपूर्ण थे। उस समय निजाम के प्रशासन में बहुत से महत्वपूर्ण पदों पर भारत सरकार द्वारा उधार दिए गए ब्रिटिश आईसीएस या राजनैतिक विभागों के अधिकारी हुआ करते थे। इनमें से अधिकांश शिकारी–प्रकृति-विज्ञानी तथा बी.एन.एच.एस. के सदस्य थे अतएव उन्होंने सोसायटी के निवेदन पर सहानुभूतिपूर्वक प्रतिक्रिया दिखलाई। मेरे दूर के संबंधी सर अकबर हैदरी, राज्य के वित्तमंत्री ने तथा मेरे कार्य के प्रशंसक राज्य के अन्य शुभेच्छुओं ने बी.एन.एच.एस. के प्रस्ताव तथा निवेदन की व्यक्तिगत रूप से मदद की। इस तरह निजाम सरकार के प्रशासकों से अंतहीन से लगने वाले पत्राचार के बाद उस क्षेत्रीय सर्वेक्षण हेतु तीन माह के कार्य के लिए तीन सौ रुपयों का अनुदान स्वीकृत हुआ। उसके बाद तुरंत ही हैदराबाद राज्य का पक्षिवैज्ञानिक सर्वेक्षण

प्रारंभ हुआ। चूंकि उस निर्धारित अवधि में सारे राज्य का सर्वेक्षण नहीं किया जा सका, सरकार ने अतिरिक्त दो माह का अनुदान और दिया।

अपने समय के भारतीय पक्षियों के अध्ययन में अग्रणी ह्यू ह्विसलर ई सी स्टुअर्ट बेकर के समान इंपीरियल पुलिस सर्विस के अधिकारी थे। उन्होंने स्वैच्छिक-सेवानिवृत्ति के पूर्व के पूरे सोलह वर्ष पंजाब में ही बिताए थे। अपने भारत के आवास में उन्होंने पक्षियों का संग्रहण एवं उन पर अध्ययन इतनी सूक्ष्मदृष्टि तथा पूर्णता से किया था कि उनकी व्यावसायिक कुशलता से अनभिज्ञ व्यक्ति यही सोचेगा कि उनकी पुलिस की नौकरी बहुत फुरसत की रही होगी। जब तक उन्होंने भारत छोड़ा, उन्होंने न केवल पंजाब की पक्षिवैज्ञानिकी वरन पड़ोस के कश्मीर तथा एन.डब्ल्यू.एफ.पी. की और इसी प्रक्रिया में समस्त ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य की पक्षिवैज्ञानिकी का सर्वाधिक ज्ञान अर्जित कर लिया था। ससैक्स (इंग्लैंड) में बैटल में जमने के बाद वे भारतीय पक्षियों तथा उत्तरी समशीतोष्ण कटिबंध के पक्षियों संबंधी विशेषज्ञता का विकास करते रहे, किंतु वर्गीकरण पर अधिक और क्षेत्रीय संग्रहण पर कम।

आश्चर्य की बात है कि ह्विसलर से मेरे संबंध, अन्य अनेक अंग्रेज मित्रों की तरह, तनातनी तथा रूखेपन से ही प्रारंभ हुए। लगभग 1928 में तब बी.एन. एच.एस. के 'जर्नल' में ह्विसलर एक प्रशंसनीय लेखमाला 'भारतीय पक्षियों का अध्ययन' लिख रहे थे, उन्होंने 'पताका पूंछ भुजंगा' (Racket-tailed Dnongo) के लंबित पुच्छ परों की निर्मिति पर एक टिप्पणी की जिसका मैंने खंडन किया था। उस समय मैं ह्विसलर को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता था और संभवतया उन्होंने भी मेरा नाम पक्षियों के संबंध में नहीं सुना था। खुले खंडन से, स्वभावतया उन्होंने चिढ़कर क्रोध भरा अहंकारी पत्र सर रेजिनाल्ड स्पेंस एवं एस.एच.प्रेटर संपादकद्वय को लिखा। किंतु अपने नमूनों के पुनर्परीक्षण पश्चात तथा यह समझ लेने के बाद कि मेरा कथन सही था, जर्नल के एक अगले अंक में उन्होंने अपनी गलती सुधार ली। मेरे विभिन्न क्षेत्रीय पक्षिसर्वेक्षणों में वर्षों के गहरे तथा उपयोगी सहयोग के बाद ह्विसलर ने एक पत्र (दिनांक 24.10.1938) में मुझे भुजंगे की पूंछ संबंधी घटना की याद दिलाई, जब वे मुझे मेरे द्वारा भेजे गए कुछ पक्षिचर्मों के लिए धन्यवाद दे रहे थे, "आपके हाथों जो सहायता तथा सहृदयता मुझे वर्षों मिलती रही, उसमें एक और मणिका जोड़ने के लिए अब मैं आपको हृदय की गहराई से धन्यवाद देना चाहता हूं कि आपने जो भुजंगे के पुच्छ परों पर मेरी गलती ठीक की थी, उस दुर्घटना से हम लोगों का जो सहयोग प्रारंभ हुआ उससे मुझे बहुत अधिक लाभ हुए और वह गलती मेरे लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई।"

उस समय तक इस तरह का पक्षिसर्वेक्षण व्यवस्थित ढंग से करने का मुझे कोई अनुभव नहीं था। अतएव मैंने ह्विसलर से सुझाव तथा सलाह मांगी और साथ

ही यह पूछा कि पड़ोसी पूर्वी घाटों के उनके वर्ने वैज्ञानिक सर्वेक्षण के विस्तार रूप में हैदराबाद संग्रह पर वर्गीकरण कार्य करना चाहेंगे। ह्विसलर इस सहयोगी कार्य के लिए अत्यंत उत्सुक लगे, और 'यह सर्वेक्षण कैसे करना चाहिए' पर उत्कृष्ट सुझावों की सूची मुझे शीघ्र ही उन्होंने भेजी। सुझावों के साथ मेरे गुरु स्ट्रैसैमान की, समय समय पर, क्षेत्र में मिली युक्तियां इस तथा भावी पक्षिसर्वेक्षणों में बहुमूल्य सिद्ध हुईं। ह्विसलर के नुस्खे इतने उपयुक्त और उत्कृष्ट हैं कि, यद्यपि उनका यहां होना विवादास्पद हो सकता है, मैंने उन्हें इस पुस्तक के परिशिष्ट में रखा है ताकि जो इस कार्य को करना चाहें उन्हें इनका लाभ मिल सके। क्षेत्रीय पक्षिसर्वेक्षणों के परिणामों की जितनी प्रशंसा हुई है उसका अधिकांश श्रेय ह्विसलर के प्रशंसनीय नुस्खों तथा हैदराबाद एवं अनुवर्ती सर्वेक्षणों के दौरान उनकी लगातार पत्रव्यवहार द्वारा सक्रिय साझेदारी को निश्चित ही जाता है। अपनी असमय मृत्यु (1944) के समय तक, उन्होंने सक्रिय सहयोग बनाए रखा।

उस समय तक, वास्तव में उनके बहुत बाद तक,'कुहासा जाल' (मिस्ट नैट्स) को कोई नहीं जानता था। किंतु अंतिम कुछ वर्षों में उनके उपयोग करने के बाद मेरा निश्चित मत है कि गोली मारने तथा अवलोकन की पूर्ति करने के लिए जब तक 'कुहासा जाल' उपयोग न किया जाए, कोई भी क्षेत्र संग्रहण पूर्ण नहीं कहलाया जा सकता। उष्णकटिबंधीय घने जंगलों (जैसे पूर्वी हिमालयी तराई) की घनी झाड़ियों के बहुत-से शर्मीले तथा दुबकने-छिपने वाले पक्षियों की उपस्थिति, जिनके विषय में हमें तनिक भी भान नहीं है, हमें सही तरीके से लगाए गए जालों से ही ज्ञात हो सकती है। जाल के लगाने का समय भी उषा तथा संध्या काल के अंधेरे भाग अथवा रात में ही लाभकारी होता है। 1959 में डब्ल्यू.एच.ओ. तथा बी.एन.एच. एस. की छल्ला पहनाने की संयुक्त परियोजना का प्रारंभ हुआ था; उसी समय जापानी कुहासा जाल का उपयोग भारत में पहली बार किया गया था। उसके पूर्व के मेरे द्वारा किए गए संग्रहण की पूर्णता पर सहसा मेरा विश्वास डिग गया है। बहुत-से सर्वेक्षित क्षेत्रों की पक्षिसूची में उनके उपयोग ने अनेक नए पक्षियों को जोड़ा है, जो अभी तक अनजाने थे और निस्संदेह जाल के अधिक उपयोग से और भी नए नाम जोड़े जा सकते हैं।

मैं हमेशा ही अच्छी लिखावट का प्रशंसक रहा हूं। मेरे लिए यह लिखने वाले के साफ मन तथा सूक्ष्मता एवं पूर्णता प्राप्त करने की चेष्टा का प्रतीक रहा है। ऐसा सामान्यीकरण, संभवतया, सही होने के लिए, अत्यधिक सरल है, और इस नियम को गलत सिद्ध करने के लिए पर्याप्त उदाहरण मिल सकते हैं यथा, स्ट्रैसैमान, रॉय हॉकिन्स आदि आदि। किंतु ह्विसलर के उदाहरण में यह नियम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने अपने सारे पत्र, वर्गीकरण की टिप्पणियां, विवेचना और मापों की सारणियां आदि श्रेणीबद्ध तथा स्तंभानुसार स्पष्ट तथा साफ लिखावट में लिखी हैं।

आज के दिनों में जब अवमूल्यन ने 'कैलिग्राफी' (सुलेख कला) को भी नहीं छोड़ा, तथा सुपाठ्य–सुंदर की तो बात ही न करें–लिखावट पुराना फैशन हो गई है तब उनके पत्रों को देखना ताजी हवा के झोंके की अनुभूति देने के समान था। मुझे मालूम नहीं कि वे किस तरह अपने लिखे विषयों आदि का हिसाब रखते थे क्योंकि कार्बन कॉपी बनाने का कहीं निशान नहीं मिलता। तब भी उन्होंने शायद ही कभी कुछ अनावश्यक दोहराया हो या पहले लिखा हुआ भूले हों।

हैदराबाद राज्य में (अक्तूबर-दिसंबर 1931, मार्च-अप्रैल 1932) जो क्षेत्र मैंने नमूनों का संग्रह करने के लिए चुने थे, उनमें से बहुतों में संचार साधन आदिम अवस्था में ही थे। उनका दूर-दराज होना उनके चयन का एक कारण था। वहां पहुंचने के लिए या तो पैदल ही जाना पड़ता या खचड़ा बैलगाड़ियों (बिना स्प्रिंग की) से, सड़कों के नाम पर गहरी खचित, धूल भरी तथा ऊबड़ खाबड़ लीकें थीं या कच्चे वन मार्ग थे जिन्हें बीच-बीच में पहाड़ी नाले काटते थे (जो उस अवधि में सूखे थे) ऐसी सड़कें जिन्हें आज की मधुर भाषा में 'जीपयोग्य' कहते हैं। किंतु वह तब की बात है जब जीपें नहीं बनी थीं। ऐसे नालों में बड़े-बड़े पत्थर बिछे होते थे जिन्हें पार करते समय गाड़ीवान गाड़ी के वेग को तेजकर, भयंकर चिल्लाहट के साथ, चाबुक घुमाते हुए तथा बैल की पूंछ उमेठते हुए भड़-भड़, खड़-खड़ करती गाड़ी को चलाते थे। अक्सर ही मैं और तैहमीना भी वृक्षों की छाया में, या जब सूर्य अधिक न तप रहा हो या जब गाड़ी की सवारी बहुत अधिक दर्द दे रही हो तब गाड़ी के पीछे पैदल चलना पसंद करते थे। इस हिंसक बरताव से अक्सर गाड़ी की लकड़ी की धुरियां टूट जाती थीं। किंतु इसमें मरम्मत के लिए जो समय लगता सिवाय उसके नुकसान के कोई और समस्या नहीं होती थी क्योंकि गाड़ीवान स्वयं ही कामचलाऊ बढ़ई होते थे तथा इस तरह की छोटी-मोटी परेशानियों के अभ्यस्त होते थे। धुरी टूटने पर वे सीधे जंगल में जाते, अपने बहु-उद्देश्य मोटे चाकू से उपयुक्त कठोर वृक्ष की शाख काटकर, उसे काट-तराशकर धुरी का आकार देते और शीघ्र ही हम लोग फिर से अपनी यात्रा पर होते थे। मुझे याद आ रहा है कि पूर्णिमा के आसपास के दिन थे, इसलिए दिन की तेज गर्मी से बचने के लिए हम लोग दोपहर के बाद पैदल तथा बैलगाड़ी पर निकले। उम्मीद थी कि अगले कैंप-पड़ाव तक सात या आठ बजे रात तक पहुंच जाएंगे। रास्ते में एक स्थान पर धुरी टूट गई, और भी कुछ जगहों पर थोड़ी-थोड़ी देर हुई, फलस्वरूप हम लोग अपने कैंप रात के एक बजे भूखे और थके हुए पहुंचे। सौभाग्य से चांदनी रात खूब उजियारी थी। हमारा रसोइया रहीम उत्तर प्रदेश से था और वहां के स्वतंत्रता पूर्व के सर्वश्रेष्ठ रसोइयों में से एक था। उसे रसोई का सामान निकालने तथा बनाने में बहुत समय लगता इसलिए हम लोगों ने तय किया कि बिना खाए ही सोया जाए। परंतु रहीम ने जब यह सुना तो उसे लगा कि यह उसके सिद्धांत के खिलाफ

है और उसने कहा कि ऐसा नहीं चलेगा। उसके लिए हम लोगों का बिना खाए सोना उसकी बर्दाश्त के बाहर था। इसलिए उसने जल्दी से लकड़ी इकट्ठी कर जलाई और कम से कम बर्तन, सामान आदि निकालकर खाना पकाया। हमें छन-छन करता, उसी दिन मारे (शिकार में) हुए चिंकारे का भुना हुआ गुर्दा तथा यकृत, कुछ ही मिनटों में परोसा गया, साथ में ठंडी चपातियां (जो वह स्वयं अपने लिए लाया था) थीं। यह ठीक है कि शाही भोजन नहीं था, पर बात यह है कि हमें भूखे पेट नहीं सोने दिया गया। यह दुख की बात है कि बीत गए समय की रहीम सरीखी निष्ठावान तथा आदर करने वाली जाति देखने का सौभाग्य अब हम लोगों को नहीं मिलेगा, क्योंकि वह अब विलुप्त हो चुकी है।

अक्सर ये सर्वेक्षण क्षेत्र, अधिकांशतया बस-मार्गों से भी दूर थे, वैसे बस-मार्ग स्वयं ही बहुत कम तथा दूर-दूर थे। उस राज्य में राज्य परिवहन बहुत कमजोर था तथा निजी परिवहन कस्बों तथा दूरदराज के स्थानों में नहीं पहुंचता था। निजी परिवहन के लिए पुरातन शेवरलेट या फोर्ड कारें स्थानीय प्रतिभा की मदद से 'हड्डी तोड़' वाहन में परिवर्तित की गई थीं, उनकी दीवारें भी तीन प्लाई वाली लकड़ी या जस्ताई-लोहे की बनी रहती थीं, तथा इनमें यात्रियों की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं था। इन्हें भी किराए पर लेना मुश्किल काम था, अक्सर उन्हें किसी तरीके से मनाना पड़ता था या स्थानीय पुलिस सब-इंस्पेक्टर या अन्य शासकीय अधिकारी का दबाव डालना पड़ता था। इन शासकीय अधिकारियों को सहायता के लिए पहले से ही पत्र लिख दिए गए थे। इन बसों के मालिक-ड्राइवरों के व्यवहार तथा व्यावसायिक तरीकों से इसमें संदेह नहीं रह गया था कि ये बसें सचमुच 'निजी' हैं, मालिक-ड्राइवरों का समुदाय दुखदायी ही था। सुबह छह बजे ठीक समय से आने के लिए अनेक आग्रहों तथा उनके गंभीर आश्वासनों के बावजूद बसों का दर्शन सात या आठ बजे होता था। हम लोग छह बजे से अपने सामानों के साथ बैठे इंतजार करते, या पैरों से जमीन नापते हुए उन्हें कोसते। बिना झिझक के उनका देर से आने का कारण चिल्लाने के बाद, सामान बार-बार चढ़ा उतारकर ही जमाया जाता; सामान-नमूना रखने के लिए बक्से, लालटेन, जस्ताई लोहे की बाल्टियां, आटा, चावल की बोरियां, घी, कैरोसीन तथा टीन आदि-आदि—बस के अंदर तथा ऊपर रखा जाता। ऊपर छत पर बांस की गुंबदाकार खुली जाली होती थी जिसमें मुर्गियां रखी जाती थीं जो धीरे-धीरे पेट में उतरती जाती थीं। इसके बाद ड्राइवर को अचानक याद आता कि उसे पैट्रोल चाहिए, और बस फिर पैट्रोल पंप जाती। वहां बिजली न होने से पैट्रोल पंप हाथ से ही चलाया जाता, अर्थात और विलंब ! इस तरह की नियत बाधाओं से, शायद ही हम कभी नौ बजे के पहले निकल पाए हों, तब तक दिन का तपना शुरू हो जाता। इसके बाद गंतव्य पर पहुंचना अनेक अनजान कारकों पर निर्भर करता था—सड़क की हालत, अस्थमा पीड़ित खंखारते इंजिन का स्वास्थ्य,

शक्ल से अपशकुन दिखलाने वाले रबड़ चढ़े टायरों की हालत आदि। कैंप कभी पी.डब्ल्यू.डी. के डाक बंगले में, कभी वन विश्राम गृह में तो कभी खाली की गई गौशाला में लगता। उन दिनों, स्वतंत्रता के पूर्व, दूर दराज के या कम उपयोग में आने वाले विश्राम गृहों की स्थिति अच्छी नहीं होती थी, उनमें बिना तकिए तथा बिस्तर के लोहे के पलंग तथा लकड़ी की कुछ मेजें और कुर्सियां आदि ही मिलते थे, इसलिए हमें पूरी तैयारी के साथ यात्रा करना पड़ती थी। बिस्तर, तौलिये, चादरें, बाल्टियां, रसोई के बर्तन, लालटेन, क्रॉकरी, कटलरी आदि सभी कुछ ढोना पड़ता था—और कहीं अनपेक्षित गौशाला में ठहरने के लिए मुड़वां कैंप खाटें भी। जहां कहीं लंबा पड़ाव होता था वहां जीर्ण शीर्ण चौरियों (यात्रियों के ठहरने के स्थान) को भी, घर सरीखे आरामदेह रहने योग्य बना देने की कला तैहमीना को सहज ही आती थी। कैंप में पहुंचने पर जब अन्य लोग संग्रह के लिए निकल पड़ते, तैहमीना अपने कार्य में लग जातीं—जगह की सफाई करवाने, साफ सुथरा करने तथा, रंगीन पर्दों, चादरों और गुलदस्तों जैसी छोटी मोटी वस्तुओं को 'घरवाली' का मृदुल स्पर्श देने में व्यस्त हो जातीं—वे इन छोटी बड़ी वस्तुओं को साथ ले चलने के लिए हमेशा आग्रह करतीं : यह सब सुख ही देता था।

जहां मोटर बसें नहीं मिलती थीं, वहां बैलगाड़ी या कुलियों की सहायता से चलते, तब कैंपों के बीच की दूरियां आठ-दस मील (12-16 कि.मी.) सरीखी कम ही रखी जाती थीं।, वैसे भी बसों से भी कैंप-अंतराल तीस से पचास मील (50-80 कि.मी.) ही हो पाते थे। नमूने-बक्सों को खोलने में, मेजों को जमाने में और थोड़ा व्यवस्थित होने में कुछ घंटे लग ही जाते, इसलिए पहला संग्रहण प्रारंभ करने में देर-दोपहर हो जाती थी। परिस्थितियों तथा अनुभवों से प्रभावित मेरी योजना होती थी कि अपने सहायक चर्मसंस्कारी को पास पड़ोस के सुलभ पक्षियों के संग्रहण कार्य को समझाना और उसे उस पर छोड़ना। बी.एन.एच.एस. के क्षेत्र सहायकों में से जो बाद के अधिकांश पक्षिसंग्रहणों में मेरे साथ गया था, 'पूर्वी भारतीय ईसाई' था—उन पुर्तगाली औपनिवेशिक दिनों में उसे मात्र 'गोआनी' से भिन्न रखने के लिए उसके सहकर्मी सम्मानपूर्वक उसे यह संबोधन देते थे। उसका नाम था जॉन गैब्रिएल जो शांत, विश्वसनीय और चर्मसंस्कार में आश्चर्यजनक रूप से तेज तथा कुशल था तथा जो उत्कृष्ट चर्मसंस्कारित पक्षियों का निर्माण करता था। जिस किसी ने भी 'फूलचुही'[1] या पत्र-कूजिनी,[2] जो संग्रहण की प्रक्रिया में अक्सर बुरी तरह आहत होती थीं, जैसे छोटे पक्षियों के चर्म उतारने तथा तत्पश्चात उसे भरने का कार्य किया है वही उस कार्य की कठिनाई, धैर्य की आवश्यकता और उसे करने

1. 'फूलचुही' (Flowerpecker)
2. पत्र-कूजिनी (Leaf Warbler),

में देर लगने की आवश्यकता का मूल्यांकन कर सकता है। चर्मसंस्कार को उत्कृष्ट बनाने के लिए उसे मात्र अध्ययनार्थ नमूने के रूप में प्रस्तुत करना ही नहीं होता, वरन उसकी उपजाति की पहचान का निर्धारण करने के लिए उसके परों के सूक्ष्म विवरण दिखना भी आवश्यक होता है। इतना सब चाहने के बाद भी, मैंने गैब्रियल को, सुबह संग्रहण करने के बाद, चर्म उतारने तथा पूरे संस्कार करते, रात्रि-भोजन तक 26 छोटे-बड़े पक्षियों को बड़ी सफाई तथा उत्कृष्टता के साथ प्रस्तुत करते देखा है। गैब्रियल को बतलाने पर कि कौन-कौन से पक्षियों का संग्रहण करना है, उनकी सही पहचान करने के लिए गैब्रियल पर पूरी तरह निर्भर किया जा सकता था—और इससे सारे कार्य संतोषप्रद हो जाते थे। प्रत्येक दोपहर के पहले जब हम अपने-अपने संग्रहण परिभ्रमण से लौटते तब मैं आदतन गैब्रियल से पूछता कि भाग्य ने उसका साथ कैसा दिया। और अधिकांशतया उसका उत्तर वही होता था, उसके अपने चित्रोपम तथा नियत शब्दों में—'मैंने प्रयत्न पर प्रयत्न किए कि मैं कुछ बेहतर पक्षी लाऊं लेकिन इसके अतिरिक्त कुछ नहीं दिखा', (अपने हैवरसैक से निराशा के साथ वह क्षत-विक्षत मैना या अन्य सुलभ पक्षी के अवशेष निकालता)। फिर मैं कहता, "चलो, ठीक है।" उत्कृष्ट पक्षियों के न मिलने पर, यह मैं स्वीकार करता हूं, मैं भी कभी-कभी यह व्यावहारिक पद्धति अपना लेता था, विशेषकर इसलिए भी कि उपजातियों की पहचान के लिए सुलभ पक्षियों का भी बहुत महत्व है। स्वभाव तथा व्यवहार के आधार पर, गैब्रियल एकदम मनचाहा क्षेत्र-सहायक तथा शिविर-सहायक था। उसका एक बड़ा दोष था, जो भोजन के समय परेशान करता था : जब भी वह चम्मच से मुंह में कौर डालता तब चम्मच उसके दांतों से टकराकर जो धातुई कटकट करती वह साधारण स्थितियों में भी चिड़चिड़ापन पैदा करती किंतु मानसिक तनाव की स्थिति में तो पागल करने वाली होती थी।

पक्षियों के अध्ययनार्थ स्थल का चुनाव महत्वपूर्ण होता है। एतदर्थ 'भारतीय सर्वेक्षण' के विशाल मानचित्रों के भौतिक पहलुओं पर विविध तथा संभावनापूर्ण स्थलों का अध्ययन करने, तथा स्थानीय वन-कर्मचारियों तथा शिकारियों से बातचीत करने के बाद ही उपयुक्त स्थलों का चुनाव दस मील (16 कि.मी.) की त्रिज्या के भीतर किया जाता था। यह भी देखना अत्यंत आवश्यक होता था कि उस स्थल पर पैदल जाया जा सकता था। मेरे अन्य क्षेत्रीय सर्वेक्षणों में भी इसी सामान्य योजना के आधार पर कार्य कुल मिलाकर संतोषजनक हुआ। हां, कुछ जीवक्षेत्र या कुछ समंजक[1] दृष्टि से चूक गए, और कुछ जाति के पक्षियों का संग्रहण या अभिलेखन नहीं हो पाया। यह उस समय की मेरी आशारंजित कल्पना थी। कई वर्षों बाद जब कुहासा-जाल उपयोग में आए तब मेरी समझ में आया कि उस समय सचमुच

1. (facies)

कुछ रात्रिचर जातियां तथा कुछ शर्मीली जातियां मेरे आकलन से छूट गईं।

क्षेत्रीय सर्वेक्षणों की शृंखला की पहली कड़ी हैदराबाद पक्षिवैज्ञानिक सर्वेक्षण (अक्तूबर 1931) का प्रथम चरण विशाल फैला हुआ गांव मनानुर था। यह गांव महबूबनगर जिले में नल्लमलइ पहाड़ियों में 2000 फुट ऊंचे आम्रबाद पठार पर स्थित तालुका मुख्यालय था। इसके चारों तरफ नम-पतझड़ी वन के साथ नल्लमट्टि[1] तथा सागौन के बहुल रक्षित वन थे। अनंतर में, देश के कोने कोने में, खोजे गए कांतार स्वर्गों के अनुभवों में यह मेरा पहला अनुभव था। मेरी स्मृति में वन्य जीवन की समृद्धि की दृष्टि से मनानुर क्षेत्र बहुत स्पष्ट रूप से अंकित है, इसमें मैंने इतने बाघ देखे जितने उसके पूर्व नहीं देखे थे। जब मैं प्रतिदिन स्थानीय मार्गदर्शक चैंचु के पीछे पीछे चलता, तब उषाकाल में देखे गए बाघ, तेंदुए, भालू तथा अन्य वन-जंतुओं के पदचिह्न मुझे रोमांचित करते, और बाद में जब वे जंतु स्वयं दिख जाते तब उस समय का और भी अधिक रोमांच मेरी स्मृति में अच्छी तरह सुरक्षित है। दूसरा शिविर फरहाबाद जो 12 मील दक्षिण में एक और ऊंचे पठार (2800 फुट) पर था, राज्य सरकार द्वारा एक हिल स्टेशन के रूप में विकसित होने वाला था, किंतु वह योजना साकार नहीं हो पाई। मनानुर क्षेत्र चैंचु आदिवासियों का घर था, इनका गहन अध्ययन तथा अभिलेखन मानव-वैज्ञानिक फ्यौरर-हाइमनडार्फ ने किया है। पहाड़ी के ऊपर स्थित विश्रामगृह तक कोई सड़क नहीं थी केवल पगडंडी थी, इसलिए सारा माल-असबाब चैंचु जनजाति के लोग (आदमी, औरतें तथा बच्चे) ढोया करते थे—यह एक तरह की बेगार थी जो स्थानीय तहसीलदार ने अपनी 'शक्ति' के बल पर आयोजित की थी। उनको दिन भर के काम की मजदूरी, मैं अविश्वास के साथ याद करता हूं, एक किलो ज्वार प्रति व्यक्ति थी। चैंचु शेष सभ्य समाज से इतने कटे हुए थे कि मुद्रा का उनके लिए कोई अर्थ नहीं था, इसलिए उनकी मजदूरी उन्हें वस्तुओं के रूप में मिलती थी। उनकी सेवा के भुगतान के लिए हम लोग अपने साथ बहुत सारा ज्वार लाए थे। उस समय एक रुपए में 12 किलो ज्वार मिलती थी इसलिए हमारे बजट पर इसका प्रभाव हल्का ही था।

बेगार की क्रूर पद्धति, जो दासता का एक रूप है, अन्य प्रदेशों में कानून के द्वारा समाप्त की जा चुकी थी, किंतु निजाम राज्य में व्यावहारिक रूप में बहुत बाद तक चली थी। इस प्रथा के अनुसार, जब भी सरकारी कार्य के लिए आवश्यकता होती गांव के मुखिया (पटेल) को मजदूरों का प्रबंध करना ही पड़ता था। अतएव, ऐसे समय, पटेल किसी भी स्वस्थ आदमी को देखकर उसे पकड़ लेता था, और बिना इसकी चिंता के कि वह उस समय क्या कर रहा है, उसका वह काम कितना आवश्यक है, उसे बेगार में लगा देता। उसकी रोज की मजदूरी प्रशासन ही तय

1. (Terminalia tomentosa)

करता था। एक बार हमारा सर्वेक्षण दल एक दूर दराज की जगह पहुंचा जहां हमें नए कुली मिलने थे। सुबह हमें देर हो गई थी, इसलिए सभी आदमी खेत में काम करने चले गए थे। पटेल ने एक के बाद एक सारी झोपड़ियां छान डालीं किंतु सभी खाली मिलीं किंतु एक जगह उसे एक छोटी टोली मिली जो थकी मांदी सो रही थी। उसने उसमें से आदमियों को जगाया और जबरन हमारी सेवा में लगा दिया, यद्यपि उन्होंने बहुत समझाने की कोशिश की कि वे दूसरे गांव से किराए पर आए गाने बजाने वाले हैं, और रात भर विवाह में गाने बजाने के बाद अब थके मांदे सो रहे हैं लेकिन पटेल ने बिलकुल अनसुनी कर दी, उसे तो अपने तहसीलदार के आदेश का पालन करना था। उसने उन्हें घसीटा और हमारा सामान उन पर लाद दिया। सौभाग्य से पांच मील बाद अगले गांव पर नए कुली तैयार थे और मुझे उन्हें छोड़ने में बहुत खुशी हुई ताकि वे वापिस उस गांव में जाकर अपनी नींद पूरी कर लें।

एक तहसीलदार ने मुझे एक सारणी दी जिसमें निजाम प्रशासन द्वारा नियत, शासकीय अधिकारियों को अपने दौरों पर मिलने वाली वस्तुओं की शासकीय दरें थीं, यह सारणी कुछ वर्ष ही पुरानी थी—बकरा—एक रु., मुर्गा—दो आना (बारह पैसे) आदि आदि, और अंडे तो मुंह मांगे मिलते थे। यह कीमतें निजामी मुद्रा हाली में थीं, जो कि ब्रिटिश भारतीय मुद्रा की दो-तिहाई के बराबर थी। यद्यपि यह कीमतें 1931 में लागू नहीं थीं, सभी वस्तुओं के मूल्य इतने कम थे कि हैदराबाद प्रशासन द्वारा दी गई आर्थिक सहायता के भीतर ही सर्वेक्षण का काम पूरा हो गया।

बोड़गामपड से कुछ मील दूर, गोदावरी के तट पर, गहन वन के भीतर जीर्णशीर्ण मड़ैयों के गांव नैलिपाका के सिवान पर स्थित बेकार पड़ी गौशाला में हमें अपना शिविर लगाना पड़ा था। उसकी दीवारें, काम चलाने के लिए हम लोगों ने बांस की पुरानी चटाइयों से बनाई थीं जो दोपहर की भीषण गर्मी से आंशिकरूप से बचाती थीं। सब जगह यह अफवाह फैल गई थी कि बंबई से कुछ अजीब लोग आए हैं जो उस क्षेत्र में पाए जाने वाले सभी प्रकार के पक्षियों को मारने तथा उनके स्वाद को लिखने वाले हैं। अतएव हमारे गांव में पहुंचते ही हमें कुछ शरारती लड़कों और उत्सुक लोगों की भीड़ ने घेर लिया। इनमें से कुछ लोगों ने अपने आप को स्थानीय शिकारी के रूप में प्रस्तुत किया जो कि जाने माने व्यावसायिक चोर-शिकारी थे। मुझे बतलाया गया कि तट से कुछ दूर, नदी के छोटे से द्वीप में एक बड़ा मगरमच्छ रोज धूप सेंकने आता है, और यदि मुझे उसे मारने में रुचि हो तो अगली बार दिखाई देने पर बतलाएंगे। और उन दिनों मैं सचमुच उसके विशेष शिकार में रुचि रखता था। दो दिन बाद जब मैं सुबह का संग्रहण कार्य कर दोपहर को लौटा, वहां एक स्थानीय शिकारी मेरी प्रतीक्षा कर रहा था, उसने कहा कि एक घंटे पहले ही मगर को देखा है और कि वह मुझे उस स्थान तक लेकर जा सकता

है। जैसा कि मैं उन्हें जानता था, जब मैं उस स्थान पर पहुंचा वहां कोई मगर नहीं था, वरन जब मैं उस स्थान की दूरबीन से छानबीन कर रहा था तब नदी तट के किनारे की वनस्पति को देखते हुए मुझे तटीय नरकुलों के पीछे, कोई 200 मीटर ऊपर एक काली-सी चीज छिपी दिखी जो आंशिक निमग्न मगर का सिर हो सकता था। थोड़ा पास जाकर देखने से पता चला कि वह किसी व्यक्ति का फूला शरीर था। जो बाद में एक बूढ़ी औरत का पहचाना गया जो अपनी बहू से बुरी तरह लड़कर झोपड़ी छोड़कर चली गई थी। मुझे तब समझ में आया कि हम लोगों के शिविर के लिए पीने के पानी का स्थान उस स्थान के ठीक नीचे था, अर्थात उस समय तक हम लोग उस बूढ़ी महिला के प्रदूषित काढ़े पर जी रहे थे। जोर से रोते संबंधियों ने उस दुर्गंधित लाश को बाहर निकाला किंतु इसके पहले कि उसका क्रियाकर्म हो, पुलिस जांच तथा ठीक रिपोर्ट का होना आवश्यक था। वह सड़ी लाश नीली पड़ गई थी। इसलिए क्रियाकर्म अविलंब करने की आवश्यकता थी। बेचारे संबंधी नौ मील दूर निकटतम पुलिस स्टेशन भीषण गर्मी में सरकते घिसटते पहुंचे। वहां के सब-इंस्पैक्टर ने निर्णय लिया कि उस शाम के लिए बहुत देर हो चुकी है, और फलस्वरूप वह दूसरे दिन एक मरियल टट्टू पर सुबह साढ़े सात बजे पहुंचा।

सब-इंस्पैक्टर को यह ईश्वर प्रदत्त अवसर लगा और वह यथासंभव मुश्किलें, बड़ी दृढ़ता से, पैदा कर रहा था—शोकसंतप्त परिवार के करुण अनुनय-विनय तथा मेरे प्रतिवाद के बावजूद, वह कह रहा था कि इसके पहले कि वह शव के क्रियाकर्म की अनुमति दे, उसका कर्तव्य इस शव की चीरफाड़ द्वारा पूर्ण जांच नितांत आवश्यक मानता है। इस अत्यंत अनिवार्य कार्यविधि के लिए वह इतने दंभ के साथ अड़ा था कि लगता था कि शव को कम से कम चौबीस घंटे और पड़े रहना पड़ेगा तथा पड़ोस में सड़ी गंध भरेगी चूंकि कर्तव्यपरायण सब-इंस्पैक्टर कानून के शब्द का सम्मान करने के लिए कटिबद्ध था, और मेरे तर्कों का उस पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा था। मैं सुबह के संग्रहण पर निकल पड़ा। जब मैं तीन घंटे बाद लौटा तब वहां न तो रोते धोते संबंधी थे, न शव और न ही वह सब-इंस्पैक्टर था। और गांव में सब कुछ अनपेक्षित रूप से शांत तथा सामान्य था। ऐसा पता लगा कि वहां से मेरे हटते ही, मृत महिला के पुत्र ने पचास रुपए की मदद से उस कर्तव्यपरायण सब-इंस्पैक्टर के विवेक को जगा दिया था, हालांकि वे पचास रुपए बड़ी कठिनाई से सब शोकसंतप्त संबंधियों ने इकट्ठे किए थे। इसके बाद वह विवाद, सभी को संतुष्ट करते हुए, एकदम बंद हो गया। इस घटना से मुझे बंबई म्युनिसिपल के दुग्ध-इंस्पैक्टर का वह कथन याद आ गया जो उसने एक ग्रामीण मित्र से कहा था : 'वेतन कम है परंतु आमदनी अधिक'। यह उन दिनों हैदराबाद के उच्च महामान्य निजाम के राज्य में फीताशाही की कार्यविधियों का सामान्य प्रतिरूप था; संभवतः केवल उसी राज्य में नहीं, और शायद केवल उन दिनों ही नहीं।

दूर-दराज के सर्वेक्षण स्थलों से लगभग, प्रत्येक दो सप्ताह में हम जंगलों से सभ्यता अर्थात हैदराबाद शहर में आने के लिए बाध्य होते थे ताकि वे वस्तुएं जो घने वन स्थलों में नहीं मिलतीं उन्हें ले जाया जा सके। इन अंतरालों में अधिकतर हम हशम भाई तथा उनके परिवार के साथ उनके सइफाबाद के आनंददायक घर में रहा करते थे। हशम मुझसे अठारह वर्ष बड़े, मेरे सबसे बड़े भाई थे, और उनका पुत्र सुलेमान खेतवाड़ी के दिनों में पक्षी पालने वाला मेरा सहयोगी था। हशम जब लगभग उन्नीस वर्ष के थे तथा बंबई में कानून पढ़ रहे थे, तभी हमारे बड़े-बूढ़ों ने उनका विवाह हैदराबाद के एक संपन्न तथा पारिवारिक मित्र की पुत्री दिलबर-उन-निसा के साथ कर दिया था। कानून की डिग्री प्राप्त करने के शीघ्र पश्चात वे हैदराबाद चले गए और किसी के अधीन उन्होंने वकालत प्रारंभ की। खेतवाड़ी परिवार से उनका व्यक्तिगत संपर्क कट-सा गया। उसके कुछ वर्षों बाद, किंतु वकालत में जमने के कई वर्ष पूर्व सुलेमान का जन्म हुआ। जब सुलेमान की आयु स्कूल जाने योग्य हुई तब उसे मामी हामिदा बेगम तथा मामा अमीरुद्दीन के पास बंबई भेज दिया गया जिन्होंने कमोबेश हशम को गोद ले लिया था और अपने बेटे के समान पाला पोसा था। हशम सही अर्थों में सच्चे धार्मिक थे, उन्होंने कभी किसी को उपदेश नहीं दिया, वे स्वयं के शांत उदाहरणों में ही मुखर थे। हैदराबाद के प्रशासनिक वर्ग में उनकी ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा विख्यात थी, और यह उनकी स्थायी ख्याति ही थी कि, दीवारों के कान होने के बावजूद, (महत्वाकांक्षी या दुष्ट प्रतिद्वंद्वी महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारियों के घर भेदिया नौकर लगाया करते थे) जिला न्यायाधीश तथा बाद में हैदराबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद के अपने सेवाकाल में वे निर्दोष तथा निष्कलंक रहे। स्वभाव से वे गैर-मिलनसार नहीं थे, किंतु प्रगाढ़ संबंध वे परिवार वालों से ही रखते थे और प्रशासनिक औपचारिक मेल जोल के अतिरिक्त वे बाहर संपर्क शायद ही रखते थे। यह उनके स्वयं के लिए बहुत हितकारी था क्योंकि उन दिनों हैदराबाद में कानाफूसी का बाजार गरम था। उनका चरित्र सभी लोग इतनी अच्छी तरह से जानते और प्रशंसा करते थे—न्यायाधीश के बतौर निजाम श्री मीर उस्मान अली खान ने उनके जीवनकाल में उन्हें नवाब हशम यार जंग की पदवी से सम्मानित किया, तथा उनकी मृत्यु के बाद उन्हें उनके चरित्र तथा गुणों की प्रशंसा करने वाली कविता से सम्मानित किया—ऐसे राजकीय सम्मान अपवाद स्वरूप ही मिलते हैं। जो असामान्य गुण हशम में थे, उनके कारण हैदराबाद के नवाबी वातावरण में, वे आर्थिक रूप से सफल वकील शायद ही बन पाते। यह तो उनका सौभाग्य ही था कि अपने प्रारंभिक कैरियर के संघर्ष के समय ही वे निजाम की न्यायिक सेवा में चले गए।

एक तो हम लोगों की आयु में अंतर अधिक, दूसरे बंबई से वे बहुत जल्दी ही कट गए थे, इसलिए अन्य, भाइयों तथा बहनों की तुलना में हशम से मैं कम

खुला था। छोटी आयु में सुलेमान, उसके दो छोटे भाई तथा चार छोटी बहनों के साथ कभी-कभार स्कूल अवकाश हैदराबाद में बिताने के अतिरिक्त मुझे उन्हें जानने के अवसर शायद ही मिले थे। तब भी, बड़े होने के बाद, उनके बारे में बहुत कुछ जानने के प्रचुर अवसर मिले। हशूभाई (हशम) सचमुच में खुदा के बनाए उत्तम पुरुष थे। और यद्यपि हमारे स्वभाव, विश्वास तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण नितांत भिन्न थे, मेरे मन में उनके लिए गहरा स्नेह, सर्वोच्च प्रशंसा तथा आदर है।

सन् 1931 में जब हैदराबाद सर्वेक्षण हो रहा था, तब विभिन्न प्रांतों तथा देशी राज्यों का अलग-अलग 'भारतीय साम्राज्य में वन्य जीवन का संरक्षण' विषय पर बी.एन.एच.एस. का जर्नल एक श्रृंखला प्रकाशित कर रहा था। सोसायटी ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं हैदराबाद पर लिखूं क्योंकि मैं उसी जगह पर था और मुझे ताजे आंकड़े इकट्ठे करने का अवसर तथा सुविधा प्राप्त थी। ऐसा लगता है कि सन् 1897 तक बाघ या अन्य जंतुओं को मारने पर कोई प्रतिबंध नहीं था। शिकार विनियम, जो 1914 में ही लागू किए गए, के अनुसार हैदराबाद राज्य में बिना प्रशासकीय अनुमति के कोई भी शिकार नहीं कर सकता था, इस विनियम के अपवाद निजाम, उनके परिवार, पैगाह कुलीन तथा जागीरदार थे। किंतु 1933 तक निजाम के राज्य में कोई भी आयुध-अधिनियम नहीं था तथा राज्य भर में विभिन्न बंदूकें भरी पड़ी थीं। यह ठीक है कि वे पुरातन 'मुंह भरनी बंदूकें' थीं, किंतु जलाशयों पर जानवरों का विनाश करने के लिए पर्याप्त थीं—और चोर-शिकारियों की यही सर्वमान्य पद्धति थी। जंगल में जहां भी जलाशय थे, उनके पास के वृक्षों पर कच्ची मचानें तथा जमीन पर छिपकर निशाना साधने के लिए गड्ढे थे। मुझे लगभग 1905 में प्रकाशित कैप्टन ए.आई.आर ग्लैसफर्ड की लिखी पुस्तक 'भारतीय जंगलों में बंदूक और रोमांस' याद आती है। मेरे शिकार-जीवन के युवा दिनों में वह मेरी अत्यंत प्रिय पुस्तक थी, जो जंगल की ओर आकर्षित करती थी। उन दिनों उन्होंने चेतावनी दी थी कि दक्षिणी क्षेत्र के वन्य जीवन पर बिना किसी प्रतिबंध के, बिना लाइसेंस के ये मुंह भरनी बंदूक वाले कहर ढा रहे थे। देर से लागू किए गए शिकार विनियमों की परवाह किए बिना, चोर-शिकारी समय, ऋतु, आयु तथा लिंग की ओर से बेखबर बड़े वन्य जानवरों का सफाया कर रहे थे, और द्वितीय विश्वयुद्ध पश्चात जीव के सुलभ होने से, सामंतशाही के स्थान पर जनतंत्र के नियंत्रणों में ढील आने के कारण वन्य जीवन और भी तेजी से विनाश की ओर जा रहा था।

मैंने जो जांच पड़ताल की उससे यह स्पष्ट हुआ कि (राजसी) शिकारगाहों के मुंतजिम (शिकार-रखवाले) तथा पहरेदार पूर्णरूप से भ्रष्ट तथा घृणित जीव थे। स्थानीय हालत तथा वन्य जीवन की जो भी जानकारी उन्होंने दी वह विश्वसनीय नहीं होती थी। 'चोर-शिकार', अधिकांशतया, सरकारी, छोटे बड़े, अधिकारी करते थे। ऐसा बहुत संभव है कि अधिकांश 'चोर-शिकार' में या तो उनकी मिलीभगत

होती थी, या उदासीनता या लापरवाही होती थी। इसलिए इसमें क्या आश्चर्य कि देश के जो कुछ सर्वोत्तम बाघ तथा बड़े शिकार क्षेत्र, 19वीं शती के प्रारंभ में हैदराबाद में थे मात्र सौ वर्ष में ही इस दीन अवस्था को पहुंच गए। तालुकदार से लेकर निम्न पुलिस सब-इंस्पैक्टर या राजस्व अधिकारी, यहां तक कि वनपाल (फॉरेस्टर) आदि अधिकांश राज्य-अधिकारी गर्व से दावा करते थे कि उन्होंने बाघ का शिकार किया है, कभी-कभी दो या तीन बाघों का भी। कोरी बहादुरी तथा घमंडी दावों की गुंजाइश रखने के बाद भी, अधिक नहीं तो चालीस वर्ष पूर्व भी हैदराबाद राज्य में जो बाघों की संख्या रही होगी, उससे आज की तुलना करने में बहुत दुख होता है। यद्यपि निजाम स्वयं शिकार नहीं करते थे, दो वरिष्ठ राजकुमार सिद्धहस्त कसाई थे। 1935 में, मेरे सर्वेक्षण के तुरंत बाद ही, पाखल, मुलुग तथा अन्य शिकारगाहों में, तत्कालीन युवराज आज़म जाह बहादुर तथा पार्टी ने, शाही मचानों में ठाठ से ऐय्याशी करते हुए, 33 दिनों में 35 बाघ मारे तथा इसी अनुपात में भालू, सांभर तथा अन्य शिकार भी। उनके मचानों में अनेक घरेलू सुख-साधनों के साथ 'फील्ड-टेलीफोन' लगे हुए थे जिनसे हांके द्वारा खदेड़े गए बाघों की मिनट दर मिनट 'गति' की जानकारी मिलती थी।

9
नीलगिरी में प्रवास

अप्रैल 1932 में 'हैदराबाद राज्य पक्षिवैज्ञानिक सर्वेक्षण' पूरा हो गया था। बी.एन. एच.एस. और त्रावणकोर-कोचीन राज्य के बीच पक्षिसर्वेक्षण के लिए समझौता वार्ता चल रही थी और जब तक उसका निर्णय पता लगे तब तक के लिए हमारे पास अपना घर नहीं था। इसलिए जब हैदराबाद की एक पारिवारिक मित्र श्रीमती नंदी ने अपनी आनंददायक अवकाश-कुटी 'मौन एब्रि' का प्रस्ताव हमें दिया तब हमें बड़ी खुशी हुई और हमने उसे अपना सौभाग्य माना। 'मौन एब्रि' नीलगिरी पहाड़ियों में छोटे-से हिलस्टेशन कोटागिरी में स्थित है। तब तक मुझे दक्षिण भारतीय सदाबहार वर्षा तथा शोला वनों का कोई अनुभव नहीं हुआ था, इसलिए त्रावणकोर जाने के पहले नीलगिरी में कुछ महीने रहने का अवसर त्रावणकोर की जानकारी भी देगा, अतएव वह दोगुने स्वागत योग्य था। इस शांत मध्यांतर में मैंने अपनी हैदराबाद राज्य के पक्षियों पर रिपोर्ट भी तैयार कर ली जिसने अन्य गवेषणीय राज्यों को प्रेरणा देने में निश्चित सहायता की। पचास वर्ष पूर्व कोटागिरी मनोहर हिल-स्टेशन था किंतु तंद्रिल। यह अनेक ईसाई मिशनों–'सैवेंथ डे एडवैंस्टिट', 'वन बाई वन बैंड' आदि, जिनके नाम हमने भी नहीं सुने थे, का प्रिय आवास था। सड़कों पर जो 'सभ्य' लोग मिलते थे, वे एक न एक प्रकार के अवकाश प्राप्त मिशनरी थे, पुरुष भी, स्त्री भी जो वृद्ध थे, उनमें से कुछ इतने वृद्ध कि डगमगाते हुए चलते थे, और ऐसा लगता था कि वे वहीं आराम से मरने के लिए आए थे। अपनी वन्य शांति तथा जलवायु एवं दृश्यावलियों के स्वाभाविक आकर्षण के रहते हुए भी सक्रिय युवा लोगों के लिए वह नीरस तथा निष्क्रिय स्थान था, हां कुछ दिनों के अवकाश तथा मैदानी धूप-धूल से बचने के लिए ठीक था।

दूसरे माह के अंत तक स्फूर्तिदायक तथा बौद्धिक संपर्कों का अभाव हमारे ऊपर मौत के साए की भांति छाने लगा था। एक नगण्य-सी बीमारी के लिए हम लोग जब सरकारी अस्पताल गए तब हंसमुख मलयाली डा. के.एम.अनंतन से हमारी मुलाकात मानों खुदा का रहमोकरम ही थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय वे स्वेच्छा

से सेना में भरती हुए तथा मैसोपोटैमिया में सेवा के पश्चात कैप्टन के पद से सेवानिवृत्त हुए, तत्पश्चात मद्रास प्रशासन में नागरिकी राजकीय स्वास्थ्य सेवा में आए। विनोदी डाक्टर और उनकी लावण्यमयी ऊर्जस्वी युवा पत्नी हमारे ही समान निस्संतान थे और हम लोगों के अभिन्न मित्र बन गए। कोई ऐसी गतिविधि या खुशी नहीं थी, जिसमें हम लोग साथ-साथ न हों—जंगल में घूमना, पक्षियों को निहारना, पिकनिक, कार-भ्रमण, घर के भीतर खेले जाने वाले खेल तथा मनोरंजन। हर महीने के अंत में डा. अनंतन को अपना वेतन लाने, 20 कि.मी. दूर ऊटकमंड जाना पड़ता था। उनके पास दो सीट वाली पुरातन मारिस ऑक्सफोर्ड थी। उसमें पीछे नौकर के लिए एक सीट हुआ करती थी जिसमें हम लोग दोनों ठूंस ठांसकर बैठ जाते थे। ऊटी के रास्ते में बहुत से तीव्र चढ़ाव थे जिन पर से थकी मांदी कार को चढ़ाने के लिए काफी मनाना पड़ता था और कभी-कभी शारीरिक सहायता भी देनी पड़ती थी। हम लोग इस यात्रा को पिकनिक तथा पंछी निहारन का सुअवसर बना देते थे। इस काम के लिए हम लोग सुंदर तथा सुपोषित वानस्पतिक उद्यान जाते थे जहां डा. अनंतन की विनोदी कहानियां तथा अनुभव भी सुनते थे जिनका उनके पास अनंत भंडार था। इतना होने पर भी, जब बी.एन.एच.एस. से समाचार आया कि त्रावणकोर दरबार ने पक्षिसर्वेक्षण स्वीकृत कर दिया है और वे जानना चाहते हैं कि हम लोग कितना शीघ्र वह कार्य शुरू कर सकते हैं, तब कोटागिरी छोड़ने का कोई दुख नहीं हुआ।

जब मैं कोटागिरी में था, तब उस समय के मैसूर राज्य की बिलिगिरिरंगन पहाड़ियों के 'काफी' बागान के स्वामी रैल्फ मौरिस से पहली बार भेंट हुई। वे प्रथम श्रेणी के प्राकृतिक विज्ञानी, बड़े शिकारी तथा अनुवर्ती जीवन में निष्ठावान वन्यजीवन संरक्षक थे। 1920-40 के लगभग सोसायटी के जर्नल में दक्षिण भारतीय पहाड़ियों के उनके सजीव शिकार के तथा प्रकृति वैज्ञानिक अनुभवों के अत्यंत पठनीय वृत्तांतों की बहुत प्रशंसा हुई थी। रैल्फ तथा उनकी सशक्त एवं आकर्षक पत्नी हैथर, कोटागिरी अक्सर अपनी विधवा सास श्रीमती किनलॉक के यहां आते थे जो लॉगवुड शोला के किनारे पर स्थित आकर्षक बंगले में रहती थीं। तैहमीना तथा मैंने और मौरिस युगल ने पहली ही भेंट में एक-दूसरे को बहुत पसंद किया, और वह मित्रता मृत्यु तक बनी रही। तैहमीना की मृत्यु 1939 में हुई, रैल्फ की 1977 तथा हैथर की उससे दो या तीन वर्ष बाद।

जर्नल के द्वारा तथा व्यक्तिगत पत्राचार के द्वारा रैल्फ और मैं एक-दूसरे की रुचियों तथा गतिविधियों से बहुत पहले से परिचित थे। जब उसने त्रावणकोर के पक्षिसर्वेक्षण शुरू होने की बात सुनी तब उसने तथा हैथर ने स्नेहपूर्वक हम दोनों को, सर्वेक्षण शुरू होने से पहले कुछ दिन, अपने कॉफी बागान में, रहने के लिए आमंत्रण दिया। त्रावणकोर में प्रवेश के लिए रैल्फ ने उत्तरी त्रावणकोर के मरैयुर

का सुझाव दिया। रैल्फ के दक्षिण भारतीय वनों के गहन ज्ञान की दृष्टि से होन्नामैट्टि के 8-10 दिन के ही प्रवास ने मुझे इस योग्य बना दिया कि उस सर्वेक्षण के लिए उस राज्य के सभी विभिन्न वैशिष्ट्यों को समेटे, संभावनाएं लिए, कार्यक्रम तथा यात्राक्रम बना सका। बाघ तथा हाथियों से पटे पड़े आदिम जंगल के बीचोंबीच उस आनंददायक संभ्रांत बंगले की याद तो बहुत आती है किंतु याद आने का एक कारण और भी है। दक्षिण भारत में कॉफी बागान वाले यूरोपियों के सांस्कृतिक जीवन के भीतर देखने का सुअवसर मिला, शारीरिक श्रमसाध्य, निर्मम कठोर कार्य, सामाजिक जीवन तथा सुविधाओं से नितांतरूप से वंचित एकाकी वन-जीवन के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ संपूर्ण आत्मनिर्भरता, सभी हस्तकौशलों—बढ़ईगिरी, राजगीर, नलसाज, बिजलीसाज, मोटर मिस्त्री तथा अन्य अनेक निपुणता आदि दुर्लभ गुणों की सहायता से किस तरह उन अग्रणी बागान वालों ने उस वातावरण में अपने जीवन को सफल तथा संतोषप्रद बनाया। मौरिस को इसके अतिरिक्त क्षेत्र वानस्पतिकी के मूलभूत ज्ञान की व्यावहारिक पकड़ के साथ, वनस्पति रोगों, कीड़ों तथा नाशिकीटों की भी व्यावहारिक जानकारी की आवश्यकता थी तथा उसे व्यावहारिक उद्यान विशेषज्ञ भी होना जरूरी था। उसमें स्थानीय लोगों की भाषा पर समुचित अधिकार के साथ उन बहुल श्रमिकों पर समझ तथा कुशलता से, उन्हें खुश रखते हुए, नियंत्रण रखने की योग्यता का होना भी आवश्यक था। साथ ही हैथर में वे सब गुण थे जो एक उत्तम बागान वाले की पत्नी में आवश्यक हैं—शारीरिक श्रमसाध्यता, अपने रमणीय आनंददायक घर पर गर्व, घर के सारे कार्यों को कर सकने की क्षमता जिसमें घरेलू दवाओं की जानकारी, बच्चों तथा घरेलू जानवरों के लालन पालन की जानकारी, शाक उद्यान विशेषज्ञ तथा श्रमिकों एवं उनके परिवारों के कल्याण की निर्मल चाह। वे, अपने पति के समान ही शांत तथा 'चिंता मुक्त' (वे ऐसा ही मानती थीं) वन्य जीवन पर मुग्ध थीं। अपने पहले के जीवन में वे स्वयं उत्साही 'बड़ी शिकारी' थीं—बड़े शिकार के लिए बिलिगिरिरंगन तथा पड़ोसी पहाड़ियां प्रसिद्ध थीं।

रैल्फ मौरिस की बात करते समय मुझे उससे संबंधित रहस्यमय तथा अबूझ छोटी-सी घटना याद आती है, जो बहुत बाद में घटी थी। 1953 में जम्मू-कश्मीर प्रशासन ने बी.एन.एच.एस. से अनुरोध किया कि वे दाचीगाम तथा राज्य के अन्य अभयारण्यों की 'दशा' का अध्ययन करने तथा उनके समुचित प्रबंध के लिए सुझाव देने हेतु दो-तीन अनुभवी संरक्षकों का एक दल प्रतिनियुक्त करें। इस कार्य के लिए मौरिस सर्वोपयुक्त थे, किंतु उस समय वे भयंकर 'स्लिप्ड डिस्क' से पीड़ित थे जिससे उन्हें समय बेसमय असहयनीय पीड़ा होती थी। किंतु वे कश्मीर तथा उसके वन्य जीवन को देखने का लालच संभरण न कर सके और अंततः उन्होंने स्वीकृति दे दी। एक सुबह, जब उन्हें पीड़ा हो रही थी, तब हम लोग खच्चरों पर सवार होकर श्रीनगर के शिविर से चले, और मुझे चिंता हो रही थी कि वे कैसे

उस लंबी तथा धचकों भरी यात्रा को बर्दाश्त करेंगे। हम दोनों अपने अपने खच्चरों पर एकसाथ बातें करते हुए मजे से चल रहे थे कि रैल्फ के खच्चर का एक पैर चूहे के बिल पर पड़ गया और वह लड़खड़ा गया जिसके परिणामस्वरूप रैल्फ उसके सिर पर से लुढ़के और पथरीली जमीन पर चित्त जा गिरे। मैं तो डर गया कि उनकी पीठ तो टूट गई होगी और उससे इस सर्वेक्षण का समापन हो जाएगा। किंतु, आश्चर्यों का आश्चर्य कि रैल्फ तुरंत उठे, वे थोड़े विचलित तो थे किंतु उनकी पीठ का दर्द लुप्त हो गया था और वह कभी वापिस नहीं आया !

सन् 1930 से 1950 के बीच जितने भी क्षेत्रीय पक्षिसर्वेक्षण मैंने किए, और यह अवधि मेरे जीवन की सर्वाधिक उर्वर अवधि है, क्षेत्र कार्य तथा परिणामों के अभिलेखन दोनों ही, दृष्टियों से जिसने मुझे अधिकतम संतोष दिया, वह था त्रावणकोर कोचीन का पक्षिवैज्ञानिक सर्वेक्षण। तदनंतर इसी के आधार पर मैंने 'केरल के पक्षी' पुस्तक लिखी थी। दक्षिण भारतीय पहाड़ियों तथा पश्चिमी-घाट या सह्याद्रि के दक्षिणी भाग का अनुपम सौंदर्य, तथा आदिकालीन सदाबहार वनों की सांद्रता और भव्यता तो थी ही, किंतु साथ ही उनके प्राणी तथा वानस्पतिक जीवन में कुछ विशेषता थी जिसके फलस्वरूप वे शेष उपमहाद्वीप से स्पष्ट तथा विशिष्ट दिखते हैं। केरल के अर्थात पश्चिमीघाट के दक्षिण पश्चिमी विभाग (नीलगिरी, पल्नी आदि) की ऊंची पहाड़ियों के; तथा पूर्वी हिमालय, पश्चिमी चीन, बर्मा तथा मलयेशिया के पेड़-पौधे एवं जीव-जंतुओं की समानता पर पूर्व-प्रकृति वैज्ञानिकों ने उल्लेख किया है। इन दो नितांत विभिन्न क्षेत्रों के जीवों के बीच स्थैतिकी दृष्टि से 2000 कि.मी. से भी अधिक अंतर है, इसलिए इन जीवों के बीच की समानता को पारिस्थितिकी असमानता के बावजूद समझाना दुष्कर ही है। दोनों विभिन्न क्षेत्रों की नदियों तथा पहाड़ी झरनों में पाई जाने वाली जातियां, जो कि अंतराल में कहीं नहीं पाई जातीं, की समानता सर्वाधिक उलझन में डालती है। आखिर मछली एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बिना किसी जल माध्यम के नहीं पहुंच सकती। मेरी समझ में प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक डा. सुंदरलाल होरा ने जो व्याख्या दी है वह सर्वाधिक तर्कसंगत है। उन्होंने संबद्ध क्षेत्रों के मत्स्य, जीवों तथा भूविज्ञान, भू-आकृति विज्ञान तथा मौसम विज्ञान का गहन अध्ययन कर 'सतपुड़ा अनुमान' नाम से विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें वे यह मानते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप जब प्रधान भूभाग से कटा नहीं था तब उसका संपर्क उत्तर-पूर्वी (आज के उ.पू. हिमालय का भाग) भाग से राजमहल पहाड़ियों से पश्चिम की ओर चलकर, सतपुड़ा, पर्वत शृंखला फिर दक्षिण की ओर चलकर पश्चिमी घाट के दक्षिणी छोर के दक्षिण-पश्चिमी भाग और श्रीलंका तक था। इसके बीच के संपर्क-उच्च भूभागों का इस दीर्घकाल में क्षरण हो चुका है, तथा दक्षिण भारतीय जीवों की मूल समष्टि उस मूल सतत वितरण का अवशेष हैं, जो अब एक प्रकार के 'शरणस्थल' में जीवनयापन कर रहे हैं। इस उलझन

ने मेरे त्रावणकोर-कोचीन अध्ययन को विशेष सम्मोहन प्रदान किया।

बी.एन.एच.एस. के जर्नल में शृंखलाबद्ध प्रकाशित पक्षिवैज्ञानिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट के बारे में वैज्ञानिक पत्रिकाओं में तथा वैज्ञानिकों द्वारा जो समीक्षाएं तथा टिप्पणियां प्रस्तुत की गई वे सुखद थीं। उन वैज्ञानिकों के मंतव्यों का मैं विशेष आदर करता था। 8.1.1936 के ह्यू व्हिसलर ने लिखा : 'द आइबिस' में आपके त्रावणकोर के उत्कृष्ट क्षेत्र-कार्य की श्लाघा पढ़कर मुझे खुशी हुई। टाइसहर्स्ट अति समालोचनात्मक संपादक हैं, और वे यदि श्लाघा या प्रशंसा करते हैं तब वह सचमुच स्वीकारने योग्य है। टाइसहर्स्ट की प्रशंसात्मक समीक्षा ने मेरे अंतर्मन को विशेष परितोष दिया, क्योंकि 1929 की स्ट्रैसमान तथा स्टैनफोर्ड बर्मा पक्षिसंग्रह घटना के बाद टाइसहर्स्ट ने कभी भी अपनी सहृदयता खुले हृदय से अभिव्यक्त नहीं की थी। नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम (प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय) न्यूयार्क के पक्षियों के तत्कालीन क्यूरेटर अर्न्स्ट मायर ने लिखा, 'आपकी रिपोर्ट का सर्वाधिक मूल्यवान वह भाग है, जहां आपने अवलोकित जातियों का जीवन इतिहास तथा परिस्थितिकी संबंधी ज्ञान दिया है। मैं आपके विषय के प्रशंसनीय विवेचन के लिए आपको बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि वह भविष्य के सर्वेक्षणों के लिए मानक बनेगा।' भारत सरकार के पूर्व महासर्वेक्षक तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर कैनैथ मेसन ने व्हिसलर के पत्र का उत्तर दिया, (व्हिसलर ने उन्हें मेरे त्रावणकोर-कोचीन के पक्षिवैज्ञानिक वृत्तांत की भूमिका भेजी थी)

> मुझे वह (भूमिका) भौगोलिक दृष्टि से बहुत उपयोगी लगी, क्योंकि लेखक ने लीक से हटकर, अपने निष्कर्ष, पक्षी-जीवन पर भौगोलिक कारकों को आधार बनाकर प्रस्तुत किए हैं। जहां तक मुझे उस प्रायःद्वीप की जानकारी है, उन्होंने सारे महत्वपूर्ण बिंदुओं को समेटा और उनका पूर्ण लाभ उठाया है। एक छोटा-सा बिंदु यह है कि, ऐसा मेरा विश्वास है कि, आज भूवैज्ञानिक मानते हैं कि पुरातन जलविभाजक का शिखर भारतीय प्रायःद्वीप के पश्चिम में आज जहां लक्षद्वीप-प्रवाल हैं, उसके आसपास था, तथा उस शिखर शृंखला के धंसाव के कारण ही पश्चिमी घाट भ्रंशित हुआ। दक्षिणी भारतीय प्रायःद्वीप, फलस्वरूप, पुरातन जलविभाजक शिखर का पूर्वी आधे से भी कम भाग है, तथा आधुनिक जलविभाजन पुरातन जलविभाजन के पूर्व में है। इस सबसे सालिम अली के विवेचन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता वरन वास्तव में उसे सशक्त बनाता है।
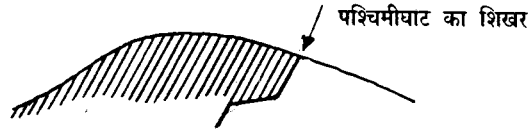
मैंने इस उपयोगी टिप्पणी को यहां इसलिए सम्मिलित किया है कि जिस तरह यह मुझे अज्ञात थी, उसी तरह, किसी अन्य भारतीय प्रायःद्वीपी भूरचना संबंधी तत्व में रुचि रखने वाले व्यक्ति के लिए नई हो।

'ब्रिटिश भारत के जीव-जंतु' शृंखला के पक्षी अंकों के द्वितीय संस्करण के संपादक ई.सी.स्टुअर्ट बेकर थे, तथा वे उस समय 'ब्रिटिश पक्षिवैज्ञानिक संघ' के सचिव थे। उन्होंने, "आपके त्रावणकोर पक्षियों की अत्यंत उत्कृष्ट कृति," की पावती स्वीकार करते हुए लिखा था, "जीव-जंतुओं पर मेरी कृतियों पर आपकी टिप्पणी, कि 'त्रुटियां लाक्षणिक' रूप से मौजूद हैं, ने मुझे बहुत दुखित किया था। बारह वर्षों में मैंने आठ अंक लिखे थे और मुझे प्रतिदिन दस से बारह घंटे लगाने पड़े थे। मुझे भय है कि व्हिसलर तथा टाइसहर्स्ट ने तुम्हारे मस्तिष्क में यह व्यक्तिगत विरोध भर दिया है।" इसके उत्तर में उनकी उपलब्धियों की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए (जो मैं सचमुच समझता था) मैंने उनको अनजाने में दिए दुख के प्रति खेद प्रकट करते हुए लिखा और विश्वास दिलाया था कि समालोचना किसी अन्य द्वारा प्रेरित नहीं थी, स्वतंत्र रूप से पूरी सद्भावना के साथ लिखी गई थी। फिर आगे जोड़ा था, 'वैज्ञानिक ज्ञान में इसके (समालोचना) बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती।' यह दर्शाता है कि पक्षिवैज्ञानिक भी मानव हैं।

त्रावणकोर में प्राप्त बहुमूल्य प्रतिदर्शों में से एक को मैंने (लापरवाही से) गलती से 'क्रैस्टैड हाक ईगल' ('शेखर बाज-सुपर्ण') बतलाया था, और पहली नजर में व्हिसलर ने 'जैर्डन का बाज' बतलाया था, जब कि संग्रहालय में बारीकी से जांच करने पर पता लगा कि वह 'फैदर टोड हॉक-ईगल' (परित पादांगुल बाज-सुपर्ण)[1] था। व्हिसलर के अनुसार, "यह पक्षी, विश्व के संग्रह में, अत्यंत दुर्लभ शिकारी पक्षी है। यह पक्षी मेरे लिए नया था। विलक्षण बात यह है कि 'जैर्डन का बाज' इस का लघु रूप है।" यह नमूना मुझे आकस्मिक ही मिला था। 'कोचिन-बन ट्राम' के इंजिन में जलावन की लकड़ी भी रखी जाती थी। इस ट्राम को ऊपरी अंतिम

1. (परित पादांगुल बाज-सुपर्ण)' (Spizaetus nipalensis kelaarti)

स्टेशन परम्बिकुलम पर फायरमैन ने इसी लकड़ी से इसे मारा था, जब इसने उसकी मुर्गियों पर हमला किया था। इसी लाइन के कुछ मील नीचे कुरियार्कुट्टी पर मेरा शिविर लगा हुआ था, और उस फायरमैन को मालूम था कि हम लोग पक्षियों पर कुछ काम कर रहे हैं। इसलिए जब ट्राम हमारे शिविर के पास आई, उसने गाड़ी रोकी और वह पक्षी देकर चला गया। मैंने देखा कि यह तो साधारण शेखर बाज-सुपर्ण है, इसलिए उसे देखकर मुझे विशेष खुशी नहीं हुई थी, और इसलिए भी कि हम लोगों के पास यह सब रखने की जगह भी कम थी। किंतु इस पक्षी की हालत बहुत अच्छी थी, और हमारे संग्रह में शिकारी पक्षी बहुत कम थे, इसलिए कुनमुनाते हुए भी इसके चर्म का संग्रह कर लिया था। हर शिविर पर सामान बांधने और खोलने का काम भी इसके कारण बढ़ गया था। इसलिए सच्ची पहचान के बाद मुझे बहुत प्रसन्नता हुई कि सारा परिश्रम सार्थक हुआ।

पक्षियों के जीवन के लिए, समृद्धि तथा वैविध्य में, (भारत में) केरल निर्विवाद रूप से प्रथम है, कम से कम, पचास वर्ष पूर्व सर्वेक्षण के समय तो प्रथम था। उत्तरी त्रावणकोर में पैरियर झील पर स्थित थट्टकड़ (थेक्कड़ी), मेरी जानकारी में भारतीय प्रायःद्वीप में सर्वाधिक समृद्ध पक्षियों का आवास स्थल है, इसकी तुलना केवल पूर्वी हिमालय से की जा सकती है। सर्वेक्षण पश्चात, विशेषकर स्वतंत्रता पश्चात, मैं प्रति कुछ वर्ष पर केरल जाता रहा हूं और हर बार मैंने 'राक्षसी' विनाश लीला बढ़ते देखी है, हर अनुगामी सरकार तथा राजनीतिज्ञों ने, इन पापिष्ठ करतूतों को, स्वदेश लौटे जनसमूह को आवास देने के नाम पर, तथाकथित विकास परियोजनाओं के नाम पर, जल-विद्युत उत्पादन तथा लकड़ी के उद्योगों हेतु कच्ची सामग्री की आवश्यकता के नाम पर बढ़ाया है तथा सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती हुई प्रकृति-संग्रह की लीला ने मुझे हर बार अधिक दुख दिया है, मेरा अवसाद बढ़ाया है, यहां तक कि मेरी नैतिक चेतना पर आघात किया है। भव्य तथा विशुद्ध वनों को पैरियर नदी पर बांध बनाकर डुबाया गया है, औद्योगिक विकास के नाम पर उन्हें काटकर उनके स्थान पर व्यावसायिक वृक्ष-जातियों की एकल-संस्कृति को बढ़ाया गया है जिसके परिणामस्वरूप थट्टकड़ अपने पुराने स्वरूप का हास्यास्पद कार्टून बन गया है। प्रतिवर्ष यूकेलिप्टस, रबर तथा तैल-ताड़ वृक्षों की खेती के लिए 1500 हैक्टेयर के विशुद्ध सदाबहार वनों को जड़ से साफ किया जा रहा है। रूमानी 'वन-ट्राम' के लिए स्मरणीय परम्बिकुलम क्षेत्र के महत्वपूर्ण सदाबहार तथा नम-पतझड़ी वनों के सहस्रों हैक्टेयर साफ कर दिए गए हैं, तथा उनके स्थान पर सागौन के बागान लगाए गए हैं या जल-फैलाव में डुबा दिए गए हैं, जब कि इसी दुर्भाग्य से नित्य आतंकित शांत-घाटी का, संरक्षकों तथा केरल सरकार के बीच 'डिंग डांग' संग्राम में इस समय, शायद अस्थायी, संधि हो गई है।

कूड़े करकट में से खोजकर निकाली गई, मेरी पत्नी की पुरानी गृह-लेखा

पुस्तिका में, त्रावणकोर-कोचीन सर्वेक्षण का व्यय देखकर मुझे अविश्वसनीय किंतु सुखद आश्चर्य हुआ। दोनों राज्यों के पूरे पांच माह के क्षेत्रकार्य का कुल खर्च 2458/-रु. आया। इसमें हम दोनों तथा नौकर का अधिक सामान सहित बंबई का दो बार का किराया शामिल था। इसमें चार लोगों का भोजन, नौकर का वेतन, शिविर-यात्रा के लिए बस-किराया, शिकारियों तथा जंगल पथ-प्रदर्शकों की दिहाड़ी और अन्य विविध खर्चे भी सम्मिलित थे। चर्म संस्कार का वेतन, क्षेत्र-भत्ता, रेलयात्रा, कारतूस का खर्च (0.410 की 9/-रु. प्रति सैकड़ा तथा 20-बोर लघु कारतूस 10½ रु. प्रति सैकड़ा के दर से), परिरक्षी रसायन तथा नमूनों के पार्सलों का डाकखर्च आदि बी.एन.एच.एस. द्वारा वहन किया गया। सर्वेक्षण के लिए दोनों राज्यों ने मिलकर 4500/-रु. का योगदान किया था। इस तरह कार्य के पूरे होने पर मेरे पास लगभग 2000/-रु. बच गए थे। इस समय यह सचमुच अविश्वसनीय लगता है कि उन दिनों कितने कम में कितना अधिक उपलब्ध किया जा सकता था। और भारतीय पक्षिविज्ञान का यह सौभाग्य रहा कि क्षेत्रीय सर्वेक्षणों द्वारा इतनी अधिक नई जमीन पर इतना अधिक कार्य हो सका—जिसके लिए मेरी सेवाएं निःशुल्क उपलब्ध थीं तथा 'समय' पर इतना दबाव नहीं था। आज के, क्षेत्रीय अन्वेषकों के वेतन तथा सामान और सेवाओं की गगनचुंबी कीमतों के होते उस तरह के जल्दबाजी के गहन सर्वेक्षणों की कल्पना भी नहीं की जा सकती, और वह निधिविहीन बी.एन.एच.एस. के समान संस्था की क्षमता के परे है।

10

देहरादून तथा बहावलपुर : 1934-39

जर्मनी से लौटने के चार वर्ष बाद तक मेरे पास न तो स्थायी कार्य था और न स्थायी घर। हमने सोचा कि अब न तो खानाबदोशों की तरह रहना चाहिए और न मित्रों तथा संबंधियों पर भार बनकर। मुंबई की तुलना में अधिक सुखद, शांत तथा किफायती स्थान का चुनाव करना चाहिए किंतु उसे सामाजिक तथा बौद्धिक मरुस्थल भी नहीं होना चाहिए। मेरे भाई हामिद ने जो आई.सी.एस. से सेवानिवृत्त होने के बाद मसूरी में बस गए थे, सुझाव दिया कि हिलस्टेशन की तलहटी पर देहरादून ऐसा ही एक उपयुक्त स्थल है, और हमने उसे आतुरता से मान लिया। जिन आकर्षणों के विषय में मैंने सोचा था, उनमें अब हामिद भाई की निकटता का एक अतिरिक्त आकर्षण भी होगा। हामिद भाई मुझे न केवल विशेष प्रिय थे वरन तर्कसंगत तथा इहलौकिक या व्यावहारिक व्यक्ति के रूप में वे मेरे आदर्श भी थे।

अपने बचपन के दिनों से और उन्हें देखने के वर्षों पूर्व से मेरे मन में हिमालय के प्रति रूमानी ललक थी। मैं अक्सर दिवास्वप्न देखा करता था कि बाद के जीवन में यदि निवास स्थल के लिए चुनाव का संयोग हुआ तब वह निश्चित रूप से हिमालय की तराई में होगा; वहां मनोहर वन, भव्य दृश्यावलियां, उत्तम पर्वतों की निपथ यात्राएं, शिकार के अवसर तथा प्रकृति, वैज्ञानिक भ्रमण आदि मानों मेरे द्वार पर ही उपलब्ध होंगे। इससे अधिक निर्बाध सुख और कहां हो सकता है। 1925 में जब मैं एक माचिस फैक्टरी में कार्य कर रहा था तब उपयुक्त माचिस-लकड़ी का पता लगाने के लिए मुझे देहरादून स्थित वन अनुसंधान संस्था भेजा गया था। हिमालय की उस प्रथम-दृष्टि ने द्विगुणित उत्कंठा से आंख के तारे के समान संजोए स्वप्न को फिर से जीवित कर दिया था। भाग्य की रंगीन उथल-पुथल अब मेरे स्वप्न को, आंशिक रूप से ही सही, साकार कर रही थी। देहरादून में तैहमीना और मैंने स्नेही मित्रों, प्रेरक बौद्धिक संगति तथा मंत्रमुग्ध कर देने वाले वातावरण में अपने जीवन के सुख से भरे पांच वर्ष जिए, और मुझे जीवन की पूर्णता की अनुभूति हुई। ये सुख से भरे वर्ष एक अत्यंत दुखद घटना से जैसे एकदम समाप्त हो गए।

जुलाई 1939 में, एक कम खतरनाक शल्य-चिकित्सा में तैहमीना का रक्त विषैला हो गया और उसकी मृत्यु हो गई। अब जब कि तैहमीना चली गई थी, मेरे सामने एक कठिन समस्या थी : देहरादून में ही रहूं या प्रवास करूं ? मेरी सबसे छोटी बहन, कमरुन्निसा–छोटे में कमू–जो मुझसे दो वर्ष बड़ी थी तथा उनके पति हसन (मेरे पिता के बड़े भाई फैजुल हुसैन के पुत्र) ने स्नेहपूर्वक आग्रह किया कि मैं अकेला न रहूं तथा बंबई के उनके पाली हिल, बांद्रा के सुंदर घर में उनके साथ रहूं। उस समय तक भी पाली हिल शांत तथा आह्लादित हरा भरा उपनगर था।

मैं शहरी जीवन के प्रति कभी भी मुग्ध नहीं रहा हूं, इसलिए देहरादून के निर्बाध सुखी जीवन के पश्चात, स्वेच्छा से बंबई लौटना, मुझे कुछ जम नहीं रहा था। तैहमीना के बिना देहरादून का जीवन न वैसा था और न ही हो सकता था। मेरे भाग्य का निर्णय जिन आधारों पर होना था, उनमें सबसे पहले कमू तथा हसन का स्नेही बुलावा था, वे हमेशा ही हम दोनों के विशेष प्रिय रहे, तथा दूसरा, उत्कृष्ट पक्षिसंग्रह, पुस्तकालय, अनुकूल सहकर्मी तथा मेरे कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अन्य सुविधाएं बंबई स्थित बी.एन.एच.एस. में ही थीं। देहरादून से अपने को काटना बहुत ही दुखदायी था, किंतु अब सोचने पर लगता है कि वह सही था क्योंकि उसके बाद जो भी सफलताएं मैंने अर्जित की हैं उनके लिए यही निर्णय अधिकांशतः जिम्मेदार है। हसन अली के सुचालित तथा प्रसन्न घर में जिस आश्रम के समान एकांत का मैंने आनंद उठाया, और घर चलाने के लिए आवश्यक तथा अन्य घरेलू कामकाजों से जो मुझे स्वतंत्रता मिली उससे मैं सारा समय पक्षिवैज्ञानिक कार्यों में लगा सका। कमू तथा हसन ने पूरी सहनशीलता के साथ मुझे जो स्नेह हमेशा हमेशा दिया, उसके लिए मैं उन्हें कभी भी यथेष्ट धन्यवाद नहीं दे सकता। आशा है कि मुझे, मेरे परिवार को तथा देश को जो सम्मान मेरे उस घर में रहने व कार्य करने के फलस्वरूप मिला उसे वे तनिक क्षतिपूर्ति तथा उनके प्रति मेरे आभार के प्रतीक रूप में भी स्वीकार करेंगे।

देहरादून में रहते समय अगस्त 1934 में मैंने 'पक्षिविज्ञान का अर्थशास्त्र' नामक अनुसंधान की छोटी प्रायोज़ना बनाई थी। बहुत पहले से मुझे पक्षियों के भोजन तथा खाने की आदतों के दो प्राथमिक उद्योगों, कृषि तथा वानिकी, से संबंधों पर गहन अध्ययन की क्षमता तथा संभावना नजर आ रही थी। मेरी इस धारणा की यू.एस.ए. के 'ब्यूरो ऑव बायोलाजिकल सर्वे' (जैव-वैज्ञानिक सर्वेक्षण ब्यूरो), के फोर्बेज, मैक एटी तथा काटम; ब्रिटेन में कालिंज, तथा जर्मनी, जापान और अन्य देशों में हो रहे कार्यों तथा प्रकाशनों और मेरे पत्राचार द्वारा पुष्टि हुई। यह प्रस्ताव ईम्पीरियल (आज इंडियन) काउंसिल ऑव एग्रीकल्चरल रिसर्च (शाही कृषि अनुसंधान परिषद) के विचार हेतु 'बाम्बे प्रेसिडैंसी' के कृषि निदेशक द्वारा भेजा गया था।

उस योजना की प्रस्तावना में मैंने लिखा था कि भारत की कृषि, औद्योगिक

तथा वानिकी में पक्षियों की गतिविधियों का जीवनोपयोगी महत्व है जिसे न तो पहचाना और न समझा गया है; कि उनका प्रभाव द्विमुखी है। एक तरफ तो पक्षी फसल को तथा बागानों के फलों को बहुत नुकसान पहुंचा सकते हैं, परंतु दूसरी तरफ नाशिकीटों तथा अन्य कृषिनाशक जंतुओं, यथा कृंतकों द्वारा किए जा रहे विध्वंस का नियंत्रण कर अत्यधिक लाभ दे सकते हैं। कृंतक तथा कीट आदि पक्षियों के भोजन का हिस्सा हैं तथा पक्षियों की कुछ जातियों के लिए तो केवल ये ही जीव उनका भोजन हैं। मैंने सुझाव दिया था कि हमारे जैसे कृषि तथा वानिकी पर अत्यधिक निर्भर देश में पक्षियों के प्रभाव का विशेष महत्व है। चूंकि एक ही पक्षिजाति का आर्थिक प्रभाव अंडे फूटने से लेकर बच्चों के बड़े होने तक, और एक ऋतु से दूसरी ऋतु तक लाभदायक से नुकसानदायक के बीच झूलता है, इसलिए पक्षी की आर्थिक दशा का सार्थक मूल्यांकन करने के लिए पक्षी के संपूर्ण जीवन तथा पारिस्थितिकी के अध्ययन की नितांत आवश्यकता है। वे पक्षी जो शाकाहारी व मांसाहारी दोनों हैं, उन जातियों के लिए यह अध्ययन और भी महत्वपूर्ण बन जाता है। भोजन की मात्रा तथा प्रकार का निर्धारण अधिकांशतया यद्यपि हमेशा नहीं, प्रयोगशालाओं में पेट की अंतर्वस्तु का विश्लेषण कर किया जा सकता है, किंतु इनके अतिरिक्त पक्षियों की खाने की आदतें, भोजन की पसंद, उनका व्यवहार तथा आबादी की गतिकी का सुव्यवस्थित क्षेत्र अध्ययन के द्वारा जानना उतना ही महत्वपूर्ण है।

पक्षियों के पेट में मृदुशरीर वाले कीट इतने बारीक कुचले जाते हैं कि उनकी पहचान लगभग असंभव होती है। इस कठिनाई को पक्षी के भोजन-व्यवहार तथा उसके शिकार के प्रकार को क्षेत्र-अवलोकन द्वारा हल किया जा सकता है। इसी तरह पक्षियों की अनेक जातियां पुष्पों के मकरंद पर ही मुख्यतया जीवित रहती हैं, किंतु उस प्रक्रिया में वे सिर तथा पंखों में लगे पराग का वहन कर पुष्पों का परपरागण करते हैं, और इस तरह वे पुष्पों के, पौधों के संजनन का अत्यंत उपयोगी कार्य करते हैं। ऐसे पक्षियों के पेट की सामग्री के अवलोकन में कुछ तरल रंगहीन पदार्थ ही दिखेगा जिससे उसके स्रोत पुष्प की पहचान नहीं बनेगी, किंतु यदि उसे विशेष पुष्प पर मकरंद पान करते देख लिया जाए तब पहचान की कोई समस्या ही नहीं। एक निश्चित क्षेत्र में पक्षी की एक जाति के संपूर्ण आर्थिक प्रभाव का सही आकलन करने के लिए उसकी स्थानीय आबादी की नियतकालीन गणना उसका जैव या शुष्क द्रव्यमान[1] उसकी पारिस्थितिकी प्रजनन-जैवविज्ञान तथा आबादी की गतिकी[2] का परिशुद्ध ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है।

---

1. शुष्क द्रव्यमान (biomass)
2. आबादी की गतिकी (population dynamics)

यह सब करने के लिए एक प्रशिक्षित क्षेत्र-पक्षिवैज्ञानिक आवश्यक है। जिसकी सहायता के लिए प्रयोगशाला में एक अनुभवी कीट विशेषज्ञ तथा एक वनस्पति वैज्ञानिक जो बीज तथा पौधों के (पेट के) अवशेषों की पहचान कर सकें; ऐसा पक्षिवैज्ञानिक पक्षियों के जीवन-इतिहास का व्यापक तथा समन्वित अध्ययन कर सकेगा। इसके लिए प्रतिनिधिक बीज संग्रह तथा अन्य तुलनात्मक सामग्री का तुरंत उपलब्ध होना भी आवश्यक है। ऐसा अनुसंधान ब्रिटेन तथा अन्य यूरोपीय देशों में विस्तृत रूप से हो रहा है। यू.एस. कृषि विभाग की शाखा (पूर्व) जैववैज्ञानिक सर्वेक्षण ब्यूरो ने शुद्ध विज्ञान के लिए उपयोगी सामग्री के अतिरिक्त कृषि तथा वानिकी के व्यावहारिक उपयोग के लिए क्रमबद्ध जानकारी का विशाल मात्रा में संग्रह किया है। उस सर्वेक्षण ब्यूरो के प्रमुख जैववैज्ञानिक, श्री डब्ल्यू. एल. मैकएटी से मेरी योजना के आकलन का अनुरोध किया गया था। उन्होंने कहा कि इस योजना की संकल्पना त्रुटिहीन है, तथा उन्होंने सुझाव दिया कि बजाय पक्षियों के विशिष्ट नाशिकीटों पर प्रभाव निर्धारित करने के, पक्षियों के संरक्षण के लिए आर्थिक तर्क का आधार उसकी खाने की आदतों के रुझान तथा जीवों से उसका संबंध होना चाहिए। यह इसलिए भी कि पक्षियों का विशिष्ट नाशिकीटों पर प्रभाव शायद ही स्पष्टतया प्रदर्शित किया जा सके।

मैं यह कल्पना करने में कितना नासमझ आशावादी था कि यह प्रायोजना शीघ्र ही, या कभी भी, साकार हो सकेगी ! यह तब स्पष्ट हुआ जब दो वर्षों के अथक परिश्रम के बाद मुझे इसका अंतिम रूप से परित्याग करना पड़ा। इन दो वर्षों में अंतहीन टनटनाने वाला पत्राचार, कथन, टिप्पणियां, आदि स्पष्टीकरण कभी किसी व्यक्ति को, कभी समिति को दिए गए। और यह तब हुआ जब कि इस योजना को बी.एन.एच.एस., डा. बर्न्स तथा बंबई प्रांतीय कृषि अनुसंधान समिति के अन्य प्रभावी सदस्यों का पूरा समर्थन प्राप्त था। प्रायोजनाओं के अनुमोदन की प्रक्रिया उन दिनों (हो सकता है आज भी ऐसी हो) 'परस्पर सहायता' की थी, या उसे परिष्कृत 'अश्व-व्यापार' भी कह सकते हैं। आई.सी.ए.आर. के समक्ष विभिन्न प्रांत अपनी अपनी प्रायोजनाएं, विकास योजनाएं आदि धन प्राप्ति हेतु रखते थे। विभिन्न प्रांतों के प्रतिनिधि तथा विविध विशेषज्ञों वाली एक सलाहकार समिति उनकी छानबीन किया करती थी। यदि, उदाहरणार्थ बंबई ने पंजाब की योजना का समर्थन किया—दूसरे शब्दों में बंबई ने पंजाब की सहायता की या 'पीठ खुजलाई', तब बहुत संभव था कि पंजाब आपकी (बंबई की) सहायता करे। यह अनुमोदन की सामान्य कार्यप्रणाली थी। मेरी 'आर्थिक पक्षिवैज्ञानिक अन्वेषण योजना' विभिन्न बहानों के आधार पर कुछ बार वापिस किए जाने के बाद सिद्धांततः स्वीकार की गई किंतु आई.सी.ए.आर की अनुमोदित सूची में उसका क्रम सत्रहवां था। डा. बर्न्स ने उत्साहपूर्वक इस योजना का समर्थन संकल्पना से लेकर समस्त उलट-फेरों के

दौरान किया था, लेकिन इस निर्णय से निराश होकर, अपने पुराने कटु अनुभवों के आधार पर, तंग होकर उन्होंने अपनी टिप्पणी लिखी कि विद्यमान परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि योजना के लिए धन प्राप्ति की बारी कब आएगी, शायद कभी आएगी, मेरे लिए यह उचित होगा कि मैं इसे भूल जाऊं और दूसरे घोड़े पर दांव लगाऊं। यह दुखभरी निराशा थी, यद्यपि जिस तरह से 'अश्व-व्यापार' हो रहा था, बिलकुल अनपेक्षित नहीं थी। मेरे लिए यह शिक्षाप्रद अनुभव था कि प्रशासनिक कार्यों में, चाहे वे वैज्ञानिक हों या राष्ट्रीय हित में हों, कूटनीति का कितनां महत्व होता है। यह भी एक आश्चर्य है कि कार्यालयों के घुमावदार गलियारों, कानूनी रुकावटों, तथा अवश्यंभावी विरोध के दांवपेंच तथा लाल फीते की गुत्थियों से प्रत्येक कदम पर गुजरते हुए कोई भी ऐसी प्रायोजना किस तरह से अनुमोदित हो पाती होगी।

सन् 1933 में बी.एन.एच.एस. के एक क्षेत्र संग्राहक वी.एस.लैपरसौन द्वारा किए गए जोधपुर राज्य के परितोषप्रद संग्रह के कार्य को आगे बढ़ाकर ह्विसलर और मैं, पूरे राजस्थान मरुस्थल का और व्यापक सर्वेक्षण करना चाहते थे। राजस्थान के पक्षि-जीवन का ज्ञान अपूर्ण था। मेरा अगला उद्देश्य बहावलपुर राज्य का सर्वेक्षण था। सिंध के मरुस्थल से मेरा संबंध हामिद भाई के साथ बिताई छुट्टियों में हुआ था, अब मैं अपने मरुस्थल के संबंध को पुनर्जीवित करना चाहता था। 1939 के प्रारंभ का बहावलपुर राज्य का पक्षिसर्वेक्षण 'राजपूताना स्टेट्स एजेंसी' के 'ब्रिटिश रेजीडेंट' तथा अमीर के प्रशासन में नियुक्त शिकार अधिकारी, पूर्व ब्रिटिश पुलिस अधिकारी, श्री एटकिंसन की व्यक्तिगत रुचियों के कारण संभव हो पाया था, ये दोनों ही बी.एन.एच.एस. के समर्थक थे। बहावलपुर का क्षेत्र-सर्वेक्षण अंतिम सर्वेक्षण था जिसमें तैहमीना मेरे साथ थी। इसके पूरे होने के कुछ समय बाद ही उसकी दुखद मृत्यु हो गई।

युवा और मोटा अमीर अति कामुकता के लिए, भारतीय राजाओं के संदर्भ में—'कामिनी-कांचन' के संयोग से जो भी संभव है उस सब के लिए, कुख्यात था। राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में कुछ वर्ष पूर्व जब वह इंग्लैंड घूमने गया और उससे पूछा गया था कि सबसे अधिक प्रभावित वह किससे हुआ; तब उसका उत्तर था, 'एक्ट्रेसों के पैरों से' ! उसके कुछ सभासद तथा उपजीवी उसकी असाधारण कामुक-लहरों के लिए दलाली ही करते थे। उनमें से एक ने जो शायद अश्लील साहित्य विभाग का अधिकारी था, यह पता लगने पर कि मैं मुगल-लघुचित्रों में रुचि रखता हूं, विशेषकर जानवरों के, मुझे विशिष्ट अतिथि का विशिष्ट सम्मान दिया; उसने एक 'लॉकर' खोलकर अनेक मुगल तथा राजपूताना लघुचित्रों, जो उसके कथनानुसार राजा साहब को विशेष प्रिय थे, दिखलाए। चित्र की दृष्टि वे बड़ी सूक्ष्मता से निष्पादित किए गए थे, किंतु उनमें सभी राजा अर्धनग्न (सिर पर मणिजटित

मुकुट आदि अवश्य पहने रहते थे) चित्रित थे और उनकी सहेलियां उपयुक्त रूप से नग्नावस्था में, उत्तम किंतु असंभव मुद्राओं में थीं जो खजुराहो को भी मात कर दें।

बहावलपुर सरकार की आतिथ्य नीति के अनुसार सभी राजधानी के घोषित पर्यटक पहले तीन दिन के लिए सरकार के अतिथि होते थे। तत्पश्चात उन्हें अतिथिगृह का निर्धारित शुल्क देना होता था। किंतु सरकारी आतिथ्य में एक विचित्र प्रथा थी जिसके अनुसार अतिथियों को पहली तथा दूसरी श्रेणी में बांटा जाता था। और अतिथि को उसकी श्रेणी बताई नहीं जाती थी, जिसे वह भोजन की मेज पर पहुंचकर ही जान पाता था। भोजन की मेज के सामने की दीवार पर पहचान की कुंजी स्पष्ट रूप से प्रदर्शित की जाती थी। सूचना पट्ट में दो कालम थे जिनमें पहली तथा दूसरी श्रेणी के अतिथियों की व्यंजन-सूची स्पष्ट रूप से अंकित थी, यथा पहली श्रेणी के स्तंभ में—दो अंडे, दो टोस्ट..., तथा दूसरी श्रेणी के कालम में एक अंडा, एक टोस्ट...इत्यादि। किसी भी व्यक्ति को यह बतलाने की कि राज्य की दृष्टि में उसका क्या पद है, बहुत ही क्रूर पद्धति थी। इसलिए दूसरे दिन सुबह अपनी प्लेटों में दो-दो अंडे देखकर, हमें बहुत सांत्वना मिली!

मरुस्थलीय जंतुओं के छद्म रंजन[1] की समस्याओं का निकट से अध्ययन करने का बेहतरीन अवसर बहावलपुर सर्वेक्षण ने प्रदान किया था। इस विषय ने मुझे हमेशा से आकर्षित किया है। मैनहर्टजन ने अफ्रीकी तथा एशियाई मरुस्थलों के पक्षियों तथा उनके जीवन की परिस्थितियों का विशेष अध्ययन किया है। पुख्ता प्रमाणों के आधार पर उनकी मूलभूत मान्यता है कि वातावरण में नमी का घनत्व पृथ्वी तल तथा उसके जीवों तक पहुंचने वाली पराबैंगनी किरणों की मात्रा का नियंत्रण करता है। मरुस्थल के ऊपर की सूखी वायु से पराबैंगनी किरणें अधिक तथा नमी से संपृक्त वायु से कम मात्रा में नीचे पहुंचती हैं। पराबैंगनी किरणों का जितना अधिक प्रभाव होगा रंग उतने ही धुंधले होंगे (जैसे कि मरुस्थल की रेत तथा जानवरों के रंग); इसके विपरीत पराबैंगनी किरणों का प्रभाव जितना कम होगा, प्रभावित मृदा तथा जानवरों के रंग उतने ही प्रगाढ़ होंगे। इसलिए जो कारक मरुस्थल की मृदा का रंग काला करते हैं, वे ही उन पर रहने वाले जीवों का रंग मरुस्थल के रंग-सा बनाकर उस परिवेश में उन्हें कम दृष्टिगोचर करते हैं। मैंने यह अवलोकन किया कि वर्षा से पूर्णसिक्त होने पर मरुस्थल के पक्षियों का रंग यथा 'मरुकुलिंग भरत'[2] तथा मरुधावक[3] के भूरे रंग उतने ही प्रगाढ़ हुए जितनी प्रगाढ़ वह रेत जिस

1. छद्म रंजन (camouflaging coloration)
2. मरुकुलिंग भरत (Desert Finch-Larsk)
3. मरुधावक (Desert courser)

पर वे बैठे थे। काली-सूखी-मरु-रेत के परिवेश में जो अभिलोपन पक्षियों को रेतीला रंग दे रहा था, वही अभिलोपन उन्हें वर्षासिक्त प्रगाढ़ रेत में मिल रहा था। मैनहर्टजन के सुझाव, कि वही कारक हैं जो मरुस्थलीय जानवरों के रंगों तथा परिवेश के रंगों को समानता देते हैं, के इस अवलोकन से पुष्टि मिलती है। बहावलपुर रिपोर्ट पढ़ने के बाद मैनहर्टजन ने मुझे लिखा, 'पक्षियों के परों पर वर्षा के प्रभाव का आपका अवलोकन मुझे रुचिकर लगा। यह विचित्र है कि किस तरह सुस्पष्ट छोटी सचाइयां अनदेखी रह जाती हैं, और मेरा विचार है कि आपके कथन में बड़ी शक्ति है। मैं आशा क़रता हूं कि आप मुझे उस विचार का उपयोग अपने मोरक्को प्रलेख में करने देंगे।'

11

अफगानिस्तान

1935 में, किसी समय, मेरे पक्षिवैज्ञानिक मित्र ह्यू व्हिसलर ने मुझे एक रमणीय पत्र, इंग्लैंड से लिखा। उन्होंने बतलाया कि विख्यात ब्रितानी पक्षिवैज्ञानिक कर्नल आर. मैनहर्ट्जन 'संग्रहण' हेतु अफगानिस्तान जाने की योजना बना रहे हैं। वे पक्षिकार्य में सहायता के लिए कोई योग्य सहयोगी खोज रहे हैं। व्हिसलर ने मुझसे पूछा कि क्या मैं जाना चाहूंगा। मैंने सोचा 'नेकी और पूछ पूछ'। मैंने उत्तर दिया कि अफगानिस्तान हमारा निकट पड़ोसी है और उसके पक्षियों के विषय में हमें इतना कम ज्ञान उपलब्ध है; किंतु मैंने उन्हें सावधान करते हुए लिखा कि मेरी रुचि प्रधानतया 'पारिस्थितिकीय' है, अतएव मैं पक्षी के चर्मसंस्कार में अधिक सहायता नहीं कर पाऊंगा। अतएव अतिरिक्त मदद की आवश्यकता होगी। उधर व्हिसलर ने मुझे सावधान करते हुए लिखा कि मैनहर्ट्जन नमूनों की तैयारी में पूर्णता के दृढ़पोषक हैं, फिर चाहे वह विज्ञान की कोई भी शाखा हो, और ऐसा होना भी चाहिए। अतएव मैं चर्मसंस्कारक का चुनाव सावधानीपूर्वक करूं। मैनहर्टजन 1936 तक केन्या में व्यस्त थे इसलिए अफगानिस्तान-अभियान 1937 में ही हो सका।

पक्षिवैज्ञानिकी ने मुझे अनेक स्मरणीय मित्र दिए, किंतु उनमें से रिचर्ड मैनहर्ट्जन अत्यंत वैविध्यपूर्ण, मौलिक तथा अनेक दृष्टियों से कमनीय थे। उन्होंने सेना अधिकारी के रूप में ब्रिटिश थलसेना में अपना अधिकांश समय पूर्वी अफ्रीका में बिताया था। एक सैनिक, एक 'बड़े शिकारी' तथा एक पक्षिवैज्ञानिक के रूप में उनकी उपलब्धियों का मनमोहक वर्णन उनकी पुस्तक 'केन्या-डायरी' तथा केन्या एवं टैंगैनिका के औपनिवेशिक काल संबंधी अन्य पुस्तकों में मिलता है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने थोड़े समय के लिए भारत में अस्थायी रूप से कार्य तथा स्वास्थ्य लाभ भी किया था अतएव भारत से उनका परिचय भी था। यह पूछने पर कि उन्होंने हिंदी या उर्दू भी सीखी थी, उन्होंने बतलाया कि एक बहुत उपयोगी पद जो उन्होंने सीखा था वह है 'सूअर का बच्चा' और जिसका कूटरूप था 'एसकेबी'। वे जब अपने विरोधियों का संदर्भ अपनी बातचीत में देते थे तब इस कूट का

खुलकर उपयोग करते थे। वे अतिभावुकता से रहित, अदम्य साहसी तथा शारीरिक दर्द से अप्रभावित रहने वाले थे।

अफ्रीका में विद्रोही नंदी कबीले से एक मुठभेड़ में, केवल छह सैनिकों को लेकर वे लायबान के गांव में रात में रेंगते हुए घुस गए तथा उन्होंने लायबान (मुखिया) को बंदी बना लिया। किंतु जब वे उसे गांव से बाहर ले जा रहे थे तब कबीलों ने बड़ी संख्या में उन्हें घेर लिया और प्रहार की तैयारी करने लगे। मैनहर्टजन ने उन्हें चेतावनी दी कि वे अपना घेरा तोड़ दें, अन्यथा वे लायबान को शूट करने के लिए मजबूर होंगे। किंतु जब वे कबीले आक्रामक ढंग से आगे बढ़े तो उन्होंने अपनी छोटी टुकड़ी पर आते खतरे से बचने के लिए लायबान को रिवाल्वर से शूट कर उस कबीले को आत्मसमर्पण के लिए बाध्य कर दिया। इस वीरोचित साहसी कार्य के लिए उन्हें 'डिस्टिंग्विश्ड सर्विस आर्डर' से सम्मानित किया गया।

उनका एक और बहुचर्चित दुस्साहसी पराक्रम, प्रथम विश्वयुद्ध के समय मध्यपूर्व-युद्धक्रम में हुआ था। उनकी छोटी-सी टुकड़ी पर तुर्की सैनिकों की बड़ी कंपनी आक्रमण करने की योजना बना रही थी और उनके पास सिवाय लड़कर हारने के और कोई रास्ता नहीं था। मैनहर्ट्जन ने शत्रु को धोखा देने के लिए एक योजना बनाई। उन्होंने एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने ब्रितानी लोगों द्वारा एक अन्यत्र स्थान पर भारी आक्रमण की योजना लिखी और उसे लेकर वे अकेले घोड़े पर सवार होकर उस तुर्की शिविर की ओर चले। शिविर के तुर्की पहरेदारों ने उन्हें देखते ही खतरे का बिगुल बजाकर उन पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी, तभी उन्होंने अपना घोड़ा मोड़ा और सरपट वापिस दौड़ाया। इसी बीच जान-बूझकर उस छद्म आक्रमण योजना वाले पत्र के डिब्बे को गिरा दिया और उड़ती धूल में गोलियों की पीछा करती बौछार में से लौट आए। तुर्की सैनिक उस धोखे में आ गए और उन्होंने अपने आक्रमण की योजना बदलकर अपनी शक्ति उस छद्म क्षेत्र की रक्षा में लगा दी। इस तरह उन्होंने ब्रितानी शिविर को सर्वनाश से बचा लिया।

मध्यपूर्व की एक और दुस्साहसिक घटना मैनहर्ट्जन ने मुझे सुनाई, किंतु वह एक युवा दुस्साहसिक पायलट की थी। इस युद्ध क्रम में उन्हें मेसोपोटेमियाई गांवों के ऊपर एक पायलट के साथ उड़कर, वहां की आबादी पर प्रचार पत्र गिराने थे। प्रचार था कि ब्रिटिश निस्वार्थ भावना तथा परोपकार के लिए इराकियों को तुर्की शिकंजे से मुक्त कराना चाहते हैं। किंतु विमान बहुत ही छोटा, नाजुक, एक इंजन और दो सीट वाला तथा द्विपक्षीय था जिसके पक्ष भी तने हुए कैनवस से बने थे। हवाई अड्डे पर युवा पायलट उस लघु विमान में प्रचार पत्रों के बंडल पर बंडल लादने लगा। रि.मा. (R.M) थोड़ी देर तक तो चुपचाप देखते रहे किंतु जब उन्हें विमान की थोड़ी चिंता हुई तब उन्होंने, जैसे यूं ही, पायलट से जिज्ञासावश पूछा कि विमान में कितना वजन ले जा सकते हैं। पायलट ने मुस्कराकर पीछे

देखा और व्यंग्य किया, 'ओह, वह तो मरणोपरांत समिति निश्चित करेगी' और मजे से वह बंडल पर बंडल लादता चला गया जब तक कि विमान पूरा भर नहीं गया।

मैनहर्ट्जन उतना ही तितिक्ष-शारीरिक कष्टों से उदासीन था जितना व्यक्तिगत खतरों से नितांत निर्भय था। काबुल के पास, एक बार जब हम लोग नरकुल भरे दलदल में 'संग्रहण' कर रहे थे, रि.मा. हाफ पैंट में थे तथा पैर खुले थे। दुर्योग से नरकुल का एक कांटा उनके पैर में कोई दो से.मी. घुसकर अंदर ही टूट गया। इसकी चिंता किए बिना वे दलदल में अपना कार्य करते रहे तथा उनका रक्त बहता रहा। अंत में, काफी मनाने समझाने के बाद, वे लौटने के लिए तैयार हुए। जब वे लंगड़ाते हुए वापिस दूतावास के डाक्टर के पास जाने के लिए कार में बैठने आए तब उन्हें मनोवांछित जाति का एक दढ़ियल गिद्ध, उलटी दिशा में कोई 300 मीटर दूर दिखा। घुसे कांटे की उपेक्षा करते हुए, बहते रक्त के साथ, वे लंगड़ाते हुए गिद्ध की दिशा में गए, उसे शूट किया और तब वापस कार में आए।

11 फरवरी, 1937 को जब मैनहर्ट्जन मुंबई आए, तब हम लोगों की उनसे पहली भेंट हुई। वे नियमित रूप से डायरी लिखा करते थे। धीरे-धीरे हम लोगों की मित्रता प्रगाढ़ होती गई। मृत्यु के पूर्व उन्होंने उदारतापूर्वक अपनी डायरी पढ़ने की अनुमति दी किंतु इस सावधानी के साथ कि 'खतरा आपके सर'। डायरी में मैंने पढ़ा, 'तब मैं बंबई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी गया जहां मैं प्रेटर तथा सालिम अली से मिला। दूसरे ने मुझे भली प्रकार प्रभावित किया और जितना मैं उन्हें देख सका, वह मुझे अच्छे लगे। यदि हम लोगों को अगले कुछ माहों में साथ-साथ यात्रा करना है तो यह अच्छे शगुन हैं। वह मुझे बुद्धिमान दिखाई दिया किंतु भीषण कुरूप, गांधी से भिन्न नहीं।'

चर्मसंस्कार के लिए अतिरिक्त सहायक के रूप में मैंने एन.जी.पिल्लै को चुना। त्रिवेंद्रम म्यूजियम ने, 1933-34 के त्रावणकोर पक्षिसर्वेक्षण के लिए, मुझे पिल्लै की सेवाएं अर्पित की थीं। पिल्लै योग्य प्राणिवैज्ञानिक, कुशल कार्यकर्ता, तथा सर्वोपरि मृदुभाषी तथा मधुर आचार वाले व्यक्ति थे जो, मैं जानता था, अकल्पनीय स्थितियों में भी स्वीकार्य रहेंगे। उनकी, शायद, एक ही कमजोरी थी, वे इस अफगानिस्तान-अभियान के लिए आवश्यकता से अधिक विनम्र तथा साहिष्णु थे जिसके कारण उन्हें छोटे मोटे अपमान भी सहने पड़े। पिल्लै के अतिरिक्त चर्मसंस्कार के लिए देहरादून के डायसन नामक ईसाई को चुना गया था। मुझे अनेक अभियानों से पता था कि डायसन पैदायशी कामचोर और बहानेबाज है। किंतु यदि उसकी पूंछ उमेठी जाए तो वह बैल की तरह तथा कोई भी काम करने वाला और अच्छा काम करने वाला हो सकता था, और मैनहर्टजन में यह और इससे भी अधिक क्षमता थी। साथ ही रास्ते में पेशावर से हम लोगों ने एक हट्टा कट्टा सुंदर पठान नौकर

ले लिया था। वह अपने काम में होशियार था, तथा विदेशियों के साथ पहले काम कर चुका था और उनके तौर तरीके जानता था (यद्यपि, वे उसे पसंद नहीं थे और यह उसने छिपाया नहीं था)। रि.मा. ने मुझसे अफगान अभियान के लिए एक योग्य वानस्पतिक वैज्ञानिक चुनने के लिए भी कहा था। मेरे मित्र, लखनऊ विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर बीरबल साहनी, एफ.आर.एस., ने योग्य युवा विद्यार्थी के.एन.कौल की अनुशंसा की थी। रि.मा. ने कौल का इंटरव्यू लिया और पर्याप्त प्रभावित भी हुए किंतु अंततः अस्वीकार कर दिया। क्यों किया, यह मेरी समझ में तब नहीं आया था। अब डायरी पढ़ने पर मालूम हुआ : ''लखनऊ 8.3.1937—एक युवा हिंदू विद्यार्थी कैलाश नाथ कौल, भूवैज्ञानिक (एतद्वत लिखित) मेरे साथ अफगानिस्तान जाने का इच्छुक। वह युवा है, शिष्ट आचरण वाला तथा बुद्धिमान है किंतु मुझे अपने ऊपर संदेह है कि तीन माह के लिए, रात और दिन दो विद्रोहियों को सहन कर पाऊंगा। सालिम कट्टर विद्रोही तथा साम्यवादी है, कौल भी वैसा ही है (कौल जवाहरलाल की पत्नी का भाई है), और यह अभियान, संभवतः, विनाश को पहुंचेगा।''

पेशावर में हम लोगों ने एक खुला खटारा शैवर्ले ट्रक किराए पर ले लिया था। उसमें हमने तंबू, शिविर सामग्री, नमूने के बक्से, अनाज, भंडार तथा व्यक्तिगत सामान लाद दिया था। सिख ड्राइवर, मैनहर्ट्जन तथा मैं आगे बैठे थे, तथा पिल्लै, डायसन, पठान नौकर, कंडक्टर तथा एक दो और ऐरे गैरे नत्थू खैरे सामान के साथ पीछे बैठे थे। अप्रैल का प्रारंभ था, शीतकालीन बर्फ ने अभी पिघलना शुरू ही किया था। कच्ची पहाड़ी सड़क कीचड़ से पटी थी तथा उसमें असंख्य चिमटे के समान मोड़ थे, तथा एक तरफ सैकड़ों फीट सीधे गहरे खड्ड थे। सरदारजी तो धृष्ट ड्राइवर निकले। उसे कोने काटने में, तेज गति में फिसलन वाली सड़कों के मोड़ों पर फिसलाने में बड़ा मजा आता था, हमारे लगातार विरोध का उस पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। इसलिए हम लोग दम साधे, शरीर पर रोंगटे खड़े हुए, बैठे रहे। हम लोग काबुल अंधेरे के बाद पहुंचे, डरे सहमे किंतु अल्लाह का शुक्रिया करते हुए कि 'परीक्षा' समाप्त हो गई थी। पेशावर से खैबर-दर्रा होते हुए जलालाबाद और फिर काबुल तक की यात्रा ने दो दिन लिए थे। काबुल में ब्रिटिश मंत्री कर्नल सर कैर्र फ्रेजर-टिटलर के उदार आतिथ्य की कृपा से हम वाणिज्य-दूतावास भवन में ठहराए गए थे। वह समृद्ध भवन भारतीय धन से निर्मित हुआ था और विश्व में, उस समय, सर्वाधिक भव्य भवनों में से एक होगा (निस्संदेह 'राज' की प्रतिष्ठा तथा ऐश्वर्य की मर्यादा बनाए रखने के लिए) और शायद, वह आज के सर्वोत्तम पांच सितारा होटलों से भी अधिक राजसी सजावट से पूर्ण था। हमारे अभियान का कार्यकाल काबुल के उत्तरी क्षेत्र में ऑक्सस नदी तक (सोवियत सीमा तक) लगभग आठ सप्ताह रहा। इस अभियान के समय नादिर शाह का राज्य था, जिन्होंने

'लैजैन्ड्री' सहसोन्नत 'नए नवाब' बच्चा-ए-सक्का को हटाया था, जिन्होंने अति तीव्रगति से सुधार करने वाले अति उत्साही राजा अमानुल्लाह को हटाया था। सारे समय अफगान सरकार ने आतिथ्य-सरकार के साथ सहयोग दिया, उन्होंने हमारे लिए एक मेहमानदार भी (आराम तलब तथा सुखाकृति लिए) नियुक्त किया जो हमारे साथ यात्रा में जाते तथा राजकीय व अन्य कठिनाइयां दूर करते, स्थानीय सहायता तथा सामग्री का प्रबंध करते तथा यह सुनिश्चित करते थे कि ग्राम क्षेत्रों में घूमने के लिए हमें पूरी स्वतंत्रता मिलती रहे। तथा, जैसा बाद में मैनहर्ट्जन ने सटीक टिप्पणी दी कि 'इतने सारे कार्य उन्होंने निष्क्रिय गति से पूरे किए'।

मेरा अनुभव था कि सामान्य अंग्रेज भी अपनी सत्ता के उत्कर्ष काल में, शक्ति में अपने से एक सीढ़ी नीचे वाले को डरा-धमकाकर रखेगा। भारतीय, यह तो निश्चित है कि, बहुत ही विनम्र तथा दीन हैं जो उनके लिए सरल शिकार बन जाते हैं। ब्रिटिश चरित्र में मैंने एक और विचित्रता देखी है कि यदि आप उसकी धौंस का सामना करें, वापस प्रहार करें तब वह आपका आदर करता है। मेरे साथ ऐसा ही होता था तथा मैनहर्ट्जन भी ऐसा ही था। उनके एक जीवनीकार ने उन्हें 'शारीरिक रूप से शक्त, हिंसात्मक तथा निर्मम व्यक्ति' कहकर निरूपित किया है। यह सुखद है कि यह निरूपण आंशिक रूप से ही सत्य है। यद्यपि उनमें अनेक प्रशंसनीय गुण थे, उनमें (डरा-धमकाकर व्यवहार करने वाला) धौंसिया गुण भी स्पष्टरूप से था। और वे क्रूरता की सीमा तक भी अतार्किक व्यवहार कर सकते थे। अपनी अतीव विनम्रता के कारण पिल्लै धौंसिया के लिए उत्तम शिकार था, तथा वह हमेशा उनसे आतंकित रहता था। रि.मा. की दृष्टि में पिल्लै न तो कुछ सही कर सकता था और न सही तरीके से कर सकता था (—और न मैं, जैसा कि मैंने बाद में उनकी डायरी से जाना—) अक्सर धौंसबाजी की अति होने पर मुझे बीच-बचाव करना पड़ता था।

मैनहर्ट्जन अपने साथ दो 'विलैसडैन' (एक ब्रांड का नाम) तंबू लाए थे जो जलाभेद्य (वाटरप्रूफ) कैनवस के बने थे। केन्या में अनेक वर्षों वे उनके साथी रहे, और उन्हें (रि.मा.) उनसे बहुत लगाव था। उन्हें सचमुच उन तंबुओं से इतना अधिक लगाव था कि उन्हें लगाने तथा उठाने के लिए किसी का भरोसा न कर, वह यह कार्य स्वयं करते थे। एक दिन तूफानी वर्षा के बाद, फिसलन भरी सड़क पर, तूफानी सरदार जी द्वारा हमारा अभियान ट्रक स्किड कर लेट गया, फलस्वरूप सारा साजो-सामान नीचे, दुर्भाग्य से एक नहर में, गिरा। उस सारे सामान को नहर में से शीघ्रातिशीघ्र निकाला, लेकिन वह भी तब, जबकि हम अपने को उस लेटे ट्रक में से खींच-खांचकर निकाल पाए। उस सामान में वह बेशकीमती तंबू भी था किंतु वह जलाभेद्य तंबू जलसिक्त हो गया था। शाम को भी देर हो गई थी इसलिए ट्रक को सीधा करने के लिए कोई मदद नहीं मिल सकती थी। अतः पास के मैदान

में तंबू लगाकर रात बिताने का निश्चय कर तंबू लगाए गए। सारी रात बारिश होती रही इसलिए गीले तंबू सुबह तक और भी गीले हो गए। सूर्योदय में ही मेहमानदार पास के गांव में कोई तीन किलोमीटर दूर तक सहायता के लिए गए और सहायता मिलने पर लेटे ट्रक को खड़ा किया गया। गीले तंबुओं को खोलकर जल्दी-जल्दी ट्रक में रखा गया। और हम लोग अगले डाकबंगले में सुबह की खुली धूप में, नौ बजे पहुंच गए। रि.मा. तथा मैं शीघ्र ही क्षेत्र की खोज-बीन करने निकल पड़े, तथा पिल्लै आदि को शिविर लगाने के लिए छोड़ दिया। जब हम लोग दो तीन घंटे में लौटे, तब रि.मा. ने देखा कि उसके प्रिय तंबू धूप में सूखने के लिए खुले पड़े थे। हो सकता है कि उस सुबह का संग्रह निराशाजनक रहा हो, या जल्दबाजी में किया गया नाश्ता उसके पेट में विद्रोह कर रहा हो, मुझे पता नहीं, किंतु तंबुओं को देखते ही, उसे भयानक गुस्से का दौरा पड़ गया।

पिल्लै को हाजिर करवाया गया तथा 'निष्ठुरता' से वे उस पर चीखते हुए बरस पड़े : 'उससे उन तंबुओं को हाथ लगाने के लिए किसने कहा था ? बिना आदेश के उसने उन्हें छूने की हिम्मत कैसे की?' इस तरह काफी देर सुनने के बाद मैं अपने को चुप नहीं रख सका, अन्यायपूर्ण क्रोधावेशी धौंस के असाधारण प्रदर्शन को मैं बर्दाश्त नहीं कर सका तथा मुझे लगा कि उस आतंकित, भय से कांपते गरीब पिल्लै को बचाना मेरा धर्म है। मैंने रि.मा. को बतलाया कि वह नितांत अनुचित तथा बेतुकी बात कर रहा है। पिल्लै की जगह पर कोई अन्य बुद्धिमान व्यक्ति भी होता तो वह भी यही करता। ये दोनों तंबू बिलकुल गीले थे, सुबह खुली धूप में अन्य चीजें सुखाई जा रही थीं और यदि पिल्लै जो शिविर का प्रबंध कर रहा था, उन गीले तंबुओं को नहीं सुखाता तब रि.मा. निश्चित रूप से पिल्लै की मूर्खता पर आक्रमण कर सकता था, जो न्यायपूर्ण माना जाता। अतः उनका दोषारोपण तथा चीखना न्यायसंगत नहीं है। रि.मा. पहले तो मेरे हस्तक्षेप पर झुंझलाया तथा थोड़ा भभका भी किंतु स्थिति की अनर्गलता समझकर शीघ्र ही शांत हो गया।

हम दोनों का नियम था कि सुबह नाश्ते के उपरांत, लगभग 7.30 बजे अलग दिशाओं में, स्थानीय शिकारी को पथप्रदर्शक के रूप में साथ लेते हुए जाते थे। दोपहर तक पक्षी निहारन तथा संग्रहण करते थे। शिविर में वापिस आने पर सभी नमूनों को छांटने तथा यूकनाशन (डीलाउजिंग) के लिए तैयार करते थे। इस अभियान में रि.मा. की विशेष रुचि, पक्षियों के अतिरिक्त उनमें आवासी पंख-यूकों[1] के संग्रह में भी थी। ये पंख-यूक, मानव के सिर में पाई जाने वाली निकृष्ट 'जूं' या 'यूंक' ('एक नाम') जो खून चूसती हैं, उनसे भिन्न हैं। ये पक्षियों के पंखों के भीतर रहती हैं तथा सड़ते हुए परों को खाती हैं। वे बहुत सीमित रूप में परपोषी जाति

1. पंख-यूकों (mallophaga)

की आतिथेयी होती हैं यथा उनकी एक जाति जो पीलक में पाई जाती है, वह मैना में नहीं मिलेगी। अतः दो विभिन्न जातियों में यदि एक ही यूक जाति रहती है तब उनमें घनिष्ठ वैकासीय संबंध की संभावना रहती है। इस तरह जैव विकास तथा वर्गीकरण के लिए पंख-यूकों का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

घर के भीतर की हमारी गतिविधियां दोपहर के भोजन के बाद शुरू होती थीं तथा अंधेरा होने तक चलती रहती थीं। पंख-यूकों के संग्रहण के लिए पक्षी को सफेद मलमल में लपेटकर क्लोरोफॉर्म सिक्त रूई के फाहे के साथ तंग डिब्बे में बंद रखते थे। कुछ ही मिनटों में डिब्बा खोलकर मलमल में से पक्षी को निकालते तथा पक्षी के पंखों को हिलाकर मृत पंख-यूक इकट्ठे करते थे, फिर उन्हें अलकोहल भरी छोटी शीशियों में डालते थे, और आतिथेयी, दिनांक, स्थल तथा अन्य संबद्ध जानकारियां लिखकर 'लेबल' लगाते थे। वास्तव में रि.मा. का अधिकांश काम यही होता था, और उस अवधि में मैं पक्षियों का वजन, तथा अन्य माप लिया करता था। निर्मोचन तथा पंखहीन भागों के वर्णों को लिखता था। चर्म निकाले गए पक्षियों की चीर फाड़ करता तथा उनके लिंग, पेट स्थित भोजन का विश्लेषण करता तथा परजीवियों का वर्णन आदि नोट करता था। पंख-यूक संबंधी गतिविधि पूरी करने पर रि.मा. चर्मसंस्कारिए को सहयोग देता था तथा मैं सुबह के क्षेत्र के नोट लिखता था। यहां मुझे एक मजेदार घटना याद आती है जो रि.मा. की 'लाक्षणिक' मानी जा सकती है। अभियान प्रयाण पूर्व रि.मा. ने सारे सामान की सूची देखी। सारा सामान मैंने सोच-समझकर ही लिया था। उस सूची में जब उसने दो 'पैट्रोमैक्स' देखे तब तिरस्कार-सा करते हुए उसने मेरा उपहास किया कि मेरा चयन कितना विलासपूर्ण था क्योंकि पिछले चालीस वर्षों में उसने संग्रहण करने में केवल लालटेनों से ही काम किया है। मैंने उत्तर में केवल यही कहा कि मुझे रात में काम करने के लिए तेज प्रकाश चाहिए इसलिए ये मैंने अपने लिए रखे हैं तिस पर उन्होंने बड़े घमंड से लोगों के 'कोमल' हो जाने पर व्यंग्योक्ति की, खैर बातचीत वहीं समाप्त हो गई। जब हम लोगों ने शिविर में काम शुरू किया, तब पहली ही रात को, जब मैं अपने सांध्य संग्रहण से लौटा तो देखा कि रि.मा. ने दोनों पैट्रोमैक्स पर आधिपत्य जमा लिया है, बड़ी शांति से वह एक बाईं ओर तथा दूसरा दाईं ओर रखकर उनके तेज प्रकाश का आनंद ले रहे हैं और शायद उन्हें अपनी पुरानी लालटेनों की याद भी नहीं है। उसके बाद से रि.मा. यही करते थे, और यदि मुझे रात में काम करना होता तो मुझे उनके पास जगह खोजनी पड़ती थी क्योंकि पैट्रोमैक्सों से रात में रि.मा. को अलग नहीं किया जा सकता था।

हमारे अभियान दल में दो ईसाई, एक हिंदू, एक सिख तथा दो प्रकार के तीन मुस्लिम थे। सर्वनाशवादियों ने भविष्यवाणी की थी कि हममें से कोई भी, विशेषकर काफिर, जीवित वापिस नहीं लौटेगा; कि अफगान इतने धर्मांध हैं तथा देश में इतने

डाकू हैं कि हम लोग लूट लिए जाएंगे, हमारी हत्या कर दी जाएगी, इत्यादि-इत्यादि। यथार्थ में हम लोगों से एक बार भी धर्म नहीं पूछा गया, तथा अफगान ग्रामीण लोग अत्यंत सहृदय तथा सत्कारशील मिले। हम लोग जब ग्राम्य क्षेत्र में संग्रहण में लगे होते, ग्रामीण लोग हमारे पास कई बार दौड़कर आते और कहते, 'आप अतिथियों का हम स्वागत करते हैं, आप हमारे घर अवश्य चलें तथा चाय लें।' हमारे खुले ट्रक में हम लोगों का सारा सामान रखा रहता था : व्यक्तिगत, अनाज और यहां तक कि कारतूस भी। हम ट्रक को सड़क के किनारे ही छोड़ दिया करते थे, हम लोगों का कोई भी सामान नहीं गुम हुआ और न ही किसी ने हमें तंग किया—हां, मक्खियों के सिवाय ! यह भविष्यवाणियों तथा उन्हें प्रचारित करने वाले कुकर्मियों को अनावृत करता है : संभवतया वे हमारे देश के उत्तर-पश्चिमी सीमांत के कबाइलियों के विषय में सोच रहे थे।

यात्रा में बहुत समय लगता था। काबुल से हम लोग उत्तर की ओर चले थे, रास्ते में छह या आठ स्थलों में और प्रत्येक स्थान पर पांच या छह दिनों के शिविर लगाए थे। हम लोग कभी-कभी तंबुओं में रहते थे किंतु अधिकांशतया ओसारे या छाजन में क्योंकि डाक बंगले वहां थे ही नहीं। केवल बामियां अपवाद था। बामियां पुरातन बौद्ध सभ्यता का केंद्र रहा है; उसमें बुद्ध की लगभग 16 मीटर ऊंची विशाल मूर्ति है जो एक ही चट्टान में तराशी गई है, अतएव यह स्थल पुरातत्वशास्त्रीय तथा ऐतिहासिक महत्व रखता है। इस जगह बड़ी संख्या में विदेशी पर्यटक आते हैं। आवास व्यवस्था में मेहमानदार ने बहुत सहायता की थी। आवश्यकता पड़ने पर वे पहले पहुंचकर आवास की व्यवस्था करते थे। दो शिविरों के बीच संचार पुलिस स्टेशनों, सीमा चौकियों या अन्य प्रशासकीय कार्यालयों में उपलब्ध टेलीफोनों द्वारा होता था। इनके द्वारा मेहमानदार पहले से ही हमारी यात्रा की सूचना भेजकर प्रबंध कर लेते थे।

एक चिड़िया, सामान्य फीजेंट[1] से हमारी प्रथम भेंट उसके पैतृक केंद्रीय-एशियाई गृहस्थल में हुई जो उत्तरी अफगानिस्तान के दानाघोड़ी समतल में है। और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहां पर इसके प्राकृतिक-आवास विस्तृत दलदली नरकुल खंड थे, जिनमें एक भी वृक्ष नहीं था जहां वे बसेरा कर सकें। अफगानी पक्षियों का संग्रह मेरे लिए विशेष रुचिकर था क्योंकि वहां मुझे पक्षियों की ऐसी अनेक जातियां मिलीं जिन्हें मैंने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। उदाहरणार्थ : 'हिम कुक्कुट'[2] तथा 'सीसी तीतर'। किंतु मेरे लिए इस अभियान का सर्वाधिक आनंदमय अनुभव था उत्तर की ओर प्रयाण करता बसंत-प्रवास, जिसकी प्रगति को

1. सामान्य फीजेंट (common pheasant)
2. हिम कुक्कुट (snowcock)

मैं उस देश में बिताए सारे समय देखता रहा, यथा : ललपैर श्येन[1] तथा छत्रक श्येनक[2] को अफ्रीका से पूर्व एशिया; तथा गुलाबी मैना[3] के विशाल झुंडों को भारतीय मैदानों से तुर्किस्तान के प्रजनन क्षेत्रों को जाते हुए देखा। दानाघोड़ी में हमने उनका प्रमुख प्रवास देखा। अफगनी में इन्हें 'साच' कहते हैं। 4 से 10 मई की अवधि में हजारों गुलाबी मैनाएं, खाने तथा विश्राम करने के लिए पड़ाव डाल रही थीं, तथा दक्षिण से आते हुए दल उनकी संख्या रोज बढ़ा रहे थे। रि.मा. ने अनुमान लगाया कि 6 मई को उनकी आने की दर सात घंटे में 15,400 थी। मई के प्रथम सप्ताह में, दानाघोड़ी के मैदान में, अधिकांशतया दलदली नरकंडों में, लगभग पांच लाख गुलाबी मैनाएं होंगी। उस समय खेतों में कोई उपज नहीं थी, अतएव ये पक्षी भृंगों तथा अन्य कीटों पर निर्भर कर रहे होंगे। अफगन ये जानते हैं कि (गुलाबी मैना) 'साच' कृषि के लिए लाभदायक है अतः वे उन्हें उत्पीड़ित नहीं करते यद्यपि इस्लाम उन्हें इसे खाने की अनुमति देता है। 24 अप्रैल का एक और दलदली पत्रक श्येनों[4] का विशाल प्रवास बामियां में 'आंखों' से देखने को मिला। इन पक्षियों ने, सभी वयस्क नर, अचानक संध्या छह बजे, दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी दिशाओं से आना प्रारंभ कर दिया, इससे ऐसा लगता है कि वे भारतीय उपमहाद्वीप से आ रहे थे। वे स्पष्टतया क्लांत हो चुके थे क्योंकि वे सीधे एक जुते खेत में उतरे और सारी रात उन्होंने वहीं बिताई। हम लोगों ने लगभग 66 पक्षियों को गिना तथा और आते जा रहे थे किंतु बढ़ते अंधेरे के कारण उन्हें देख पाना मुश्किल हो रहा था। भारत के किसी भी विशाल दलदल में, सारे दिन खोजने के बाद, एक या दो वयस्क नरों से ज्यादा दलदली पत्रक श्येन बिरले ही दिखते हैं। इसलिए इतनी भारी संख्या में, सारे के सारे वयस्क नर, एकसाथ उत्तर दिशा की ओर अपने प्रजनन क्षेत्रों को जाते हुए दलदली पत्रक श्येनों का दर्शन सचमुच ही स्मरणीय तथा रोमांचकारी था। ये श्येन सुबह बहुत जल्दी चल पड़े होंगे क्योंकि उषाकाल के बाद उस घाटी में उनका कोई अता पता नहीं था। दूसरे दिन, उसी समय दस वयस्क नर उसी दिशा से आए, उसी जुते खेत में रात का बसेरा किया और अगली सुबह पौ फटने से पहले चल दिए।

अफगानिस्तान के दो और संस्मरणों से यह लेख पूरा हो जाएगा। हमेशा की तरह, मेहमानदार द्वारा आयोजित एक स्थानीय व्यक्ति के साथ मैं संग्रहण के लिए गया। पास ही की खड़ी चट्टान पर मैंने एक घोंसला देखा, वह 'चट्टानी नटहैच' चिड़िया का था जिसे मैं पहली बार देख रहा था। मैं उस चट्टान पर थोड़ी ऊपर

1. ललपैर श्येन (Redlegged Falcon) (Falco *vespertinus*)
2. छत्रक श्येनक (Lesser kestrel) (Falco *naumanni*)
3. गुलाबी मैना (rosy pastor)
4. पत्रक श्येनों (marsh harriers)(cincus aeruginosus)

चढ़ा जहां से मैं अच्छा फोटो ले सकता था, और कैमरे को मैंने फोकस कर लिया। काफी लंबी प्रतीक्षा तथा धीरज के बाद वह पक्षी आया, किंतु जैसे ही मैं क्लिक करने वाला था कि वह स्थानीय आदमी कैमरे के सामने आ गया और बोला कि यहां फोटो लेना मना है, मैंने गुस्से में उसे अलग ढकेला और फोटो ले लिया। किंतु मुझे उसका व्यवहार समझ में नहीं आया, अतएव जब मैं शिविर पहुंचा तब मैंने वह घटना मेहमानदार को सुनाई। मेहमानदार ने सारी बात सुनी, बिलकुल चुपचाप, बस थोड़ा-सा क्रोधित दिखा। मैंने मेहमानदार को यह उर्दू में सुनाया था, इसलिए फारसी बोलने वाला गाइड मेरी बात को नहीं समझा था। जब मेरी बात पूरी हो गई तब मेहमानदार ने सामान्य ढंग से उससे एक कागज पेंसिल लाने के लिए कहा। बिना कुछ कहे उसने उस पर कुछ लिखा और मोड़कर चौहरा करके उस आदमी को वह कागज देते हुए कहा कि वह उसे पुलिस स्टेशन ले जाए। आधे घंटे में वह आदमी रोते-पीटते आया, तथा मेरे पैरों पर क्षमा मांगते हुए, गिर पड़ा। पहले तो मेरी समझ में नहीं आया कि क्या हो रहा है। किंतु जब मुझे मालूम हुआ कि मेहमानदार ने क्या लिखा था तब सब समझ में आया। लिखा था, 'इस व्यक्ति ने हमारे मेहमान का अपमान किया है। इसे तीन सर्वश्रेष्ठ खुराक दी जाएं।' उस बदमाश ने रोते-रोते, क्षमा मांगते हुए बतलाया कि वह तो दरगाह को अपवित्र होने से बचा रहा था। उसी (पक्षी) की दिशा में कोई 700-800 मीटर दूर एक दरगाह थी जिसे मैंने देखा तक न था।

दूसरी घटना में हाइबक का पूरा बंगला, बहुत अधिक दुर्गंध से भर रहा था। हम लोगों ने सोचा कि मरा हुआ चूहा होगा। हम लोगों ने मरे हुए चूहे को खोजने के लिए सारा घर छान डाला। कालीन के नीचे, अलमारी के पीछे, हर कोना और वहां भी जहां उसकी संभावना नहीं थी। कोई मरा हुआ चूहा नहीं, किंतु सड़ांध भरपूर ! तब मुझे अचानक याद आया कि तीन चार दिन पहले हमारे पास नमूनों की अति हो गई थी तथा मैनहर्ट्जन ने यष्टि, जिस पर अनेक पक्षियों के नमूने लटके थे, पर से एक खोला और अपनी कमीज की जेब में रख लिया था। जब मैंने उसे उस कमीज की जेब की याद दिलाई, उसने मेरे सुझाव का मजाक उड़ाया तथा दुर्गंध स्रोत की खोज जारी रखी। दो दिन के बाद (हम लोग अपनी कमीज रोज नहीं बदलते थे) जब वह उस कमीज के लिए गया और उसे पहना तब छाती पर उसे कुछ गीला-गीला सा लगा। स्पष्ट ही वह पक्षी, 'नीलकल्ला'[1] उनकी जेब में 'पक' रहा था और अब शायद पूर्ण परिपक्व स्थिति को प्राप्त हो गया था। मैनहर्ट्जन, शरमाते हुए मेरे पास आए और बोले, 'सालिम, आप ठीक कह रहे थे। ये देखो!' और उन्होंने एक छोटा सा दुर्गंध का मृत लौंढ़ा अपनी जेब से निकाला। वे सारे समय चौकीदार, तथा बाकी सभी पर भुनभुनाते रहे तथा सबकी भर्त्सना करते रहे और सारे शिविर को उन्होंने सिर पर उठा रखा था !

1. नीलकल्ला (Bluethroat)

12

कैलाश मानसरोवर की पक्षिवैज्ञानिकीय तीर्थयात्रा : 1945

जब मैं देहरादून में था तब मुझे पश्चिमी हिमालय में मुख्यतया कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल तथा कुमायूं में पर्वतीय ट्रेकिंग के विपुल सुअवसर मिले। अक्सर मुझे ऊर्जस्वी पर्वतारोही, जिन्हें कॉर्नबाल तथा स्विस आल्प्स में आरोपण का उल्लेखनीय अनुभव था, आर्थर फुट का प्रोत्साही साथ तथा प्रशिक्षण पर्वतीय ट्रेकिंग के दौरान में मिल जाता था। वे दून-स्कूल के (मानो) संस्थापक हैडमास्टर थे, इसलिए गर्मियों की लंबी छुट्टियों में ही ऐसे सुअवसर मिलते थे। पहाड़ी ऊंचाइयों में मेरी अभिरुचि नहीं थी, अतएव मुझे कभी गंभीर पर्वतारोहण ने आकर्षित नहीं किया। इसलिए हम लोगों के पर्वतीय ट्रैकिंग की ऊंचाई कभी भी दस या बारह हजार फुट से ऊपर नहीं गई। परंतु ट्रैकिंग में हिमालय के पर्यावरण-वन, वनस्पति तथा जीवजंतु विशेषकर पक्षियों से मेरा उपयोगी साक्षात्कार हुआ।

इस पर्वतों में प्राकृतिक ट्रैकिंग का सर्वाधिक उल्लासमय अनुभव कैलाइडोस्कोप की भांति होने वाला निरंतर परिवर्तन है, जो ऊंचाई पर चढ़ते समय रंगबिरंगे फूल बूटों का, तथा जीवों का, जैसे जैसे वे एक जैव-खंड से दूसरे जैव-खंड में पहुंचने पर दिखाई देता है। परिस्थितिकी के विद्यार्थी के लिए ऊंचाई संबंधी तुंगीय खंड या जलवायु खंड बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनमें से प्रत्येक के वनस्पति तथा पक्षी वृंद उस खंड के 'लाक्षणिक' होते हैं; वनस्पति के गुण जानने से पक्षियों का अनुमान किया जा सकता है तथा पक्षियों के गुण जानने से वनस्पति का, अर्थात जलवायु के प्रकार से वनस्पति तथा पक्षियों का पारस्परिक एवं विशिष्ट संबंध होता है। ये परिवर्तन कभी इतने नाटकीय या स्पष्ट होते हैं कि बिना तुंगता मापक संयंत्र की सहायता से, पक्षियों या वनस्पति की जातियों को देखकर उस स्थान की तुंगता का विश्वसनीय अनुमान लगाया जा सकता है। हिमालय में, विशेषकर नेपाल के पूर्व में सिक्किम, भूटान तथा अरुणाचल में, जलवायु बहुत आर्द्र है तथा वहां विभिन्न जलवायु खंड मिलते हैं। वहां पर्वतों के आधार पर से लेकर लगभग भूमध्यरैखिक चोटी के पास ध्रुवीय जलवायु

तक के समस्त जलवायु खंड, स्पष्ट विभाजन के साथ, नीचे से ऊपर चढ़ते हुए क्रमशः मिलते हैं वहां मुझे वनस्पति या पक्षिजातियों को देखकर ऊंचाई का अनुमान लगाने में सचमुच बड़ा आनंद आता है। दक्षिण हिमालय की अनुभूतियों से प्रेरणा पाकर यह जानने की उत्कंठा तीव्र हुई कि इस भव्य प्राचीर के उत्तर में क्या है। तिब्बत के लिए पक्षिवैज्ञानिकीय अभियान की योजना जो 1939 में बनाई थी वह पहले तो हिटलर की तेज तलवार ने काट दी और बाद में स्वयं द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में आ गई, जो विश्वयुद्ध महीनों और वर्षों तक घिसटता हुआ कभी खतम होने पर नजर नहीं आ रहा था। साथ ही विश्वयुद्ध के कारण सामग्रियों की आपूर्ति तथा परिवहन के साधन मिलने में कठिनाइयां हो रही थीं। तब भी मैंने निश्चय किया कि यह अभियान 'या तो अभी, नहीं तो कभी नहीं'। प्रशासन से जुड़े कुछ मित्रों ने भरसक सहायता करने का वचन दिया। मैंने पश्चिमी तिब्बत के लिए छोटे अभियान की तैयारी शुरू कर दी। मैंने कुछ रिपोर्ट देख रखी थीं कि वहां पर दुपट्टी हंस[1] तथा कलग्रीवी क्रौंच[2] तथा अन्य उत्तेजक पक्षी प्रजनन करते हैं तथा जिनमें से अधिकांश हमें भारत में केवल शीतऋतु में देखने को मिलते हैं इसलिए उनकी नीड़न क्रियाएं तथा तत्संबंधी पारिस्थितिकी से हम पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हैं। इनमें से कुछ का अध्ययन करने के लिए मैं विशेषरूप से उत्कंठित था। सचमुच में, जैसा कि मैंने बाद में वर्णन किया, यह अभियान कैलाश मानसरोवर की पक्षिवैज्ञानिकीय तीर्थयात्रा था।

अल्मोड़ा से सामान्य तीर्थयात्रा का रास्ता चुना गया था केवल इसलिए नहीं कि यह सर्वाधिक सुगम है, वरन इसलिए भी कि केवल 'लिपुलेख' के 16,750 फुट ऊंचे इस 'पास' में, मई माह में बर्फ नहीं होती। नियमित तीर्थयात्राएं जून के अंत में या जुलाई के प्रारंभ में शुरू होती है। लौटते समय भी हमें लिपुलेख से ही लौटना पड़ा क्योंकि जुलाई के पहले सप्ताह में भी अन्य 'पास' बर्फ से ढके थे। तीर्थयात्रा-पथ कुमायूं के अल्मोड़ा (5,200 फुट) से प्रारंभ होकर मंत्रमुग्ध करने वाले वन प्रदेशों के जैव-खंडों की शृंखला के बीच झूलते हुए, कभी-कभी खड़ी चढ़ाई या ढलानों से होते हुए, हिमाच्छादित शिखर को सदा ही दृष्टि में रखते हुए चलता है। भारतीय सीमा से अंतिम गांव गरबयांग तक पहुंचने में औसतन 13 या 14 कि.मी. अंतराल के पंद्रह दिनों में पंद्रह पड़ाव लगे। इस ढीले अभियान दल में पांच सदस्य होने थे : सुच्चा सिंह खेड़ा, (आई.सी.एस) जो 1965 में मंत्रिमंडल सचिव पद से सेवा निवृत्त हुए; मुंबई से सइफ तैयबजी, एक वकील संभ्राता; सिंगापुर से 'लोके वान थो'। (जापानी अधिकृत 'शोनन' से आए शरणार्थी) मेरे पक्षिवैज्ञानिक साथी तथा निष्णात पक्षिफोटोग्राफर ('पक्षिकिरणकार'); यू.एस.ए. से उन्हीं दिनों लौटे खगोल वैज्ञानिक तथा पंछिनिहारक प्रीतम सेन और मैं। किसी न

1. दुपट्टी हंस (barheaded geese)
2. कलग्रीवी क्रौंच (Blacknecked cranes)

किसी कारण से पहले तीन यात्रियों को पीछे हटना पड़ा—सइफ, स्वतः आरोपित शारीरिक उपयुक्तता परीक्षण में असफल होने के कारण; लोके, दस्त लगने के कारण; तथा खेड़ा भी ऐसे ही किसी कारण से विवश थे। अंततः प्रीतम तथा मैं बचे। चारों ओर पर्वतीय शिखरों में विशाल उत्सवाग्नि द्वारा हिटलर की हार की घोषणा के एक दिन बाद, और बाजे गाजे तथा उत्प्रेरित जन-उत्सव के हो हल्ले के बीच हमने 14 मई, 1945 को अल्मोड़ा से प्रयाण किया। प्रीतम तथा मेरे अतिरिक्त हमारे दल में सात डोठियल और एक कुमायूंनी कुली था। सामान में तंबू, व्यक्तिगत सामान तथा भोजन में मुख्यतः भुने चनों का बहुउद्देश्य आटा—'त्साम्पा'। इन सबके मुखिया के रूप में तथा सारी देखभाल की जिम्मेदारी के लिए हम लोगों ने अल्मोड़ा से एक युवा कुमायूंनी 'खेमसिंह' को किराए पर लिया था। जो इकलौता गैर-डोठियल कुली था वह वास्तव में खेमसिंह का आज्ञाकारी चेला था जो उतना ही मुखिया बनने का अधिकारी था जितना कि भेड़ों के झुंड के बीच इकलौता बकरा। हिमालय में ट्रैकिंग हेतु आज के खर्च को देखते हुए, मेरी डायरी में लिखे उन दिनों के खर्चे को याद करना बहुत रुचिकर लगता है—एक मन (40 कि.ग्रा.) सामान ढोने वाले कुली की मजदूरी तीन रुपये प्रतिदिन (चलने वाले दिन) तथा दो रुपये प्रतिदिन (न चलने वाले दिन); उसका अपना खाना तथा ढोना, उसी के 'सिर पर'। भारतीय सीमांत गांव गरबयांग की 237 कि.मी. की दूरी तय करने में हमें पंद्रह दिन लगे थे, मजदूरी में अक्सर एक हजार फुट से भी अधिक प्रतिदिन की, भीषण चढ़ाई तथा उतराई होती थी। मैं उन दिनों युवा और मूर्ख भी था इसलिए अपने रकसैक में बेकार चीजों को भरने में गर्व महसूस करता था, जो चढ़ाई के समय अनावश्यक बोझ बढ़ा देता था।

मुझे एक घटना स्पष्ट तौर पर याद है, जो एक विशेषरूप से कठिन यात्रा खंड में घटी थी। उस दिन मौसम में भी बहुत उमस थी। उस दिन का पथ तेजी से कई सैकड़ों फुट ऊपर चढ़ना, फिर कई सैकड़ों फुट नीचे उतरना, और फिर वही चढ़ाव उतार बारबार दुहरा रहा था। और लगने लगा था कि इस लंबे दांतों वाले आरे की लंबाई अनंत है। इस आरे के एक कमर तोड़ दांत के नीचे, अगले वाले दांत पर चढ़ने के पहले सांस लेने के लिए एक चट्टान पर बैठ गया। मैंने अनावश्यक रूप से भारी रकसैक को उतारा तथा चाकू से एक सेब काटा। अनेकानेक वर्षों से वह निकिल हत्थे वाला छोटा चाकू क्षेत्र में मेरा साथी था, अतएव उसके मेरे संबंधों में भावुकता कुछ अधिक ही आ गई थी। थोड़े विश्राम पश्चात प्रयाण पुनः शुरू किया गया। कोई 400-500 मीटर की समतल-सी जमीन के बाद एक विकल कर देने वाली तीव्र चढ़ाई थी। उस भीषण चढ़ाई को चढ़ने के बाद, एक सुंदर दृश्य की रमणीयता का आनंद लेने के बहाने चोटी पर सांस लेने के लिए रुके। तब मैंने यूं ही अपनी जेब में हाथ डाला तब पता लगा कि चाकू नदारद

था। सारा रकसैक छान मारा किंतु चाकू नहीं मिला, तब मैंने सोचा कि वह रास्ते में कहीं गिर गया होगा। मुझे अपने मित्र के खो जाने का दुख तो हुआ किंतु इतना उत्साह नहीं था कि वापिस जाकर उसे खोजूं। थोड़े-से आराम के बाद तथा प्रयाण पुनः आरंभ करने के पूर्व मैंने सेब खाने वाले स्थान पर, यूं ही, अपनी दूरबीन को केंद्रित किया, तो लगभग 800 मीटर दूर तथा कई सैकड़ों फुट नीचे और जनाब देखिए, उस सुबह की ताजी धूप में वह पूरी तेजी से चमक रहा था और मुझे 'सूर्य चित्रीय' संकेत विधि द्वारा एस.ओ.एस. का संकेत दे रहा था। तब मैंने उसे कितना कोसा ! किंतु जानबूझकर उसका परित्याग करने के लिए मेरा हृदय नहीं माना, यद्यपि इसका अर्थ था वहां तक पहुंचने की अत्यंत थका देने वाली ऊबाउ प्रक्रिया, और साथ ही उस दिन के कार्यक्रम में एक घंटे का विलंब किंतु चाकू का उद्धार किया गया। वह मेरे साथ, इसके बाद तीस वर्ष और रहा, किंतु उसके भाग्य में चोरी जाना ही लिखा था और अंत में हम दोनों इसी तरह अलग हुए।

हमारे पुराने पारिवारिक मित्र, देहरादून के समृद्ध भूस्वामी एवं व्यवसायी लाला अग्रसेन के पुत्र थे, प्रीतम। प्रीतम को मैं तब से जानता था जब वह विद्यालय तथा कालेज का मेधावी तथा शिष्ट छात्र था, और ऊंची शिक्षा के लिए अमेरिका जाने से पूर्व देहरादून तथा मसूरी की पहाड़ियों में मेरे साथ पंछी-निहारन में उसने जो योग्यता प्राप्त कर ली थी उससे मैं प्रभावित हुआ था। इसलिए जब उसने मेरे साथ तिब्बत विहार चलने की उत्सुकता व्यक्त की तब मैंने उसे, उपयोगी साथी बनने की संभावना को देखते हुए, सहर्ष स्वीकार कर लिया था। प्रारंभ के कुछ दिनों सब कुछ आनंदमय चला, किंतु बाद में मैंने उसके व्यवहार में कुछ विचित्रता देखी, तथा उसकी आसपास की दृश्यावलियों को देखने की रुचि को कम होते देखा, वही जो उसे पहले उल्लास से भर देती थीं। थोड़े ही समय में, ऐसा लगा कि उसे कोई खुशी नहीं मिल रही, कुलियों के पीछे, न बाएं और न दाएं देखते हुए, वह यंत्रवत चलता था। भारी पांवों से चलते हुए वह प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य संग्रह को खोलकर उसमें डूबा-सा रहता था। पहले मैंने सोचा कि संभवतया यह तुंगता का दुष्प्रभाव हो, किंतु उस समय हम लोग कोई सात-आठ हजार फुट की ऊंचाइयों पर ही थे और यह ऊंचाई इतनी नहीं थी कि चिंता करनी पड़े। किंतु स्थिति बाद में बदतर होती गई, और जब तक हम 15,000 फुट ऊंचाई के 'बर्खा' समतल पर पहुंचे, स्थिति मेरे लिए दुखद हो गई थी। प्रीतम अवसाद में डूब रहा था। यहां तक कि तंबू में, हम जब काम करने की मेज (तथा भोजन टेबिल-बक्सों) के आमने सामने पालथी मारकर बैठते तब भी वह एक शब्द भी नहीं बोलता था। जब मैं पक्षियों का चर्मसंस्कार करता, वह अपने नोट्स लिखता या वनस्पति के किसी नमूने को दबाकर रखता, और सीधा अपने लिए भोजन का आदेश देता, जल्दी-जल्दी निगलता और कोने में दुबक जाता या महादेवी की पुस्तक

के साथ बाहर चला जाता। कुछ दिन और यह पीड़ा सहने के बाद मुझे प्रीतम को यह सलाह देने के लिए बाध्य होना पड़ा कि वह चूंकि इस यात्रा से खुश नहीं था, साथ ही वह मेरा मजा भी किरकिरा कर रहा था, इसलिए यह बेहतर होगा कि वह कुछ याकों को लेकर अल्मोड़ा वापस लौट जाए एवं मुझे अपना अध्ययन तथा नियत कार्य पूरा करने दे। उसने इस सुझाव का इतनी तीव्रता से विरोध किया कि कैलाश पर्वत की परिक्रमा करने के बाद, मैंने यात्राक्रम को काट-छांटकर वापस लौटने का निश्चय किया। 'अंत धूरा', जयन्तीला आदि सभी दर्रे उस समय हिमाच्छादित थे इसलिए पूर्व योजना के अनुसार उनमें से किसी एक से आने के कार्यक्रम को बदलते हुए, उस पथ तथा दर्रे से मैं वापस लौटा। सौभाग्य से इन पांच सप्ताहों में काफी बर्फ पिघल गई थी। गर्मी के आगमन की खुशी ने दृश्यावलियों को जैसे जादू से बदल दिया था और मुझे लगा कि मैं नए स्थानों तथा पथ से लौट रहा था। मैंने स्वयं अपने अनुभवों तथा मित्र पर्वतारोहियों के अनुभवों से सीखा था कि ऊंची तुंगता पर सही साथियों का होना बहुत आवश्यक है क्योंकि विभिन्न स्वभावों को एक गठरी में बांधकर दिन रात, कई सप्ताहों तक, रहना पड़ता है। ऐसे में कोई हत्या की भी कल्पना करे तो आश्चर्य नहीं। किंतु कौन कितनी तुंगता पर किस तरह प्रभावित होगा यह बतलाने के लिए किसी ज्योतिषी की आवश्यकता पड़ेगी, और इसलिए समुद्रतल पर तुंगता के लिए साथी चुनना कठिन ही है।

लौटते समय, 'लिपु लेख पास' तथा भारतीय सीमा के लगभग मध्य भाग में मुझे चार गुजराती लोगों का एक दल मिला—एक पुरुष, तीन स्त्रियां—जो कैलाश मानसरोवर अपना मोक्ष पाने के लिए जा रहा था; उनके साथ जो डोठियल थे, लग रहा था जैसे वे यहां वहां से इकट्ठे किए गए हों, उन पर बिस्तर, टिफिन कैरियर, लोटा, चिवड़ा, और गाठिया से भरे टीन के कनस्तर तथा इसी तरह का खाने-पीने का सामान लदा था। यह जुलाई का प्रारंभ था किंतु गर्मी ठीक से शुरू नहीं हो पाई थी इसलिए बदली वाले दिन में भी जमा देने वाली ठंड हो सकती थी, तिस पर हड्डियों तक चुभने वाली तेज हवा तो दिनरात चलती थी। गुजराती पुरुष दिखता ही था कि बंबई की दलाल स्ट्रीट से व्यवसाय करके लौट रहा था। उसने सफेद-सी सूती कमीज पहनी थी जिस पर आधी बांह का गरम स्वेटर था, सूती धोती भी एक तरफ ऊपर तक खिंची थी, नायलान के मोजे जरूर पिंडली तक निलंबकर्ताओं (सस्पैंडर्स) द्वारा खिंचे हुए थे, तथा उसने पतले तल्ले वाले नोकदार पीले शेयरबाजारी जूते पहने हुए थे। सभी महिलाओं ने, उनमें उसकी एक श्रांत पत्नी भी थी, रोज की सूती साड़ियां ही पहने हुए थीं, और पूरी बांह का गरम स्वेटर भी। उस स्वेटर के नीचे भी उन्होंने कुछ पहना था या नहीं यह मैं नहीं बतला सकता। तथा उनके पैरों में सूती मोजे और पतली चप्पलें थीं (जो खुली थीं)। जब हमारे दलों ने एक-दूसरे

को पार किया, तब वे महिलाएं लगभग रोने चिल्लाने और गुस्से में भरकर शिकायत करने लगीं कि उन्हें किसी ने नहीं बतलाया कि इतनी भीषण ठंड पड़ेगी तथा यात्रा इतनी अधिक दुर्गम होगी। उन्होंने मुझे बड़ा निर्मम आदमी समझा होगा क्योंकि उनसे सहानुभूति जतलाने के स्थान पर मैंने उस गुजराती पुरुष को ही आड़े हाथों लिया कि बंबई से महिलाओं के साथ इतनी अधिक जोखिम भरी तीर्थयात्रा पर निकलने के पहले क्यों उसने ठीक से जानकारी प्राप्त नहीं की तथा पूरी तैयारी भी क्यों नहीं की। उस स्थिति में मैं उन्हें यही उचित सलाह दे सकता था कि बेहतर होगा, वे वापस लौट जाएं क्योंकि बिना गरम बिस्तरों, कपड़ों, जूतों के इस जमा देने वाली यात्रा में वे निश्चित ही नहीं बचेंगी। मुझे मालूम नहीं कि इसके बाद उनका क्या हुआ। उन गरीब महिलाओं की हालत सचमुच दयनीय थी, किंतु एक अत्यंत चतुर शेयर-दलाल गुजराती कैसे इतना अज्ञानी तथा भोला हो सकता है कि सबको इतने गहरे संकट में डाल दे—यह मेरी समझ में नहीं आया।

तिब्बत-यात्रा मेरी उन विरल यात्राओं में थी जिनमें मैंने पक्षियों के अलग क्षेत्र-नोट्स के अतिरिक्त वृत्तात्मक डायरी भी रखी। अन्य अधिकांश अभियानों में मैं, अपने से अधिक सूक्ष्मदर्शी तथा परिश्रमी साथियों, यथा लोके वान थो, मैनहर्टजन तथा डिल्लन रिप्ली पर अभियान की घटनाओं की जानकारी के लिए निर्भर करता था और अभी भी करता हूं। तिब्बत-यात्रा मेरे रुचिकर, रोमांचकारी और अभिनव अनुभवों से भरी पड़ी है इतनी कि इस पुस्तक में नहीं लिखी जा सकती। किंतु थोड़ी-सी, असंबद्ध, यादृच्छिक रूप से चुनी गई चित्र-विचित्र छवियां, उस स्मरणीय साहसिकता के थोड़े-से स्वाद का संप्रेषण करने में सहायता करेंगी। डायरी में उस समय लिखे गए 'नोट्स' में थोड़े बहुत भावानुवादों को संप्रेषणीयता बढ़ाने की दृष्टि से यहां वहां जोड़ा गया है।

25.5.45 खेला से सोसा (गरबयांग के रास्ते में) रात्रि विश्राम के लिए, दूसरे दिन 8,300 फुट की ऊंचाई पर 1936 में स्थापित श्री नारायण स्वामी के सत्कारशील आश्रम में प्रेमपूर्वक स्वागत किया, जबकि इमारत अभी बन ही रही थी, फूस से छाए गए ओसारे में ही आवास था, जो पवित्र साधुओं तथा कम पवित्र कैलाश यात्रियों के आराम के लिए धर्मशाला का भी कार्य करता। नारायण स्वामी लंबे बाल तथा काली दाढ़ी और लगभग 35-40 वर्ष की उम्र वाले मनोहर युवा अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं। 'यैग्स' जैसे उच्चारित शब्दों ने बतलाया कि वे मलयाली हैं, तथा 'कंटिन्युअसली' शब्द की स्वरात्मक लय ने भी वही इंगित किया। ऐसा लगता है कि वे रेहाना (तैयबजी) को अच्छे से जानते हैं, तथा वित्त संग्रह के लिए शीतकाल में अक्सर बड़ौदा और अहमदाबाद आदि जाते हैं। इस समय उनके पास केवल दो स्थायी

साथी हैं, एक पवित्र साधु काली घुंघराली लटों तथा दाढ़ी, मटमैले से चोगे में, लगता है कि वे सुधरे हुए डाकू हैं; तथा एक अन्य साधु पड़ोस के गांव से अवकाश-प्राप्त शिक्षक जो सांसारिक गतिविधियों, यथा इमारत का निर्माण कार्य, भोजन सामग्री लाना तथा कार्यालय के कर्मचारियों और मजदूरों के वेतन का वितरण, आदि का प्रबंध करते हैं। स्वामीजी का पूर्व जीवन तथा भविष्य की योजनाएं निकालने में मैं असफल रहा। स्वास्थ्य लाभ (सेनेटोरियम) के लिए—भव्य पर्वत श्रेणियों से परिवेष्टित तथा पूर्व की ओर नाम्पा हिमनद—उत्तम स्थान; किंतु विशेषरूप से न तो कठोर तपस्वी-सा और न श्रद्धास्पद। स्वामीजी न तो बहुत विद्वान और न शास्त्रज्ञ लगते हैं—संभवतः वे इसे सफलतापूर्वक छिपाते हैं। हमारे संवाद का अधिकांश विषय कैलाश यात्रा (उनका कहना है कि उन्होंने तेरह बार की है) तथा भोजन था। हम लोगों के लिए यह खोज थी कि उनका भोजन बहुत ही सादा था—परंतु सर्वोत्तम घी, दूध, शहद तथा सभी कुछ सर्वोत्तम। अतएव आश्रम, कम से कम, विपुल विश्राम तथा शरीर के लिए स्वास्थ्यप्रद भोजन प्रदान करता है। हम लोगों को अध्यात्मिक भोजन का कोई चिह्न नहीं दिखा, सिवाय एक कक्षीय कुटिया की अटारी के जिसमें वे ध्यान करते हैं। आश्रम के उपवन का 'पूर्व डाकू' द्वारा सुचारु रूप से प्रबंध होता है, वे 'पोचा-बीजों' का उपयोग करते हैं तथा उसके कैटैलॉग का भी क्योंकि वे पुष्पों के नाम धड़ल्ले से ऐसे बोलते हैं जैसे 'क्यू की सूची' (Index kewensis) से पढ़े हों। मनोहर गुलाब, मनासुख (पैंजी), अफीम (पॉपी), परिष्कृत गैंदे (कैलैंडुला), 'स्नैपड्रैगन' तथा 'पिंक्स' इस समय खिले हुए थे। बर्फ अभी हटी ही थी, एतएव अगले तीन सप्ताहों में ही उपवन में सभी कुछ मनोहारी हो जाएगा। स्वामी जी के कथनानुसार आश्रम के ऊपर की ओर तेज ढलान वाली चट्टान पर एक सर्प-कुंज (serpent grove) में अठारह इंच मोटा (उन्होंने अपने हाथों से मोटाई दर्शाई थी) सर्प रहता है, जिसके फन पर एक उज्ज्वल दीप्तिमान तारे की तरह चमक वाली मणि है। स्वामीजी ने उसे अंधेरी रातों में, कोई 400 मीटर की दूरी से स्वयं अपनी आंखों से देखा है। एक बार एक स्थानीय व्यक्ति ने उसे देखा था और तब वह भागता हुआ आया और स्वामीजी के पैरों पर गिर पड़ा और 'भय से' मर गया।

3 जून, 1945 गरबयांग अंततः एक सुनहली सुबह, इसलिए एक हट्टेकट्टे स्थानीय डरावने से जैलांग नामक गाइड के साथ पंद्रह कि.मी. दूर नाम्पा हिमनद के लिए प्रस्थान। वास्तव में जैलांग बहुत

विनम्र है। किंतु एक कठोर डाकू का विश्वसनीय तथा सही प्रतिरूप। नाम्पा नेपाल की सीमा में है, किंतु विशेष प्रबंध के तहत इस ऋतु में भेड़ बकरियों को वहां चरने के लिए ले जाने की अनुमति होती है। अभी थोड़ी जल्दी है। इसलिए शाद्वलों पर अभी भी बर्फ का राज्य है किंतु भेड़ बकरियां हैं कि पिघलते हिम के बीच अंकुर में फूट रही हरियाली ढूंढ़ ही लेती हैं। पहाड़ियों के जिन पार्श्व में हिम पिघल गई है उनमें 4 फुट ऊंची झाड़ियां, पत्ते बुरांश[1] की तरह, पुष्प गुलाबी या जामुनी आभा लिए हल्के सुनहले गुच्छों में अजेलिया[2] लदे पड़े हैं। पुष्पों की अन्य जातियां जिनमें जामुनी तारामंडल[3], नवनीत चबक[4] तथा गुच्छों में (?) फूलने वाला जामुनी पुष्प आदि अनेक खंडों को सुशोभित कर रही थीं। पंद्रह दिनों में ही इस सारे स्थान पर मनोरम वर्णों की चादर बिछी होगी। हिमनद तथा हिमशिखरों का उल्लासमय दृश्य।

4.6.45 लिपुलेख को पार करने के लिए अंतिम प्रबंध हेतु ठाकुर नन्दराम से मिला। कल से मौसम साफ तथा उज्ज्वल, अतएव पार करना संभव होगा। तगड़े जैलांग को, जो कल हमें नाम्पा ले गया था अपना गाइड तथा दुभाषिया नियत करने का निर्णय लिया। विश्वसनीय तथा सक्षम व्यक्ति के रूप में उसकी अनुशंसा की गई है। ऐसा लगता है कि कुलियों, तंबुओं तथा याकों का प्रबंध करना गाइड का कार्य है। गरबयांग से हम लोगों ने पंद्रह किलो सत्तू (त्साम्पा) खरीद लिया है, अब लंच में सत्तू ही विभिन्न रूपों में परोसा जाने की योजना बनी है। ग्यारह बजे से लगातार प्रचंड तूफान चल रहा है, बोफोटै पैमाने पर 'छह' का माप। लगभग छह बजे के आसपास विशेषरूप से विध्वंसक तथा चारों तरफ के पर्वतों पर अजीब-सा धुंधला नीला प्रकाश। साढ़े छह बजे पंद्रह सैकंड की अवधि के काफी तेज भूकंप ने हमें डाकबंगले से बाहर निकाला। अनेक भूस्खलन तथा हिमानी (अवालांश) हुए, सब तरफ, तोप की गोलाबारी के समान; पहाड़ियों की खड़ी ढाल की तरफ धूल के मोटे बादल; इनके साथ तेजी से गिरते दुमंजिली इमारत से भी बड़े शैलखंडों तथा पत्थरों की गड़गड़ाहट।

5 जून : नन्दराम के यहां दस बजे सुबह बैठक में कल सुबह टकलाकोट (प्रवेश पश्चात पहला गांव) जाने का कार्यक्रम तय किया :

---

1. बुरांश (rhododendron)
2. अजेलिया (azaleas)
3. जामुनी तारामंडल (purple irises)
4. नवनीत चबक (butter cups)

गाइड, दुभाषिया तथा प्रबंधक जैलांग–3 रु. प्रतिदिन (बिना भोजन के), ज्ञानिमा तक; 50 कि.ग्रा. ले जाने के लिए। 10 रु. प्रति टट्टू टकलाकोट तक, कुल 6 टट्टू; 2 सेवक, 4 रु. प्रति सेवक; रसोई तथा नौकरों के लिए एक तंबू ज्ञानिमा तक का किराया 8 रु.। टकलाकोट से सामान याकों पर जाएगा, जैलांग प्रबंध करेगा। मानसरोवर तथा कैलाश घूमने के बाद, ज्ञानिमा तक पहुंचना–लगभग 15 जुलाई।

6 जून : गरबयांग से कालापानी (12,000 फुट), 7 बजे सुबह तापक्रम 4 से., बिजली तथा गड़गड़ाहट के साथ मूसलाधार वर्षा; ऊंची चट्टानों से, हर गर्जन के साथ पत्थरों तथा बट्टड़ों की बौछार, कई जगहों पर मुश्किल से 1 मीटर चौड़ी पट्टी पर चलना पड़ा, दूसरी तरफ कई सौ फुट खड़ी निचाई पर गर्जन करता हुआ प्रचंड प्रवाह...आप आश्चर्य करते हैं, शायद भय मिश्रित, कि कहीं ये अधिक प्रबल न हो जाएं। अगर हो गए तो बहुत बुरा होगा। परंतु 'भाई मेरे हम कर ही क्या सकते हैं !'

7 जून : शांगचिम। लिपु पास के लिए जैलांग की सलाह है कि हम लोग 2 बजे सुबह प्रयाण करें, यह यात्रा खंड तब तय करना चाहिए जब हिम कठोर हो जो कि तेज धूप में नहीं होगा। और 'पास' तक सूर्योदय पर पहुंचना चाहिए क्योंकि उसके बाद का पथ टट्टू को अंधेरे में तय करना कठिन पड़ता है। आशा करता हूं कि जैलांग सूर्योदय तक टट्टुओं को इकट्ठा कर, लदवा लेगा! लंबे आखिर में लगता है कि हम लोग परलोक के कगार पर पहुंच गए हैं!

8 जून : सुबह एक बजे उठ गए, घोर अंधेरा, एक मोमबत्ती तथा एक टार्च की रोशनी में तंबुओं को उतारा, बांधा तथा टट्टुओं पर लादा। आकाश अनिष्टकारक मेघों से ढका हुआ। 2:30 बजे सुबह प्रयाण। यहां कोई लिपू के पथ नाम की वस्तु नहीं है। जमीन पर आकाश से बरसे पत्थर तथा बट्टड़ की तहों पर तहें पटी पड़ी हैं जिन पर से लुढ़कते, फिसलते तथा ठोकर खाते चलना होता है। गहन अंधकार में चलना दुखदायी है किंतु आश्चर्य है कि टट्टू वाले कैसे ठीक दिशा में चलते हैं ! शांगचिम से 'पास' के शीर्ष तक पहुंचने के लिए 3,250 फुट की चढ़ाई चढ़े। ताजा नरम हिम-पात लदे टट्टुओं के लिए कठिनाई पैदा कर रहा है। कुछ स्थानों पर वे पेट तक बर्फ में धंस गए, तब उन्हें बड़ी कठिनाई से खींचकर निकालना पड़ा, एक आदमी सिर की रस्सी से खींचता तथा दूसरा, वस्तुतः उसकी पूंछ पकड़कर उसे ऊपर उठाता था। अक्सर हिम में पड़ी गहरी खाइयों को फांदना पड़ता, तथा

टट्टुओं, साथ में सामान, को खतरा सिर पर ही होता था। कई बार तो टट्टुओं पर से सामान उतारकर ले जाना पड़ता। गति तो धीमी थी किंतु तीव्र उत्तेजना से भरी थी। टट्टू चालकों के साहस तथा सहज बुद्धि की जितनी भी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम। 'लिपुलेख पास' के शीर्ष तक पहुंचने में 6:15 बज गए थे, तापक्रम 28^0 फा., ताजे भारी हिमपात ने 'पास' से गमनागमन को अत्यंत दुष्कर बना दिया था। उस स्थिति में भेड़-बकरियां गमनागमन के उत्तम साधन लग रहे थे। जब हम लोग अपने टट्टुओं के साथ लुढ़क पुढ़क रहे थे तब हमारे पास से पिटारियों से लदी फदी भेड़-बकरियां दौड़ती हुई तेजी से निकल गईं। इस यात्रा-खंड में मेरी हालत खराब थी, आंशिक रूप से तुंगता के कारण, भेड़-परका-कोट के वजन तथा रकसैक के अतिभार (18+ पाउंड) के कारण, तथा आंशिक रूप से पिछली तथा उससे पिछली रात ठीक से न सो पाने के कारण। हिमपात के ताजे हिम पर चढ़ाई करने में सांस तथा अंगों दोनों पर संकट। 'पास' के पार जाते ही जमीन की प्रकृति अचानक बदल जाती है। भारतीय सीमा में 'काली नदी' के स्रोत तक चढ़ाई करने के बाद, तिब्बत सीमा में 'कर्नाली' के स्रोत से उसके साथ-साथ नीचे उतरते हैं। पहला तिब्बती गांव सिस-लिपु (टकलाकोट) तिब्बत भारत के बीच विनिमय बाजार का बड़ा तथा महत्वपूर्ण स्थल, जो शीत ऋतु में बंद रहता है। यहां याक का प्रबंध करने के लिए पड़ाव है क्योंकि टट्टू अब शांगचिम को लौट जाएंगे। धारचूला के एक व्यापारी मोहनसिंह, जिसकी यहां एक दूकान है, की मदद से खलनायक-सदृश व्यक्ति लाकफा (या लाफा) को प्रबंधक के रूप में लगाया। उसके नमदे के घुटना जूते रंगीन थे, साया की तरह चोगा गंदा था, बीच में पेटी बांधी थी, तैलसिक्त लंबे बालों की गुंथी हुई चोटी तथा कानों में मुद्रिकाएं। उसके चार याक किराए पर लिए, प्रत्येक याक 80 कि.ग्रा. ढोने वाला ज्ञानिमा तक का तीस दिन का किराया 40 रु., तथा लाकफा (या लाफा) का वेतन 30 रु. प्रति माह। उसके कार्य का एक हिस्सा था कि वह हमारे लिए ईंधन, लकड़ी या याक के सूखे गोबर का प्रबंध करे।...टकलाकोट के ऊपर, सामने की पहाड़ी के शीर्ष पर गोम्पा या मठ उसके अध्यक्ष लामा, जिन्हें राजा कहते हैं, ने नमकीन मक्खन-चाय तथा मीठे चने से हमारा स्वागत किया, चाय बुरी नहीं थी। राजा कठोर संन्यासी नहीं दिखते : कोमल शरीर, विभिन्न व्यंजन उनके पास ही रखे हुए थे और वे अच्छे खाए-पिए दिख रहे थे, युवा ब्रह्मचारी उनकी सेवा में तत्पर थे। सामने चांदी

के तिब्बती कपों में चाय थी तथा और चाय कोने में केतली में रखी थी। न तो शास्त्रज्ञ और न तपस्वी के रूप में वे मुझे प्रभावित करते हैं, किंतु वे दोनों हो सकते हैं, या उनसे भी अधिक ! गोम्पा में अजीब-सी उल्टी पुल्टी वस्तुओं का संग्रह था जिसमें वीभत्स पद्धति से भरे गए जानवर थे जिन पर धूल की परतें चढ़ी थीं, कुछ को यहां वहां, कीड़ों ने खाया हुआ था तथा वे धुएं की कालिख से पुते थे। पास के कमरे में इसी तरह के भालू, तेंदुए, जंगली याक; तथा कृष्ण कुरंग एवं श्यामबर्क हिरण के सींग आदि लटके हुए थे। इसमें विभिन्न सुनहली तथा लाख मंडित विशिष्ट वस्तुएं भी सम्मिलित थीं। क्षमा करें। मैं इस तरह के धर्म के नाम पर चलने वाली अनूठी बुतपरस्ती से मैं बहुत कम प्रभावित हूं, वरन दुखी हूं; इस अंधविश्वास से भी जिसे मानव ने परलोक सुधारने के नाम पर (क्यों ?) बनाया है। (गोम्पा के आसपास लोग चाहे जहां पाखाना करते हैं) संभवतया इन सब प्रार्थना चक्रों के प्रचंड घुमाने (चाहे आप उन्हें बाल बैयरिंग पर बना लें।) की अपेक्षा थोड़ी-सी स्वयं की शुचिता तथा थोड़ी आसपास की, अधिक भला करेगी।

10.6.45... पहले तो एक टूटे फूटे लकड़ी के पुल को पार करने के लिए तीन चुलबुले याकों ने एकदम मनाही कर दी—पीछे से पिटाई करने पर तथा आगे से खींचने के बाद भी। फिर वे जान छोड़कर भाग खड़े हुए और कुछ सामान भी फेंक दिया। दो स्थलों पर जानवरों पर से सामान उतारना पड़ा, आदमी उसे पार ले गए तथा दूसरी ओर पहुंचकर दोबारा जानवरों पर उसे लादा। याक तो बर्फीली धारा में कूदे और उसे तैरकर पार गए...मुझे याक की मंथर गति अच्छी लगती है, यह मेरे लिए एकदम उपयुक्त है : मुझे आराम से, अवलोकन तथा फोटोग्राफी के लिए यथेष्ट समय देती है।...एक आदमी कटी भेड़ टट्टू पर ले जा रहा था, उससे एक रुपया में दो पैर खरीदे; दोनों पक्षों के लिए लाभदायक। मुझे बतलाया गया कि पिछले वर्ष पूरी भेड़ ढाई रुपया में आती थी ! 'इस प्रयाण के लिए क्या पहनकर चला जाए ?', एक बड़ी समस्या है। सूरज जलाता है, परंतु तनिक से बादलों के आने पर मौसम दूसरे ही पल बर्फ की भांति जमा देता है।

सैकांग 11.6.45...तीन बजे (दोपहर) से हवा तूफान में बदल गई है। जिस चीज ने तिब्बत को ठीक ठीक बदनामी दी है, उसके सच्चे रूप का यह हमारा प्रथम साक्षात्कार है। पिछले साढ़े तीन घंटों से हमारे छोटे-से तंबू पर जो तूफानी प्रहार, लहरों की तरह लगातार पड़ रहे हैं उनसे डर है कि यह अब उड़ा और तब उड़ा। इस तरह

के संकट के लिए, सौभाग्य से हमारे पास दो लोगों के लिए घोंसलानुमा लघु तंबू भी है, परंतु हम आशा कर रहे हैं कि उसकी आवश्यकता न पड़े : वह सेहत के लिए बहुत खराब होगा ! रात्रि में 30° फा., कैनवस की पानी की बोतलें जम गई हैं; और लगभग पैर भी! प्रत्येक सुबह अदम्य जैलांग ने देर तक जोर-जोर से प्रार्थना करना प्रारंभ कर दिया है, भयभीत करने वाली तेजी के साथ भटकटैया-सी झाड़ियां पक्षियों के लिए स्वर्ग हैं, पक्षिपालकों के लिए भी। इस स्थान पर क्षेत्रकार्य में सहर्ष एक सप्ताह लगाता, परंतु स्पष्ट तथा 'अच्छी-अच्छी' चीजें आगे प्रतीक्षा कर रही हैं, इसलिए चले चलो।...मुझे 'वान थो' की बहुत याद आती है! उसकी ऊर्जा और उत्साह के साथ हम लोग 'पक्षि फ़ोटोग्राफी' से सभी को आश्चर्यचकित कर देते।

13.6.45 सैकांग से नयेजे : गुर्ला पास (16,500 फुट) के शीर्ष पर—समतल के पुंज हैं जिन्हें धर्मभीरु तथा प्रेमभीरु लोग रखते हैं। इनमें से मुख्यपुंज पर हमेशा की तरह एक स्तंभ है जिससे हर संभव प्रकार की छीलन छांटन, कपड़ों के टुकड़े, गंदे ऊन के गुच्छे, तथा याक के सींग एवं कपाल आदि लटकते रहते हैं। स्पष्ट तथा प्रेमभीरु लाफा, सहसा प्रचंड विजयात्मक मंत्र गाने लगा, पुंज पर चढ़ा और कूड़े करकट में अपना योगदान दिया। जैलांग यद्यपि हिंदू है तब भी भूत प्रेतों से तो डरता ही है। वह भी धार्मिक घुरघुराहट तथा गान की शृंखला में फूट पड़ा, जिन्हें, मैं आशा करता हूं, भूत प्रेत समझ गए होंगे। खेमसिंह ने हमें चेतावनी दी कि यदि हम इस लोक में तथा परलोक में अपना भला चाहते हैं, तब पास के ऊपर से सबसे पहले 'रैटशाइड' दाईं ओर अर्थात मानवरोवर की तरफ देखना होगा, न कि 'लैप' बाईं ओर अर्थात राखस ताल की तरफ। ऐसा न करना संकटों का आह्वान करना होता है....दोनों झीलों के चमत्कारिक तथा अविश्वसनीय सुंदर दृश्य, साथ में पीछे कैलाश का शिखर ऊंचा माथा उठाए। हिम धवल से जेड एवं पन्नई हरित से लेकर प्रगाढ़तम नील एवं जांबुकी कृष्ण रंगों से, दिन के समय तथा आकाश की मनस्थिति के अनुसार कल्लोल करतीं अनोखी कमलाभ राखस तथा मानसरोवर झीलें : रहेगा याद ! मानसरोवर की ऊंचाई 14,950 फुट, परिधि 87 कि.मी.; स्वामी प्रणवानंद के अनुसार झील की अधिकतम गहराई 300 फुट। चारों दिशाओं में पर्वत जिनके शिखर हिमाच्छादित (इस समय)।

मानसरोवर के दक्षिणी तट पर स्थित थुगोल्हो मठ में पहली बार

स्वामी प्रणवानंद से अचानक मिला था। वे तर्कशील विज्ञान-संगत साधु पुरुष हैं जिन्हें उस क्षेत्र की खोजबीन का लंबा अनुभव है। हम दोनों एक-दूसरे में शीघ्र ही घुलमिल गए। हम दोनों के बीच, विशुद्ध भौतिक तल पर लंबा एवं रुचिकर संवाद, ऐसी भाषा में जिसे मैं समझ सकता था, हुआ। तत्पश्चात उन्होंने दो ज्ञानपूरित पुस्तकें लिखीं—'कैलाश-मानसरोवर' (स्वामी कैवल्यानंद, 1949), तथा 'तिब्बत में गवेषणा' (कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1950)। इन पुस्तकों के लिए मैंने उन्हें फोटो तथा पक्षिवैज्ञानिकीय नोट्स दिए जिन्हें मैंने इसी 'तीर्थ यात्रा' में बनाया था। इसके 31 वर्ष बाद मैं उनसे फिर अचानक मिला, परंतु इस समय नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन वाले नितांत भिन्न परिवेश में, जब हम दोनों भारत के राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद से पुरस्कार ग्रहण कर रहे थे, वे पद्‌मभूषण तथा मैं उसका बड़ा भाई।

मुझे लाफा अधिकाधिक अच्छा लगता है। वह प्रसन्न मुख एवं आज्ञाकारी है किंतु जैलांग के समान देर तक प्रबलघोष स्वरों में प्रार्थना करता है और वह भी अनावश्यक रूप से बहुत जल्दी—ब्रह्म मुहूर्त से भी बहुत पहले प्रारंभ कर देता है। और जब भार से लदे याकों को हांकता चलता है तब वह लगातार आर्त्तनाद में मंत्रोच्चार-सा करता चलता है, ऐसा मेरा मानना है, किंतु जिस कार्य को वह करता चलता है उसके आधार पर वह नाद नितांत उल्टा हो सकता है! तंबू के खुले दरवाजे से, पीठ पर लेटे-लेटे, सिर तकिए पर रखे-रखे अनेक कलकंडी गेरुइ चकवा[1] तथा आठ युगल दुपट्टी सितसिर हंस[2] को केवल 50 मीटर दूर निश्चिंत कोमल दूब खाते हुए देखा। कितना आह्लादपूर्ण दृश्य, अनंत दाल-चावल के स्थान पर 0.22 प्राप्त तथा भुने हंस की कृपा वाला!

17.6.45 बर्खा (या पर्खा) : कैलाश श्रेणियों की तलहटी के साथ समतल मैदान। बटैयों से पटा पड़ा, जिसमें कहीं-कहीं कृश घास दिख जाती है, मीलों मील विस्तृत समतल भूमि। बताया जाता है कि यह एक माह में ही हरे-भरे चरागाह में बदल जाएगा। सचमुच यह विश्व का छप्पर है, और तैमूरलंग तथा अन्य पुरातन योद्धाओं के हृदय को आनंदित कर देता है। प्राचीनकाल के अनेक युद्ध यहां बिना एक-दूसरे के आड़े आए, लड़े जा सकते थे...

1. कलकंडी गेरुइ चकवा (Brahminy ducks)
2. दुपट्टी सितसिर हंस (Barheaded geese)

जब मैं एक 'गुदारपुच्छ गोधिका'[1] का पीछा कर रहा था, तब बौद्धों की ही जाति के जंतु लाफा ने मुझे झिड़का कि उनके विश्वास के अनुसार इस एक गोधिका को मारने से एक सौ हत्याओं का पाप पड़ता है। इस गोधिका ने विलासमय जीवन—अच्छा खाना पीना तथा आनंद-प्रमोद को त्यागकर मरुस्थल में एक तपस्वी, साधु-सा जीवन अपना लिया है। अतएव इसकी हत्या एक साधु की हत्या, अर्थात एक सौ साधारण मनुष्यों की हत्या के पाप के बराबर होती है।

एक समय विनाशकारी चूहों ने सारी उपज खा डाली और गांठों वाले प्लेग की महामारी फैला दी। एक स्वामीजी आए, उन्होंने प्रतिरोध हेतु बिल्लियों का प्रवेश कराया, तथा उन्होंने यह 1:100 का अनुपात भी निश्चित किया, यह अनुपात विश्व की किसी भी संकटापन्न स्थिति में नियत रहता है। राखस ताल के तट पर वन्य गर्दभ 'क्यांग' की अनेक टोलियां तथा झुंड (एक झुंड में लगभग 70)। अत्यंत सतर्क : 200 मीटर पास तक पहुंचना अत्यंत कठिन, अक्सर खतरा सूंघते ही धूल उड़ाते हुए सिर पर पैर रखकर सरपट भागते हैं और दूर चले जाते हैं। कोई भी बछड़ा नहीं ! इनकी प्रजनन ऋतु कौन-सी है ? आज कुल 300 से अधिक देखे। क्यांग की सूखी लीद याक को प्रफुल्लित कर देती है, वे चलते हुए बिना मुंह भर लिए और खाते हुए आगे नहीं बढ़ते...15,500 फुट की ऊंचाई पर स्थित तर्चन (या दर्जन) 'भिखारियों' का भयावह स्थान है। क्योंकि कैलाश की शास्त्रों की परिक्रमा यहीं से प्रारंभ होती है। हम लोग कल से पुण्यार्जन प्रारंभ करेंगे। मानव का परलोक के लिए पुण्यार्जन करने का उत्साह तथा लोभ सचमुच हास्यास्पद तथा शोचनीय है। जिस पर इस एक जीवन, एकमात्र जीवन, जिसे वह कुछ नियंत्रित कर सकता है, में पुण्यार्जन के प्रयत्न से उसे संतोष क्यों नहीं होता, तथा भविष्य का जिस पर कोई नियंत्रण नहीं है अपने ऊपर देखभाल करने के लिए क्यों नहीं छोड़ देता? कैलाश की शास्त्रोक्त परिक्रमा के प्रथम चरण दिशफुक का पथ-पथरीला, ऊबड़-खाबड़, ऊंचा-नीचा किंतु आस्थावान तथा निष्ठावान चरणों के द्वारा अच्छी तरह कुचला हुआ, जिस कार्य में सफल कलाबाजारियों का भी उल्लेखनीय योगदान हो सकता है। तर्चन से कोई डेढ़ कि.मी. आगे : गंदे तथा फटे चीथड़ों में दो तिब्बती, कारुणिक दशा में दंड भरने वाली पद्धति से परिक्रमा करते हुए दिखे। खड़े होकर उन्होंने

1. 'गुदारपुच्छ गोधिका' (Fat tailed lizard)

अपने सिर के ऊपर दोनों हाथ जोड़े, फिर जमीन पर लेट गए, हाथ सिर के आगे बढ़ाए, और फिर हाथ की पहुंच से खड़े हुए, इस तरह उन्होंने 6 या 7 फुट की मोक्षार्थ परिक्रमा तय की। बेचारे! मैं आशा करता हूं कि परलोक में उन्हें उनकी मजदूरी से कोई वंचित नहीं करेगा। इस 16,500 फुट की ऊंचाई के ऊपर ईंधन के लिए केवल याक-गोबर पर निर्भर करना पड़ता है। गिद्ध दृष्टि वाला लाफा याक-गोबर अत्यंत तत्परता से सारे रास्ते अपने तिब्बती चोगे की परतों में समेट लाता है...यह तो मानसिक संतोष के लिए बहुत अच्छी बात है कि भुनभुनाने तथा बुदबुदाने के लिए कुछ कारण मिल जाते हैं किंतु कुल मिलाकर यह अति उत्तम पक्षिवैज्ञानिकीय अनुभव सिद्ध हो रहा है। मेरी पुस्तक 'भारतीय पहाड़ों के पक्षी'[1] को पूर्णता की ओर ले जाएंगे।...'दिशपुख' में लघु तंबू...कैलाश हमारे निकट उत्तुंग है किंतु यह दूरी से कहीं अधिक भव्य दिखता है।...(परिक्रमा का दूसरा चरण) मैंने याक से परिक्रमा कर धोखा देने की बहुत कोशिश की, विशेषकर दुर्जेय दोल्मा ला, 18,500 फुट 'पास' को पार करने के लिए, किंतु वहां कोई याक मिला ही नहीं : कम से कम लाफा तथा जैलांग दोनों ने मुझे यही बतलाया था। वे मेरे इतनी सस्ती पद्धति से पुण्यार्जन करने के प्रयास से ही भयभीत थे, तथा मेरे स्वभाव के इस ओछेपन को देखकर कि मैं इस तरह चालाकी की योजना बना सकता हूं (उनके मन में तिरस्कार की भावना शायद आ गई थी।) पावन परिक्रमा के चार गुम्पाओं में से एक विख्यात गुम्पा में गए। उस स्थान की फटेहाली तथा कूड़ा-करकट तथा असभ्य कबीलाई परिवेश देखकर मुझे वमन की इच्छा हो गई। क्या यही बौद्ध धर्म है या धर्म कहलाने के योग्य परिवेश है ?...गहरे तथा नरम हिमपात में दोमला पार करना हत्या के समान लग रहा था। मैं तो नितांत क्लांत हो गया था, शिखर पर पहुंचने तक संकटग्रस्त था : पचास कदम चलकर ही सुंदर दृश्य का आनंद लेने के लिए रुकना पड़ता था। उस नरम हिम में याक जब अपने पेटों तक धंस गए तब उन्होंने उछल-कूद मचाई, उत्साह में या जोश में सारा सामान फेंका ! 'पास' के दूसरी तरफ उतार 1:2 से भी अधिक, बड़े-बड़े शिलाखंडों वाले पथ पर। किंतु याकों को इसमें भी मजा आ रहा था : असाधारण जानवर ! अगले पड़ाव जुन्थुलफुक, 4:30 बजे, पूर्णतः क्लांत

1. 'भारतीय पहाड़ों के पक्षी' (Birds of the Indian Hills)

पहुंचे। तंबू में लेट गया, अभियानों तथा लोगों की विकृत मनोवृत्तियों पर (दार्शनिक गहराई से चिंतन-मनन करने लगा) जो उन्हें मजे से आमों का आनंद लेने के स्थान (भारत में उस समय आमों की बहार थी), पर; तथा सूखे, नरम तथा आरामदेह बिस्तरों के स्थान पर गीले, कठोर तथा नुकीले पत्थरों वाले बिस्तर पर, जिसमें उनकी नोकें मनचाही जगहों पर टोंचती रहती हैं, सोने के लिए बाध्य करती हैं। बेचारे अभियान पर जाने वाले !

25.6.45 : दिंग त्सो—मानसरोवर के उत्तर पूर्व में, 15,200 फुट की ऊंचाई पर एक छोटी-सी झील, परिधि-10 कि.मी.। स्थानीय लोग मानसरोवर को 'शरीर' मानते हैं तथा इसे 'शीर्ष', अतएव अधिक पावन। पक्षिवैज्ञानिकीय दृष्टि से इसका पूर्वी तट अधिक उत्तेजक : चौड़ी पट्टी, कहीं कहीं 400 मीटर चौड़ी, टंड्रा के समान दलदली हरित, गिलगिले गोल टीले या कूबड़ों की श्रृंखला जिनके बीच-बीच में जल नहरें—वास्तव में द्वीपपुंज का लघु रूप। इनमें से अनेक द्वीपिकाएं जल में स्वतंत्र तैर रही थीं। इन पर चलने में बहुत सतर्क होने की आवश्यकता थी कि कहीं कोई द्वीपिका, इसके पहले कि आप तेजी से दूसरी द्वीपिका पर जाएं, पानी में डूब न जाए। धोखेबाज बलुआ दलदलों की भरमार, अतएव अतिरिक्त सतर्कता। किंतु यह क्षेत्र गृहस्थ पक्षियों के व्यवहार के अध्ययन के लिए बहुल संभावनाओं से पूर्ण। बड़ी शिखी अपुच्छी[1], कथसिरी गंगचील[2] तथा लगभग 15 युगल कलग्रीवी क्रौंचों के दल इस झील या दलदल में प्रजनन रत थे। क्रौंचों का किलोल करने वाला तथा उछलने वाला नृत्य सारस के बहुत समान; बोल तथा पुकार भी किंतु पुकार थोड़ी-सी ऊंची ध्वनि में। एक अंडा ले लिया तथा पकाया—नित्य के दाल-चावल से स्वागतयोग्य मुक्ति !

अपुच्छी के तरणशील घोंसले तक पहुंचने में गंभीर कठिनाई में फंस गया था, बलुई-दलदल द्वारा उदरस्थ होने का खतरा एकदम सर पर आ गया था। दलदल के सर्वाधिक गहरे भाग में जब मैं तरणशील टीले पर था और जांघों तक बर्फीले पानी में घुस गया और और भी गहरे जाने लगा तब सहसा स्पष्ट होने लगा कि निकट में कूदकर पहुंचने वाला दूसरा टीला भी नहीं है, भयाक्रांत हो गया। तेजी से पीछे पिछले वाले टीले की तरफ मुड़ा, वह भी तैरकर थोड़ी दूर चला गया

1. बड़ी शिखी अपुच्छी (Great Crested Grebes)
2. कथसिरी गंगचील (Brownheaded Gulls)

था, मैं कूदा और सौभाग्यवश कगार तक पहुंच ही गया। एक शिक्षा मिली और सीखी; जैलांग की चेतावनियों को अब और गंभीरता से लूंगा!

जैलांग अपनी शक्ल के बावजूद, समय से पहले की मृत्यु से डरने वाला, आदमी लगता है। सारी सुबह वह मृत्यु के भय से मुझसे दूर ही रहा, इस दलदली आवास में वह जरा भी खतरा नहीं लेना चाहता, वरन सुरक्षित दूरी से भी उसने कम से कम सहायता की। सड़क पर यात्रियों को, दूर से देखने पर भी, डर कें मारे कांपने लगता है, वह उन पर 'खराब आदमी' या डाकू होने का संदेह करता है, जिसके लिए उसे कमजोर से कमजोर बहाना पर्याप्त है। बाद में पता चला कि उसका डरना तर्कसंगत था क्योंकि लुटेरे मानसरोवर क्षेत्र में भरे पड़े हैं तथा कुछ समय पहले ही उसे उनका कडुआ अनुभव हो चुका है। उसे उन्होंने बुरी तरह पीटा, बांधा, लूटा तथा सड़क के किनारे फेंक दिया था; दो दिन के बाद किसी यात्री ने उसे बचाया था।

चीनियों के तिब्बत में प्रवेश से पूर्व, मेरे अभियान के समय मानसरोवर क्षेत्र में डाकुओं का आतंक छाया हुआ था। भारत से आए असहाय यात्री अक्सर लूट लिए जाते थे, पीटे जाते थे और कभी-कभी मार डाले जाते थे। जैलांग ने मुझे अकेले विशेषकर किसी आयुध के बिना घूमने के लिए कई बार चेतावनी दी थी, किंतु मैंने सोचा कि वह अपने ढंग से मेरे अभियान को और साहसिक बना रहा था। एक बार एक सुबह मैं जैलांग के साथ भटकटैयों की झाड़ियों में घोंसले खोज रहा था। सामने थोड़ी दूर पर मैंने कुछ हलचल देखी किंतु कुछ ध्यान नहीं दिया। जब हम उस जगह के पास पहुंचे तब घात में बैठा एक कलूटा-सा भयानक बदमाश कंधे पर तोड़ेदार बंदूक लटकाए, हाथ में खंजर लिए अचानक सामने आया। उसने तुरंत ही भयानक आक्रामक स्वर में चिल्लाना तथा हाथ चलाना शुरू कर दिया, यह तो अच्छा ही था कि उसका चिल्लाना मेरी समझ में नहीं आया। उस डाकू के ललकारने से जैलांग जितना पीला पड़ गया उतना पीला होते मैंने किसी भी जीवित पुरुष को पहले कभी नहीं देखा था; 'चादर सा सफेद' मुहावरा अविचारित अतिशयोक्ति नहीं है। वह डर के मारे स्पष्ट कांपता हुआ दिख रहा था, और भयाक्रांत हलके स्वरों में मुझसे बार-बार अनुनय विनय कर रहा था कि इस खराब आदमी के पास से भाग चलूं। यह तो स्पष्ट था कि भागना अब व्यावहारिक नहीं था और वह भी इस विस्तृत समतल मैदान में जहां दूर-दूर तक कोई सहायता की आशा नहीं थी। सौभाग्य से मुझे अपनी 'शूटिंग-स्टिक' (क्रिकेट अंपायर जैसी एक छड़ी के आकार की कुर्सी का उपयोग करते हैं) अचानक याद आ गई, और उस समय वह जैलांग के हाथ में थी। मैं उससे जोर से बोला कि वह मुझे तुरंत बंदूक दे

दे। मैंने उसे बिलकुल बंदूक मानकर, जेब से कारतूस निकालकर उस बंदूक में भरने का तूमतड़ाक नाटक किया। मैंने यह मान लिया था कि उस लुटेरे ने ऐसी चमकदमक वाली कुर्सी नहीं देखी होगी। जब मैंने उस कुर्सी की 'सीट' को खटक खटाक आवाज के साथ खोला और बंद किया तब मैंने देखा कि वह डाकू डर रहा था। बंदूक में कारतूस भरने के बाद, सच्ची बंदूक के समान मैंने उसे कंधे पर दागने की मुद्रा में लगाया। अब उन आक्रामक ध्वनियों को निकालने की बारी मेरी थी, और यह खुशी की बात थी (उसकी अपनी भलाई के लिए) कि उस बदमाश को मेरी बात समझ में नहीं आ रही थी ? सौभाग्य से मेरा नाटक सफल हुआ : उस बदमाश की आक्रामकता एकदम शांत हो गई, वह दुखी तथा चिंतित होकर भागा। मैं बहादुरी का नाटक करते हुए अपने शिविर लौटा, किंतु बराबर भयाकुल कि अब पीछे से कारतूस आया। अत्यंत दुखदायक स्थिति के सुखांत होने से मैं बहुत खुश था।

...इस यात्रा में अभी तक जैसा मौसम मिला था, उससे नितांत भिन्न तथा आपवादिक रूप से सुनहला मौसम हमें पिछले 3 या 4 दिनों से मिल रहा है। हवा में 'शैम्पेन' है, पक्षियों का पीछा करने में भी थकान नहीं होती है। रात के नौ बजे तक उजाला रहता है। सूरज तेज जरूर रहता है किंतु थोड़ी थोड़ी देर में बादल छाया कर देते हैं, एक स्वेटर अच्छा लगता है। यात्रा का यहां से लौटना प्रारंभ होता है। कल हम यहां से ज्ञानिमा की तरफ वापस लौटना शुरू करेंगे, जबकि तिब्बत की ग्रीष्म ऋतु अब आना शुरू कर रही है।

26.6.45 क्यांगमा। पिछली रात (दिंगत्सो) पूर्णिमा तथा चंद्र ग्रहण। लफ्फा तथा जैलांग दोनों उत्तेजित; दोनों अपने-अपने निर्माताओं की पागलों के समान प्रबलघोष ध्वनि से मंत्रोच्चार कर अभ्यर्थना कर रहे हैं। यह लगभग एक घंटे चला, बीच-बीच में 'काले व्यक्ति' को, सिंहनाद से धमकाया भी गया था कि वह चंद्रमा को निगलने का प्रयत्न न करे, वरन छोड़ दे। पांच किमी. दूर, झील के दूसरे तट पर, पहाड़ी की तलहटी के गुम्पा के लामा भी इस चंद्र-हानि से बहुत चिंतित हैं—प्रेम सरीखी चीखें तथा बंदूकों का दागना भी सुना गया। अपने प्रबल घोष के बीच लफ्फा ने अपना छुरा निकाला और उस 'काले व्यक्ति' को धमकाया; इस साहसिक कार्य से डरकर 'काले' ने चंद्र को मुक्त कर दिया। इस 'बचाव' के बाद मुझे सोने में बहुत खुशी हुई...वन्य गर्दभ क्यांग के एक झुंड में 119 गिने...ल्हामा से ज्ञानिमा में जौंगपैन (एक प्रकार का राज्यपाल) अपनी नियुक्ति पर आए थे, वे भेंट करने आए,

साथ में कुछ फटीचर साथियों को लिए हुए। 'प्रीतम' के शयन-थैले पर बैठकर हमारी सभी वस्तुओं का निरीक्षण किया—निर्द्रव दाब मापक[1], कम्पास, कैमरा, तापमापक, रकसैक, अल्यूमीनियम मग, और निस्संदेह दूरबीनें जिन्हें मनोरंजन के लिए सबने बार-बार देखा। इन जौंगपैन नामक व्यक्तियों की योग्यताओं का आकलन नहीं कर पा रहा हूं। यदि वह 'तहसीलदार' के पद के बराबर भी है तब यह नहीं हो सकता कि वह यह सब वस्तुएं पहली बार देख रहा है, जैसा कि निस्संदेह प्रतीत हो रहा है ! कम्पास की सूई, कम्पास को किसी भी दिशा में घुमाने पर, कैलाश की ही दिशा में इंगित कर रही थी—इस दृश्य से वे अभिभूत थे। दुष्ट मंडली को बड़ा मजा आ रहा था।...ललग्रीवी तथा तिब्बती जाति के हिम कुलिंग पक्षी चूहों के बिल में, बिल के स्वामी 'मूषक-शश' के साथ ('सह अस्तित्व सिद्धांत' के अनुकूल रहते हैं।) ! एक चूहा तथा एक कुलिंग को एक ही बिल में जाते देखा ! क्यांग वन्य गर्दभों के विशाल झुंड देखे (एक में 100 से अधिक)। जिन स्थानों में क्यांग अधिकतर विचरण करते हैं वहां की रेत में घिसट के, सांप के चलने सरीखे, या भगोड़ी गाय के डंडे (जो उसके गले में बांध देते हैं) के घिसटने के समान निशान बन जाते हैं। यह निशान 5-6 सेमी. चौड़े और अधिकांशतया 10 मीटर लंबे (एक सौ तीस मीटर लंबा देखा) होते हैं। ये निशान सरल रेखा में न होकर, मोटे तौर पर, लहरों के समान होते हैं। स्थानीय लोग कहते हैं कि यह निशान गर्दभों के एक पैर घसीटने के कारण बनते हैं; किंतु यह गधा (गर्दभ) इतना गधा क्यों? पता नहीं इन निशानों का पहले अवलोकन हुआ या नहीं और इन्हें समझाया गया या नहीं ?...असीमित 'बर्खा-समतल' के निर्मल वातावरण में प्रत्येक वस्तु पास ही दिखती है। परंतु क्या मीठा भ्रम ! किमी. पर किमी. चलते जाओ, वह वस्तु निकट नहीं आती। चलते-चलते हम थक जाते हैं।...(चाय के साथी) बिस्किट बनाने के लिए त्साम्पा तथा गुड़ मिलाकर बनाने का सुझाव दिया। परिणामतया विश्व की कठोरतम, जलाभेद्य 'री इनफोर्सड कंक्रीट' कम से कम 'बिस्किट-विश्व' में। दोषः निश्चित रूप से ख्योमसिंह का, उसने मिश्रण का अनुपात गलत रखा। आधे घंटे तक एक टुकड़ा मुंह में सुपारी की तरह खाने की कोशिश की, किंतु हार माननी पड़ी।

1. निर्द्रव दाब मापक (aneroid)

गुलेल की कारतूस के रूप में उत्तम।...याक भी निर्मोचन करते हैं—शीत ऋतु के लंबे बाल छोड़कर ग्रीष्म के लिए छोटा लोमाच्छादन; खंडों में पपड़िया कर निकलता है : ग्रीवा तथा पीठ पहले, पेट तथा पैर अंत में जब मौसम गरम हो जाता है। पेट के लोमों को काटना पड़ता है क्योंकि वे पपड़िया कर स्वतः नहीं गिरते। रास्ता चलते याक चालक लदे याक की पपड़ियों से लोम खींचते हैं और एक प्रकार की तकली से धागा बनाते चलते हैं। इस धागे से कंबल तथा तंबू बनाते हैं। सफेद के बजाय काला धागा ज्यादा पसंद किया जाता है क्योंकि इसमें गंदगी नहीं दिखती; काले के दाम सफेद से दुगने। वार्षिक उत्पादन 1 कि.ग्रा. प्रति याक। पालतू बैल तथा याक गाय मिलकर उत्कृष्ट 'झिब्बू' संकर जाति पैदा करते हैं। झिब्बू श्रमशील तथा सीधे होते हैं, उन्हें हल में जोता जा सकता है, उन्हें याक से दुगने दाम देकर खरीदना पड़ता है जो इस समय 70-140 रु. है। यद्यपि झिब्बू की याक से श्रेष्ठता सर्वमान्य है, वहां उसका प्रजनन अप्राकृतिक तथा अनैतिक समझा जाता है तथा दुर्भाग्य लाने वाला भी, इसलिए सब लोग उसका प्रजनन नहीं करते। अतएव दुष्ट ही उन्नति करते हैं ! याक गोशाला में उसी प्रकार प्रवेश नहीं करते, जैसे वे पुल पार करने से कतराते हैं। एक वर्ष में एक बछड़ा पैदा करते हैं। गर्भावधि 9 माह तथा जनन वसंत ऋतु में। सामान्य आयु 18-21 वर्ष, पूर्ण शक्ति-4 वर्ष में।...जब किसी भी 'पास' के शीर्ष पर पहुंचते हैं तब वहां पर मन्नत वाले पत्थरों के पुंज मिलते हैं। वहां पहुंचने पर याक चालक पागलों की तरह कूदते हैं, किलोल करते हैं, 'सो...सो...सो...सा...' कहते हुए उत्क्रोश करते हैं, 'सो' किसी देवता की विशिष्ट जाति का नाम लगता है। किसी छोटे 'पास' पर जब उन्होंने यह उत्क्रोश नहीं किया तब पूछने पर लफ्फा ने बताया कि छोटे देवताओं की उसे चिंता नहीं है, वह तो उनसे वाद-विवाद कर सकता है, बराबरी से लड़ सकता है। वह केवल वरिष्ठ देवताओं को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता है, उनका सम्मान करता है। (ऐसा स्वप्न देखने वाला है जिसके स्वप्न साकार हो जाते हैं?)। मेरी समझ में नहीं आया कि यहां के लोग धर्म को गंभीरतापूर्वक लेते हैं या उसे मजाक समझते हैं। विभिन्न 'जातियों' प्रकार के अंधविश्वास, काला जादू तथा भूतप्रेत उन्हें भयाक्रांत रखते हैं, किंतु शेष के विषय में ?...टकलाकोट, ज्ञानिमा तथा धारचूला आदि की मंडियों की दूकानों में लोकप्रिय वस्तुओं का असाधारण मेलजोल रहता है : कपड़े, सभी प्रकार के पुराने ऊनी कपड़े, (बिजली

के) टार्च, नए तथा पुराने सैनिक-बूट्स तथा किरमिची जूते, ल्हासा तथा वेरीनाग की चाय, मिसरी, लालटेन, सेफ्टी पिन तथा विभिन्न प्रकार की अन्य वस्तुएं; इन सभी का 'हिसाब किताब' रखने के लिए कल्पनाशक्ति तथा समझदारी की बहुत आवश्यकता होती है। दुकानदार लोग भेड़ के ऊन, फर, सोहागा इत्यादि से अपने सामान का विनिमय भी करते हैं...। मुझे 2 या 3 हिम वनबिलाव[1] के सुंदर चर्म दिखलाए गए, उन्हें कामचलाऊ पकाया गया था किंतु क्षत-विक्षत नहीं किया गया था। विनिमय द्वारा लिए गए इन चर्मों को धारचूला के जमनसिंह ने पेशावर के एक व्यापारी को 130 रु. की दर से बेच दिया।

1. हिम वनबिलाव (Snow Lynx)

13

लोके वान थो

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, आते-जाते सैनिकों के लिए 'विक्ट्री' नाम से इकहरी पत्रिका बंबई से प्रकाशित होती थी। इसमें 1942 में 'एक द्रोणकाक जिसे क्रोध आया' नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ था। इसमें एक युवा पक्षिफोटोग्राफर (जिसे बाद में अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली) का इंग्लैंड के पैम्ब्रौकशायर तट की खड़ी चट्टानों पर बने अंजनों के घोंसलों के चित्र लेने का अनुभव था। उसी के पास द्रोणकाकों का एक जोड़ा भी रहता था। इसके लेखक का नाम लोके वान थो दिया गया था। रायल इंडियन नेवी के लेफ्टिनेंट कमांडर जे.टी.एम. गिब्सन ने यह लेख पढ़ा। वे पहले दून स्कूल, देहरादून में शिक्षक थे तथा सैन्य सेवा के लिए उन्होंने अपनी सेवाएं अर्पित की थीं। लेखक का नाम पढ़कर उन्हें इसी नाम के अपने एक विद्यार्थी का स्मरण हो आया जिसे उन्होंने कुछ वर्ष पहले स्विट्जरलैंड के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ाया था। वे भी अस्थायी रूप से बंबई में थे। उन्होंने संपादक के द्वारा लेखक से संपर्क किया और उनका अनुमान ठीक निकला। कैंब्रिज तथा लंदन विश्वविद्यालयों में अपना अध्ययन पूरा कर, वह जब सिंगापुर लौटा तब पचीस के आसपास ही था। सिंगापुर में उसके पिता द्वारा स्थापित उन्नतिशील व्यवसाय साम्राज्य था, जिसे पिता के देहांत के बाद, जब वह नाबालिग था तथा अपना अध्ययन कर रहा था, उसकी विवेकी तथा योग्य मां उत्कृष्ट तथा विलक्षण समझदारी से सफलतापूर्वक चला रही थीं, और तब जापानी आक्रमण आया जिसने मलाया को रौंद डाला तथा सिंगापुर को 'शोनन' में बदल डाला। उस भयंकर दुर्घटना की आशंका से उसकी मां, लोके तथा बहन पैंग सिंगापुर छोड़ने के लिए बाध्य हुए तथा उन्होंने बंबई (भारत) में शरण ली। जब वे एक (डच) जहाज से भाग रहे थे तब उन्हें अत्यंत दुखद स्थितियों से गुजरना पड़ा, जिसमें लोके मरते मरते बचे। उनके जहाज को जापानियों ने बम से ध्वस्त कर डुबो दिया, बम गिरने से लगी आग में लोके बुरी तरह झुलस गए, उनकी आंखों को भी गहरी चोट पहुंची और आशंका थी कि कहीं आंखें चली न गई हों। एक आस्ट्रेलियाई जहाज ने उन्हें बचाया तथा जकार्ता पहुंचा

दिया। जकार्ता में कई सप्ताह अस्पताल में देखभाल के पश्चात उनकी दृष्टि वापस आई। गिब्सन ने लोके से पूछा कि निर्वासन की अवधि में वह क्या करना चाहता है, तथा उसकी विशेष रुचियां क्या हैं ताकि वे उसे उपयोगी सुझाव दे सकें। जब उन्हें पता लगा कि अंग्रेजी साहित्य तथा लेखन के अतिरिक्त उसकी प्रगाढ़ रुचि पंछिनिहारन तथा पंछिफोटोग्राफी थी, तब उन्होंने उसे अपने पंछिनिहारक मित्र (सालिम अली) से मिलवाने का वचन दिया। गिब्सन के नौ सेना के आवास में रात्रिभोज की भेंट दोनों अतिथियों के लिए पारस्परिक महत्वपूर्ण तथा भगवत्कृपा सिद्ध हुई। इस भेंट ने मेरा परिचय एक अत्यंत विलक्षण तथा स्नेही व्यक्ति से कराया। अभिरुचियों तथा दृष्टिकोणों की गहरी समानता से मित्रता की गहराई तथा आपसी समझ पनपती गई। दुर्भाग्य से 1964 में विमान दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। वान थो के लिए भी उनकी मुझसे भेंट तथा बी.एन.एच.एस. से अनुवर्ती परिचय वरदान सिद्ध हुआ। भारत में उन पर थोपी गई (परिस्थितियों द्वारा) निष्क्रियता के रचनात्मक तथा आनंददायक उपयोग के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ जिसने उन्हें संहारक बोरियत से बचाया। इससे उन्हें उनकी प्रतिभाओं तथा अवसरों का पूर्ण लाभ उठाने में सहायता मिली, और इस प्रक्रिया में वे अत्यंत सक्षम पक्षिवैज्ञानिक तथा विश्वविख्यात पक्षिफोटोग्राफर के रूप में उभरे। उनके जीवनकाल में मुझे तथा सोसायटी को उनकी महती उदारता से बहुत लाभ मिले—जिस परंपरा का उनकी शिष्ट मां श्रीमती लोके यू तथा मां की मृत्यु पश्चात उनकी मनोहर एवं मैत्रीप्रिय बहन पैंग (लेडी वाई पी मैकनीस) ने पालन किया। जिन 22 वर्षों में यह अगाध मैत्री फलती-फूलती रही, उनमें शायद ही कोई पक्षिअभियान, अंतर्राष्ट्रीय पक्षिसम्मेलन या पक्षिफोटोग्राफीय अवकाश ऐसा हो जिसमें लोके या तो व्यक्ति रूप में या महती वित्तीय उदारता के रूप में सम्मिलित न हुए हों। बाद में उन्होंने वित्तीय भागीदारी द्वारा ही पक्षिकार्यों का परोक्ष आनंद उठाया क्योंकि उनके व्यावसायिक कार्य उन्हें पक्षिअभियानों के लिए अवकाश नहीं दे पाते थे।

जब मैं कच्छ अभियान की तैयारी कर रहा था, तब उनकी पक्षियों तथा पक्षिफोटोग्राफी की आकुलता से प्रभावित होकर मैंने उनसे यूं ही पूछ लिया कि क्या वे मेरे कच्छ पक्षिअभियान में सम्मिलित होना चाहेंगे। लोके ने वह आमंत्रण एकदम स्वीकार कर लिया। कच्छ प्रवास की चार माह की अवधि में मुझे उनके कठोर जीवन जीने की क्षमता, पक्षिसर्वेक्षणों के मितव्ययी जीवन की कठिनाइयों को मुस्कराते हुए झेलने वाले स्वभाव, जहां जो मिला उससे निर्वाह कर सकने की शक्ति को परखने के अनेकानेक अवसर मिले—कहीं तो खटमलों से तथा सुबह-सुबह जोरों से गला साफ करने वाले यात्रियों से पटी पड़ी धर्मशालाओं में रहना हो, या कहीं निम्नतम गौशालाओं में रहना हो। ऐसे अभियानों में लंच में दाल-चावल होता था तथा रात्रि में चावल-दाल जिसमें प्रकाश फेंकने वाली धुआंती लालटेनें होती थीं,

तथा हिटलर के युद्धस्वरूप अनेक उपयोगी वस्तुओं के अनुपलब्ध रहने के कई प्रकार के कष्ट थे। और उस समय तक मुझे उसके घर सिंगापुर में लोके की न तो सामाजिक स्थिति पता थी और न जीवन शैली, तथापि यह तो स्पष्ट था कि वह इस तरह की तंगियों का अनाभ्यस्त था, इसलिए वे भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हैं कि उन्होंने इन सारे कष्टों को खुशी-खुशी, सौजन्य के साथ सह लिया। कच्छ की-सी असुविधाओं के साथ अगले दो-तीन वर्षों में जिन अभियानों में हम साथ रहे उन्होंने असुविधाओं की एक बार भी शिकायत नहीं की और न भुनभुनाए। उन्होंने एक भी बार जापानी-आक्रमण-पूर्व सिंगापुर की अपनी अभिजात्य जीवन शैली की ओर इंगित नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता था कि वे इन कष्टों में आनंदित रहते हैं तथा पनपते हैं जैसे कि बचपन से वे इसके अभ्यस्त हों; सिवाय इसके कि आंख के कष्टों को भी वे बिना शिकायत भुगतते रहे, मैं जानता हूं कि मध्यरात्रि में खुले में किसी झाड़ी को खोजना आनंदप्रद नहीं हो सकता।

मानो कि कच्छ में वान थो सारे परीक्षणों में उत्तम श्रेणी में सफल हुए। उनमें बंधुत्व की भावना, निष्ठावान सहयोगी तथा सभी परिस्थितियों में भरसक, और उससे भी अधिक, प्रयत्न करने की तत्परता पाकर मुझे अपार सुख मिला। उनका प्रखर हास्यबोध, स्थायी विनम्रता तथा शांत और शिष्ट आचरण, मैत्री भाव तथा बिना भेदभाव वाली मिलनसारिता, तथा ऐसे नेता के साथ, जो अपने मृदु स्वभाव के लिए प्रसिद्ध न हो, प्रसन्नचित्त तथा अविचलित रहने की क्षमता ने उन्हें हमारे शिविरों के लिए आदर्श सहयोगी बना दिया था। हम दोनों के दृष्टिकोणों तथा अभिरुचियों की एकरूपता ने हम दोनों को, बाद के मित्रों की तुलना में, बहुत करीब ला दिया था। जापानी युद्ध की अवधि में, भारत में निर्वासन के समय, सारे देश के क्षेत्रीय पक्षिसर्वेक्षणों ने, मानो उन्हें ईश्वर प्रदत्त सुअवसर दिए जिनमें उन्होंने प्राकृतिक इतिहास के प्रति अपने अतीव अनुराग का आनंद उठाया तथा अपना सारा समय तथा ऊर्जा उन्होंने पक्षिवैज्ञानिकी तथा पक्षिफोटोग्राफी में लगाई तथा इन क्षेत्रों में अत्यंत निपुण माने जाने लगे।

वान थो अंग्रेजी साहित्य के प्रेमी थे। उनमें गुणविवेचन तथा समालोचना क्षमता कलामर्मज्ञ के समतुल्य थी। शिविर में, दिन के सारे कार्यों को करने के बाद, जब हम भोजनोपरांत मंद लालटेनों के उजाले में पढ़ने बैठते थे उस समय वे मनोहारी तथा प्रेरणा देने वाले साथी थे। जब उन्हें कोई पाठ्यांश बहुत अच्छा लगता, तब खुशी-खुशी और कभी-कभी मंद मुस्कराहट से और प्रायः मानो अपने ओठों को चटखारते हुए वे उस अंश को जोर से पढ़ने लगते थे। वे स्वयं भी हास्यबोध के साथ रुचिकर तथा पठनीय शैली में लिखते थे। सभी अभियानों में दिन प्रतिदिन की घटनाओं की सूक्ष्म विवरण सहित लिखित डायरी ने मुझे अनेक उपयोगी घटनाओं की याद दिलाई है, विशेषकर इसलिए कि मेरी रेत सदृश सूखी डायरी में पक्षियों तथा पारिस्थितिकी संबंधी विवरण ही रहते हैं।

सारे देश के अभियानों में एक शिविर से दूसरे शिविर तक जाने का कार्य, हैदराबाद पक्षिसर्वेक्षण के समान निजी वाहनों में करना पड़ता था। ये निजी वाहन थके हुए वृद्ध वाहनों के रूपांतर ही हुआ करते थे जिन पर हम भार की भी अति करते थे। युद्ध काल में पेट्रोल पर राशन लगा था और उसकी बहुत कमी थी अतएव अधिकांश खटारा बसें कोयला-गैस पर चलती थीं। जब उन बसों के लिए कोई चढ़ान उनकी क्षमता से अधिक होती थी तब सभी स्वस्थ व्यक्तियों से आशा की जाती थी कि वे उसे, बाहर निकलकर, धक्का दें। इस कार्य में वान थो हमेशा पूरे जोश से भाग लेते थे। किंतु एक गरम तथा उमस भरी दोपहरी में बस को कुछ अधिक जोर से धक्का देने के कारण दौड़ते हुए आए और हांफते हुए बोले, 'सालिम, अपने इस कार्य हेतु आपके पास अपनी स्टेशनवैगन होना जरूरी है ताकि आप इन सारी कठिनाइयों से मुक्त रहकर अपनी इच्छानुसार चाहे जब चाहे जहां जा सकते हैं।' उनका तर्क त्रुटिहीन था। मैं उनसे पूर्णतः सहमत था किंतु आर्थिक तथा अन्य दृष्टियों से जो परिस्थितियां थीं, मैंने उसके बारे में नहीं सोचा। किंतु कुछ महीनों बाद एक दिन मुझे बहुत ही प्रीतिकर शैली में स्मरण कराया गया।

जापान युद्ध हार गया था। शोनन पुनः सिंगापुर हो गया था। ब्रिटिश सरकार ने विस्तृत बिखरे हुए निर्वासितों को शीघ्र ही इकट्ठा कर जन्मभूमि के द्वीप में पुनर्वासित किया ताकि वे अपने नष्ट-भ्रष्ट व्यापार तथा उद्योग को शीघ्रातिशीघ्र पुनर्जीवित कर सकें। वान थो उन व्यवसायियों में से थे जिन्हें प्रथम दल में वापसी के लिए चुना गया था। वान थो को पूरी आशंका थी कि उनका व्यवसाय पूरा नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया होगा तथा उन्हें क, ख, ग से प्रारंभ करना पड़ेगा। किंतु सिंगापुर पहुंचने पर उन्हें जीवन का सबसे बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ—उनके चीनी प्रबंधक ने, जापानी आधिपत्य की अवधि में भी, अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा चातुर्य से व्यवसाय को और पनपाया था तथा वे सिंगापुर के धनवानतम व्यक्तियों में पुनः गिने जाने लगे थे। स्वदेश वापस लौटने के बाद यह सब उन्होंने एक पत्र में मुझे लिखा था। साथ में उन्होंने मुझे मध्यप्रदेश की बस को धक्का देने वाली घटना की याद दिलाई तथा यह भी कि उस समय उन्होंने क्षेत्रीय कार्य के लिए एक स्टेशन वैगन का 'दर्शन' सुनाया था, तथा बाद में 'जोड़ा,' मैं एक चैक संलग्न कर रहा हूं, आप एक उपयुक्त स्टेशन वैगन खरीद लें, और याद रखें कि जहां से यह आया है वहां और है जो इस आवश्यकता पूर्ति के लिए मिल सकता है।

अपनी पुरातन चीनी परंपरा के अनुसार वान थो के पास सौंदर्य दृष्टि थी—सुंदर पर्वत तथा प्राकृतिक दृश्यावलियां, सुंदर फूल तथा पक्षी, सुंदर चित्र, सुंदर पोर्सलेन (चीनी मिट्टी के कलात्मक पात्र) तथा अन्य सभी कुछ सुंदर जिनमें सुंदर महिलाएं भी सम्मिलित थीं। महिलाओं के भी वे कलात्मक पारखी थे। जब भी वे किसी सुंदर महिला से मिलते, उसका उल्लेख उनकी डायरी में अवश्य होता था। उनकी

पहली पत्नी क्रिस्टीना अत्यंत सुंदर महिला थीं : दुर्भाग्य से वे स्वयं इस तथ्य से भलीभांति परिचित थीं। उन्हें सबसे अधिक सुख उनके सौंदर्य की अति-प्रशंसा सुनने में आता था जिसकी वे हमेशा प्रतीक्षा में रहती थीं। क्रिस्टीना ने मुझे कभी पसंद नहीं किया क्योंकि स्वभाव में 'दरबारी' न होने के कारण, मैं इस भद्दे तरीके से, उनके अहंकार की तुष्टी नहीं कर सकता था। मुझे ऐसा संदेह होता है कि वान थो के मुझसे गहरे स्नेह के कारण वह कभी-कभी थोड़ा-बहुत क्षुब्ध भी होती थीं, विशेषकर जब हम तीनों किसी अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में, या मोटर में घूमते समय या यूरोप में पंछिनिहारन अवकाश में या सिंगापुर में वान थो के आमंत्रण पर उसके अतिथि के रूप में साथ होते थे, यह दुख है कि क्रिस अपने मोहकरूप तथा सुंदरता पर अत्यधिक निर्भर रहती थीं। जब कि उन्हें इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनमें अन्य अधिक स्थायी तथा ठोस गुण और उपलब्धियां थीं जिनके बल पर वे अपने समकक्षों के बीच स्पष्ट तथा अलग दिखती थीं। मित्र मंडली में, या सामाजिक आतिथेयी के रूप में, वे यदि चाहतीं तो किसी का भी मन मोह सकती थीं। मुझे प्रारंभ से ही उन दोनों के स्वभाव तथा प्रमुख दृष्टिकोणों की विभिन्नता इतनी अधिक लगी कि जब हम लोगों ने 1950 में उनके विवाह के तत्काल बाद कश्मीर में दो माह का अवकाश बिताया तब मुझे भय था कि यह विवाह अधिक नहीं चलेगा। श्री लोके का स्वभाव कितना अध्ययनशील, बौद्धिक तथा शांत और उनका कितना चमक-दमक प्रिय तथा मनोरंजन प्रिय था! यथार्थ में दस वर्षों की 'भयंकर तूफानी तथा विश्वासघाती शांति' की अशांत अवधि में अंत आ गया। वान थो को उस मुक्ति के लिए $93,000 (या वह 97 था?) निर्वाह हेतु देने पड़े, किंतु जैसा उन्होंने कहा कि, 'शांति के लिए वह सौदा सस्ता ही था !'

सन् 1951 के बसंत तथा ग्रीष्मकाल की पंछिफोटोग्राफी (bird photographing) की, लोके युगल के साथ की गई, यात्रा के बाद, मुझे बंबई विश्वविद्यालय महिला होस्टल में कश्मीर के पक्षियों पर फिल्म-वार्ता के लिए आमंत्रित किया गया था। यहां मैं एक पैंतीस वर्षीय युवा महिला पत्रकार से मिला। वे यद्यपि आकर्षक नहीं थीं किंतु उनकी बुद्धिमत्ता तथा मोहक गुणों से तैहमीना की मृत्यु के बाद, पहली बार मेरा संतुलन डगमगाया था। जब कमू तथा हसन जापान में अवकाश बिता रहे थे तब उन्होंने 46 पाली हिल में मेरे साथ कुछ सप्ताहांत बिताए थे। इसकी अफवाहों ने मेरी प्रिय बहन कमू तथा अन्य बहनों एवं भानजियों में एक अपरिपक्व आशा की ज्योति प्रदीप्त कर दी, क्योंकि वे सब उसी समय से चुपचाप योजनाएं बना रही थीं कि मैं एक बार फिर से गृहस्थ बन जाऊं। भरतपुर में महाराजा के अतिथि के रूप में ए.के. (मैं उसे इसी नाम से लिखूंगा), वान थो तथा मैं (पक्षिनिहारन तथा अध्ययन, संग्रहण आदि) पंछिकी हेतु एक सप्ताह रहे। उस अवधि में हम लोगों ने एक-दूसरे को बेहतर जाना। तत्पश्चात मैं उससे बंबई तथा

दिल्ली में मिला। यद्यपि कभी-कभी मुझे उसकी याद हल्के-से सताती है, कुल मिलाकर मेरे लिए, और काफी हद तक, शायद उसके लिए भी बहुत अच्छा हुआ कि हम दोनों के बीच का मोह शीघ्र ही टूट गया। जिप्सी जैसा जीवन व्यतीत करने वाले गरीब स्वतंत्र पक्षिवैज्ञानिक की कठिन तथा अनिश्चित जीवनशैली का वह दीर्घकाल तक आनंद उठा सकने वाली नहीं लगी; और मेरे लिए यही वह पारस पत्थर था जिसके आधार पर मैंने अपना निर्णय लिया। 1952 के बाद वह झलक अदृश्य हो गई, तथा उसके विषय में तब से मुझे कुछ नहीं मालूम। वान थो की हमारे संयुक्त अभियानों की सूक्ष्म डायरी में, उस स्मरणीय भरतपुर-सप्ताह की गतिविधियां अंकित हैं, उसकी प्रिय डायरी में निम्नलिखित रहस्योद्घाटन मैंने देखा :

> '19 अक्तूबर : श्रीमती ए.के. आज दिल्ली से आई। सांवली महिला, छरहरा बदन, आकर्षक मुखाकृति। जीवन के सुनिश्चित लक्ष्य वाली महिला। हास्यबोध सीमित। शाकाहारी; कृत्रिम। उम्र लगभग 35 वर्ष, 5'3'' लंबी, वजन लगभग 'भारहीन'। साम्यवाद से सहानुभूति। 22 अक्तूबर : महाराजा के अतिथिगृह की छत पर देर रात तक (11.20) भारतीय संगीत तथा नृत्य पर चर्चा। ए.के. मेरे प्रथम अनुमान की अपेक्षा अधिक रुचिकर तथा बुद्धिमान।...सालिम के जीवन में, विलंब से, दुबारा प्रेमलीला (रोमांस) प्रवेश कर रही है : मेरी आशा है कि वह चोट न खाए, किंतु मुझे उनके लिए आशंका है।'

कोई आवश्यकता नहीं, वह सब शीघ्र उड़ गया, और अच्छा ही हुआ!

कच्छ अभियान तथा स्वतंत्र किए सिंगापुर में उसकी वापसी के बीच, साथ-साथ, हम लोगों को कोई बड़ा व्यवस्थित क्षेत्रीय सर्वेक्षण करने का संयोग नहीं मिला यद्यपि देश के विभिन्न भागों में छोटी-मोटी संग्रहण तथा शूटिंग यात्राएं अक्सर की गईं। 1945 की पश्चिमी तिब्बत की तीर्थयात्रा के लिए हम दोनों ने बड़ी सावधानी से योजना बनाई थी तथा बड़ी आशा से हम उसकी बाट जोह रहे थे, परंतु एक छोटी किंतु अत्यावश्यक शल्यचिकित्सा के कारण वान थो चलने में असमर्थ हो गए और हम दोनों को बहुत निराशा हुई थी। वान थो के स्वतंत्र सिंगापुर में स्थायी पुनर्वास के बाद, हमारे अधिकांश दीर्घकालीन संग्रहण एवं फोटोग्राफी अभियान जो मुख्यतया कश्मीर, भरतपुर तथा सिक्किम में किए गए, तुलनात्मक रूप से अधिक सुविधा संपन्न, विशेषकर सामग्रियों तथा रसद की उपलब्धि की दृष्टि से हुए। सामान्य दैनिक कार्यों से हटकर मौज-मस्ती के कार्यों से मिलते-जुलते थे, यद्यपि वैज्ञानिकीय सार्थकता के लिए पर्याप्त गंभीर थे।

मेरी पुस्तक 'सिक्किम के पक्षी'[1] दो से तीन माह के ऐसे ही दो अभियानों

1. 'सिक्किम के पक्षी' (Birds of Sikkim)

पर आधारित है, इन दोनों का खर्च वान थो ने उठाया था और एक अभियान में स्वयं हिस्सा भी लिया था। उस समय की उनकी डायरी में भूली हुई घटनाओं के विवरण भरे पड़े हैं, जो घावों को ताजा कर देते हैं। यह सब 1955 की, जनतंत्र तथा सीमा सड़क संगठन के सिक्किम पर छा जाने तथा उसे संदेहास्पद आधुनिकता में घसीटने के पहले के दिनों की बात है। उस समय गंतोक से आगे तथाकथित जीव वहनीय सड़कें भी नहीं थीं, तथा राजधानी के आगे पीठ पर रकसैक तथा कुलियों एवं टट्टुओं पर सामान लादकर मजे से यात्राएं होती थीं।

(वान थो की) डायरी में 'क्यूज़िंग-पैमियान्चै' ट्रैकिंग इस तरह अंकित है :

> जिस व्यक्ति ने यह लिखा था कि 'पहुंचने की अपेक्षा यात्रा करना बेहतर है', स्पष्टतया उसने हिमायल में एक-डेढ़ किलोमीटर यात्रा नहीं की होगी, हम जब भी प्रयाण पर निकलते हैं मुझे पहुंचने पर हमेशा सुख मिलता है। पगडंडियों में मिलते डाक बंगलों पर : इन विश्राम गृहों में क्राकरी, कटलरी, गद्दे तथा बिस्तर आदि आवश्यक सामग्री रखी गई है अतएव वे रहने के लिए बहुत विश्रामप्रद हैं। मैं 'टैमि' विश्रामगृह के कोसारे में बैठकर अपने 'नोट्स' लिख रहा हूं, इस समय गुलाब अपने यौवन पर हैं तथा नीली पहाड़ियां कुहासे के रहस्य में लिपटी हैं। मैं अच्छे से नहा-धोकर अपने पायजामे में हूं। यद्यपि इस समय केवल 5:45 (सायं) बजा है, शरीर आनंदित रूप से परिश्रांत है, मन परितुष्ट है, मैं बाहर देखते हुए बहुत सुखी हूं। इसी समय सितशिखर गायग कस्तूरियों[1] का एक दल जोर से अपने उल्लसित गान गाता हुआ मजे से उड़ निकला है। थोड़ी देर में उसे परोसा जाएगा तथा 8:30 बजे तक हम बिस्तर में होंगे। यह सुखद उत्तम जीवन है, सिंगापुर के मेरे जीवन के निश्चित ही विपरीत। कितने दिनों से मैंने अखबार नहीं पढ़ा है। हम सुबह पांच बजे के लगभग उठते हैं, लंच ग्यारह बजे, डिनर छह या साढ़े छह बजे और नौ बजे के पहले बिस्तर में होते हैं। [सिंगतैम की ट्रैकिंग पर] : हमें रास्ते में अनके सुंदर युवतियां दिखीं, बाजार जाती हुईं, तथा मैंने उनसे फोटो के लिए अनुमति मांगी।

गंतोक 'रेसिडैंसी' में हमारे साथ ही जो एक अतिथि, 'कार्य (भ्रमण) टूर' पर आए थे, केंद्रीय पी.डब्ल्यू.डी. के अधीक्षक अभियंता थे जिनके जिम्मे कलकत्ते से लेकर सिक्किम तथा असम तक का विशाल जिला था। वान थो की सूक्ष्म डायरी के लिए वे अत्यंत महत्वपूर्ण चरित्र थे :

1. सितशिखर गायग कस्तूरियां (Whitecrested Laughing Thrushes)

वह अजीब व्यक्ति था, मेज के शिष्टाचारों, जैसा कि हम उन्हें जानते हैं, से बिलकुल हीन : वह अपने चाकू से खाता था, अपना सूप उद्घोष करते हुए पीता था तथा नैपकिन में अपनी नाक छिनकता था। उसकी भाषा भी अजीब तथा ज्ञानवर्धक नहीं थी। वह कंक्रीट सड़कों को सिक्किम के लिए अनुपयुक्त समझता था, उसने कहा, 'They crags (cracks) and sings (sinks) : they set hard like i-stone : what is the bloody sense? Must (most?) definitely costlier.' तथा असम में निकाले गए तेल के विषय में, 'it costs us not cheaper, even, I mean to say, into our terra firma. Do you see what I mean?'... ... चोग्यल सरकार के प्रमुख सचिव रायबहादुर दैन्सप्पा, दूसरी तरफ, बहुत बुद्धिमान व्यक्ति हैं तथा उनका हास्यबोध 'शैतानी' है। जब उन्हें मालूम हुआ कि उत्तरी सिक्किम की भीतरी पंक्ति में, मुझ पर आंख रखने के लिए एक तहसीलदार मेरे साथ जा रहा है (जैसा सालिम कहते हैं, 'पंछिनिहारक को निहारने वाला') तब उन्होंने कहा, 'आप उसका उपयोग करें, वह अपनी तहसील का मुख्याधिकारी है, और उसके एक इशारे पर ही काम हो जाते हैं। नाग का विष निकालकर उसकी उपयोगी औषधियां बनाई जाती हैं : आप उसके साथ वैसा ही करें। परंतु, निश्चित ही, वह नाग से बहुत बेहतर है!'

यथार्थ में तहसीलदार का हमारे साथ होना एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि हमारी अनेक संवहन संबंधी तथा सरकारी कार्य-विधिक चिंताएं दूर हो गईं। धांगु, (ऊंचाई 4,000 मीटर पर यख्तांग में 'आइबिस बिल' (Ibisbill) के घोंसले (18 अप्रैल, 1955) के फोटो लेने के विषय पर डायरी में लिखा है, 'सारी रात 'हाइंडर' (लघु तंबू) को घोंसले के पास लगा रहने देने के फलस्वरूप वह पक्षी आशा से भी अधिक पालतू हो गया था, हाइड में सालिम के हल्ला करने पर भी वह पक्षी विचलित नहीं होता था। एक बार अंडों पर बड़ी शांतिपूर्वक जब वह बहुत देर तक निश्चल बैठा रहा तब सालिम, तंबू से बाहर निकलने के अलावा, सारी करामातें कर उसे हिलाने में हार गए, यहां तक कि उन्होंने अपनी भरी-पूरी आवाज में "God Save the King" भी गाया किंतु बिना किसी सफलता के। मैंने निश्चित ही यह आशा की थी कि कम से कम वह पक्षी यह सुनकर आदरपूर्वक खड़ा तो हो जाएगा !

थांगुक्षेत्र : सब जगह प्रार्थना ध्वज दिखते हैं। उन ध्वजों में काष्ठ ठप्पों से प्रार्थनाएं अंकित की गई हैं, ये ठप्पे मठों में मिल सकते हैं। हम लोग जो विज्ञान में आस्था रखते हैं, क्या इन सब पर विश्वास करते हैं, या टालस्टाय के साथ हम कहें, "विज्ञान जो परम सत्य का अनुमानित ज्ञान है", या वैज्ञानिकों के साथ छिपकर

प्रार्थना करें, "हे भगवान, यदि तू है, मेरी आत्मा (यदि कहीं है) की रक्षा कर।"

'सिक्किम के पक्षी' की बात करते ही मुझे 1955 में चोग्यल के राज्य के पक्षिवैज्ञानिकीय सर्वेक्षण के दौरान घटित एक कष्टदायक घटना याद आती है जिस समय मैं 'लाचैन' में था, उस क्षेत्र में एक भयंकर भूकंप आया था जिसके परिणामस्वरूप चारों ओर के पहाड़ों में भयंकर भूस्खलन हुए थे। (लाचैन) यहां तथा चुमथांग के बीच, तेज ढलान पर जाता हुआ टट्टू पथ, सैकड़ों फुट सीधे नीचे तूफानी नदी में समाहित हो गया था। कुलियों और टट्टुओं ने बट्टड़ों को कुचल-कुचलकर, मूल स्थान से थोड़ा-सा नीचे की ओर, एक संकरी पगडंडी-सा, विकल्प बना दिया था जो तब भी भयंकर था। वह कितना भयंकर था, वह मुझे कुछ दिनों बाद पता चला जब मुझे उस पर आना पड़ा। हमेशा की तरह अपना रकसैक लादकर, दूरबीन लेकर, सभी कुलियों के आगे, मैं अकेला चल पड़ा ताकि रास्ते में कुछ पंछिनिहारन कर सकूं। उस कगार पर तथाकथित बनी संकरी पगडंडी पर मैं थोड़ी कठिनाई से चला तब थोड़ा आगे ऐसी जगह पर पहुंचा जहां ऊपर की पहाड़ी से कंकड़ तथा रेत मिला मलबा आकर इकट्ठा हो गया था किंतु इतना गीला तथा ढीला था कि वह स्वयं धीरे-धीरे नीचे की ओर खतरनाक ढंग से खिसक रहा था। यह ढीले मलबे का टुकड़ा कोई दो मीटर ही चौड़ा था, किंतु उसके पार जाना भी तो था। उस मलबे के साथ खिसककर नीचे नदी में गिरने की आशंका से मैं भयाक्रांत हो गया तथा एक अजीब-सा चक्कर दिमाग में आया और मैं वहीं जैसे जड़वत हो गया। मैं आगे भी नहीं जा सकता था और पीछे भी नहीं मुड़ सकता था अतएव मैं कुलियों की प्रतीक्षा में वहीं बैठ गया यह सोचे बिना कि कितनी देर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। लगभग आधा घंटे की उस प्रतीक्षा में उस मलबे के वाहक पट्ट[1] सरीखे चलने को देखने से तथा उस अतल गह्वर के भय से कुछ विचित्र-सा सम्मोहन प्रभाव मुझ पर पड़ा तथा मेरा आत्मविश्वास जैसे झिर-सा गया। इसलिए जब लदा-फंदा पहला कुली मुझे दिखा तब मुझे बहुत राहत मिली। जब उसने मुझे इस छायाहीन विचित्र से स्थान पर आराम करते हुए देखा तो कुछ चकरा गया, किंतु जब मैंने उसे इशारे से खिसकता मलबा दिखलाया तब उसे समझ में आया। मुझे एक हाथ से आवेशहीन भाव से पकड़ते हुए उसने उस खिसकते मलबे को खटखट पार कर लिया, जैसे कि यह उसका रोज का काम हो। बाकी कुली भी आए तथा उन्होंने यह गौर तक नहीं किया कि कहीं कुछ गड़बड़ है। वे उस सरकते मलबे पर इस तरह चल रहे थे कि जैसे वह वहां था ही नहीं। अब जब बाद में, उस घटना के विषय में सोचता हूं तो देखता हूं कि मैं उस पर गर्व तो कर ही नहीं सकता, बस

1. वाहक पट्ट (conveyor belt)

उससे मेरे अहम को गहरा धक्का लगा है।

एक और समय मुझे ऐसा ही किंकर्तव्यविमूढ़ करने वाला अनुभव हुआ जब मुझसे न तो आगे जाते बनता था और न पीछे। और इस समय तो मुझे पूरी चेतावनी दे दी गई थी। आंशिक रूप से अपनी बहादुरी का प्रदर्शन करने के लिए, मैंने ही अविवेकी हठ किया था, कि आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के विज्ञान म्यूजियम की लगभग 100 फुट ऊंची मीनार पर चढ़कर रोशनदानों में घोंसला बनाती 'बतासियों' को देखूंगा। सन् 1948 से डेविड लैक तथा उनकी निडर पत्नी उन बतासियों का अध्ययन कर रहे थे। इस कालजयी अध्ययन के परिणाम लैक की मनमोहक पुस्तक 'मीनार में बतासियां'[1] (प्रकाशन : 1956) में उल्लिखित हैं। इमारत के ऊपरी भाग से यह मीनार लगभग 60 फुट ऊपर उठती है। यहां से मीनार की प्रथम तल तक की खड़ी चढ़ाई कुंडलीकृत खड़ी तथा संकरी सीढ़ियों से करनी पड़ती है जिसका बीच का भाग निबिड़ अंधकार में डूबा रहता है। प्रथम छत से एक ऊर्ध्वाधर लोहे की बिना हत्थों की सीढ़ी लगभग 30 फुट तक ऊपर द्वितीय तल पर जाती है। वहां से पुनः ऐसी ही भयानक सीढ़ी, 30 फुट से थोड़ी कम, तृतीय तल पर ले जाती है, यहां पर पार्श्व में कांच के डिब्बों में घोंसले देखे जा सकते हैं। यह सारे विवरण मैंने यहां पर मात्र इसलिए दिए हैं कि मैं अपनी भयाक्रांत स्थिति को न्यायोचित ठहरा सकूं। जब मैंने पहली बार बिना हत्थों की आतंकित करने वाली सीढ़ी से उस मीनार के केंद्र में से नीचे झांका तब मेरी दुर्दम्य लालसा हुई कि मैं हार मान लूं। यदि डा. लैक नीचे से मेरी प्रगति को भयभीत हुए न देख रहे होते तो मैं खुशी खुशी हार मान लेता। किंतु प्रारंभ में जब उन्होंने मुझे रोका था तब मैंने मूर्खता से उनके सुझाव को नहीं माना था, अतएव अब तो यह मेरे सम्मान का प्रश्न था, इसलिए 'चाहे जो हो' वाली भावना से प्रेरित हो अपनी कमर कसकर मैं ऊपर तक चढ़ ही गया था, यद्यपि बीच में एक स्थिति में भय से जड़वत हो बेहोश-सा होने लगा था।

1. 'मीनार में बतासियां' (Swifs in a Tower)

14
राजहंस नगर[1]

प्रकृति वैज्ञानिकी के धरातल पर मुझे अनेक राजाओं तथा राजकुमारों को, दूसरों की अपेक्षा, अधिक निकट से जानने के अवसर मिले। कच्छ के महाराव विजयराजजी ऐसे ही एक राजा थे। गद्दी पर बैठने के समय उनकी उम्र 60 वर्ष थी। चालीस वर्षों तक वे युवराज के पद पर थे जहां से वे अंतहीन लगनेवाली प्रतीक्षा बहुत धैर्यपूर्वक कर रहे थे। उनके पिता महाराव खेंगरजी का स्वास्थ्य तथा शरीर सशक्त था। उनकी स्वामिभक्त प्रजा, दो संततियों से उन्हें कच्छ का पुरातन तथा अविनाशी कीर्ति स्तंभ मान रही थी। पिता तथा पुत्र दोनों ही उत्साही शिकारी थे, पिताजी बड़े शिकार में रुचि रखते थे तथा पुत्र अन्य शिकार के साथ पक्षियों में भी रुचि रखते थे। दोनों को प्रकृति का अच्छा ज्ञान था। बंदूक तथा राइफल के अच्छे निशानेबाज होने के साथ विजयराजजी अपनी युवावस्था में टेनिस के दक्ष खिलाड़ी थे। वे अखिल भारतीय टेनिस मैचों में हमेशा भाग लेते तथा अक्सर जीतते भी थे क्योंकि अनेक प्रसिद्ध खिलाड़ी 'डबल्स' में उनका 'पार्टनर' बनने को लालायित रहते थे।

महाराव विजयराजजी से मेरा परिचय 1942 में हुआ जब वे गद्दी पर, एक लंबी अवधि के पश्चात आसीन हुए ही थे। तब तक उनमें युवा-ऊर्जा थोड़ी कम हो चुकी थी तथा शरीर स्थूलकाय, आरामतलब हो चुका था, यद्यपि इसमें घुटने की चोट के कारण व्यायाम कर सकने की अक्षमता भी एक बड़ा कारण थी। शारीरिक परिश्रम तथा भागदौड़ वाले शिकार भ्रमण उन्होंने कम कर दिए थे, छोटे शिकार में तथा अपने राज्य के पक्षिनिहारन में उनकी विशेषज्ञता ईर्ष्या योग्य थी। इस तरह उनके आमंत्रण पर तथा उनकी उदार आर्थिक सहायता के आधार पर मैंने उनके रमणीय राज्य का पक्षिसर्वेक्षण किया था। मैंने उनको अपनी पुस्तक 'भारतीय पक्षियों की पुस्तक' के समान 'कच्छ के पक्षी' पुस्तक लिखने का आश्वासन भी दिया था, क्योंकि मेरी वह पुस्तक उन्हें बहुत पसंद आई थी। 1943 में भी विश्वयुद्ध बराबर था तथा पेट्रोल पर राशन होने के कारण निजी परिवहन ठप्प हो गया था।

1. राजहंस नगर-(Flamingo City)

शासक राजाओं को, एक विशेष अनुग्रह के रूप में अतिरिक्त पेट्रोल मिलता था। अतएव कच्छ में पक्षिसर्वेक्षणों हेतु गमनागमन सुचारु रूप से हो सका था, अन्यथा अनेक दुर्गम दूरस्थ स्थलों तक पहुंचना कठिन हो जाता। शिविर बदलते समय मेरा दल कुछ समय, प्रबंध हेतु, भुज में (दो-तीन दिन) अवश्य बिताता था। हर बार महाराव मुझे अपने संध्या भ्रमण में साथ देने के लिए आमंत्रित करते थे। वे अपने राज्य के किसी न किसी मनोहर स्थल पर हवाखोरी के लिए जाते थे। अधिकतर सिवाय एक वर्दीधारी नौकर के वे अकेले होते थे। नौकर एक थरमस, शराब की बोतल, बादाम-पिस्ते सरीखी सामग्री रखता था, जिसकी आवश्यकता हिज़ हाइनैस को, पक्षिसर्वेक्षण पर मेरी प्रगति सुनते समय या चर्चा करते समय, अपनी मानसिकता को आनंदमय बनाए रखने के लिए होती थी। उस समय मुझे उनके व्यवहार में एक बात विशेषरूप से खटकी, क्योंकि अन्यथा हर समय वे शिष्टाचार तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार करते थे। इन सांध्य भ्रमणों में एक भी बार उन्होंने मुझसे वह खाने के लिए नहीं कहा जो वे 'हृदयहीन' होकर चकर चकर चबा रहे थे जबकि पुनर्भरण करने वाला सेवक उनके चरणों के निकट ही था। यह तो और भी अजीब तथा अकल्पनीय लगता है कि उनके मन में ऐसा करने का विचार तक नहीं आया होगा, यद्यपि तथ्य यही है।

मेरी डायरी का एक उल्लेख मुझे उस समय कच्छ में प्रचलित एक पिछड़ी सामंतवादी परंपरा की फूहड़ अभिव्यक्ति का स्मरण कराता है। पहली बार, महाराव के अनुरोध पर उनसे चर्चा हेतु मिलने जब महल पहुंचा तब पता लगा कि प्रत्येक 'देसी' के लिए यह अनिवार्य था कि महल के मुख्य प्रवेश द्वार पर वह अपने वाहन, कार या घोड़ागाड़ी से उतरकर पोर्च तक के पचास मीटर पैदल तय करे। मुझे बहुत क्रोध आया किंतु तब तक किसी भी उचित प्रतिक्रिया के लिए बहुत देर हो चुकी थी। यह आदेश सभी भारतीयों पर लागू होता था चाहे उसका पद कोई भी हो, चाहे वह वहीं का वासी हो या बाहर से मिलने आया हो, वह कर्मचारी हो या अन्य कोई हो। इस आदेश की क्रूरता इतनी व्याप्त थी कि उनका दीवान (मुख्यमंत्री) जो भारतीय था, जब शासकीय कार्य के लिए भी हिज़ हाइनैस से मिलने आता था उसे भी इसी तरह 'रेंगकर' जाना होता था। जबकि कोई भी यूरोपीय या एंग्लो इंडियन, चाहे उसका व्यक्तित्व कितना भी संदेहास्पद हो, बिना किसी प्रतिरोध के सीधा पोर्च तक ड्राइव कर सकता था और शायद वहां खड़े बंदूकधारी सैनिक से सम्मानार्थ सलाम भी उसे मिलता होगा। मेरे सर्वेक्षण के समय जो दीवान शासन में थे, वे बहुत ही सम्मानित वरिष्ठ भारतीय नागरिक थे किंतु उन्हें इस अपमानजनक व्यवहार को सहना पड़ता था, जबकि एक अतिसाधारण एंग्लो इंडियन कस्टम इंस्पेक्टर सीधा पोर्च तक कार में जा सकता था। जब मुझे मुख्य द्वार पर उतरने के लिए कहा गया तब मैंने उसका प्रतिरोध किया, तथा बाद में महाराव से भी इस अपमानजनक

विषम व्यवहार के प्रति स्पष्ट शब्दों में अपना विरोध जताया। मुझे आशा है कि उसका कुछ प्रभाव पड़ा होगा, किंतु मुझे दुबारा महल जाने का अवसर नहीं मिला।

महाराव, महाराजा तथा नवाबों के वंश, जो अब लुप्त हो चुके हैं, की स्वयं तथा आपस की आदतों तथा व्यवहारों का अवलोकन करते समय (भारतीय राज्यों में पक्षिसर्वेक्षण के दौरान) एक विशेष विचित्रता देखी जिस पर मुझे हंसी आती है—ये राजा आपस में आमने-सामने बात करते समय एक-दूसरे को बड़ी आडंबरपूर्ण शैली में संबोधित करते थे यथा 'Your Highness' (यौर हाइनैस), हर बार, चाहे वे पुराने मित्र हों, समसामयिक हों या संबंधी हों। जब वे अपने से किसी 'निम्न कुल' के व्यक्ति से बातें करते समय अपने 'भाई हाइनैस' की बातें करते हैं, तब बहुत सतर्कता से, ऐसा कहते हैं जैसे कोई प्रसंग के बाहर की या बहुत छोटी बात कह रहे हों, जैसे कोष्ठक के भीतर की बात कहते हुए, इतनी महत्वपूर्ण बात सरका देते हैं यथा, 'आप तो जानते हैं कि वह 13 तोप है और मैं 17 तोप' और तत्पश्चात अपनी मूल बात चालू रखते हैं।

कच्छ तो बहुत पुराना सूखा-पीड़ित क्षेत्र है, तथा मानसून के लगातार खराब होने पर राजहंस (क्रुंच, फ्लैमिंगो) अपना प्रजनन 2-3 वर्षों के लिए रोक देते हैं। इन पक्षियों को अपने प्रजनन क्षेत्र में 6" से 8" की इष्टतम गहराई चाहिए ताकि वे उनके बीच अपने लिए छोटे-छोटे टीले बना सकें। यदि मानसून खराब या कमजोर हो गया तब इतना गहरा पानी उन्हें अपने प्रजनन क्षेत्र में नहीं मिल पाता और थोड़े समय बाद पानी प्रजनन क्षेत्र को छोड़कर चला जाता है तथा सितंबर-अक्तूबर तक प्रजनन क्षेत्र सूखा हो जाता है, और सामान्यतया यही समय उनके प्रजनन प्रारंभ करने का होता है। यदि मानसून में बारिश ज्यादा हो गई तब (जैसा 1944 में हुआ था) प्रजनन क्षेत्र में पानी की गहराई बहुत अधिक हो जाती है तथा इष्टतम स्तर तक आने के लिए अधिक समय लग जाता है। अतएव, एशिया, यूरोप, अफ्रीका तथा नूतन विश्व के प्रजनन क्षेत्रों के विपरीत कच्छ की ऋतुएं तथा फलस्वरूप 'भोज' एकदम बंधे समयों पर न होकर यादृच्छिक अनियत समयों पर होते हैं। यह सितंबर/अक्तूबर से लेकर मार्च/अप्रैल के अंतराल में कभी भी हो सकते हैं, या पूर्णतया न ही हों। शेष अवधि में यह नगर वीरान हो जाता है क्योंकि प्रजनन पश्चात वे अपने नवपंखी शावकों को साथ में लेकर, छोटे या विशाल दलों में, आहार की तलाश में, दूर-दूर के तटीय पृष्ठ जलाशयों पर, लवणभूमि पर जैसे पॉइंट कैलियर, सौराष्ट्र तथा श्रीलंका तक जाते हैं। अप्रजनन काल में वे राजस्थान की सांभर, उड़ीसा की चिल्का आदि खारी झीलों पर भी जाते हैं।

कच्छ राजहंसों के अध्ययनार्थ मेरी विशेष उत्कंठा को जानते हुए तथा प्रजनन क्षेत्रों की मेरी पिछली यात्राओं की असफलता के प्रति सचेत रहते हुए, विशाल कच्छ-रन में राजहंसों की गतिविधियों पर महाराव ने विशेष निगरानी रखवाई थी।

और एक दिन अप्रैल 1945 में मुझे उनके द्वारा भिजवाया एक्सप्रेस तार मिला। उस समय मैं कैलाश-मानसरोवर की पक्षिवैज्ञानिकीय तीर्थयात्रा की तैयारी में व्यस्त था क्योंकि उसकी प्रयाण तिथि 13 मई थी। राजहंस नगर में उस समय प्रजनन कार्य तीव्रतम गति से चल रहा था अतएव मुझसे शीघ्रातिशीघ्र पहुंचने का आग्रह किया गया था। इतने दुःसाध्य समय में भी, इस दीर्घ प्रतीक्षित सुअवसर को मैं छोड़ नहीं सकता था। दो दिन में ही मैं विमान से भुज पहुंचा। उस समय विमान सेवाएं अपनी आरंभिक अवस्था में थीं तथा युद्धकाल के कारण अविश्वसनीय भी। किंतु रेल सेवाएं तो दयनीय अवस्था में थीं क्योंकि कई जंक्शनों पर रेल बदलनी पड़ती थी, काठियावाड़ की विभिन्न रियासतों की अपनी-अपनी छोटी-छोटी रेल सेवाएं थीं। इनकी विभिन्नता में रियासतों के राजाओं की प्रतिष्ठा अभिव्यक्त होती थी। इन रेलों के समय आपस में संबद्ध नहीं थे, जो प्रत्येक रियासत के राजा के स्वतंत्र अस्तित्व का परिचायक थे। इसके अतिरिक्त रियासतों की रेलें समय-प्रतिबद्धता को भी संभवतया अपनी स्वतंत्रता का विरोधी मानती थीं। अतएव रेलों को पकड़ने के लिए भाग्य की आवश्यकता होती थी। उन सब कष्टों के बाद, अंत में जामनगर के नवलाखी में रात के समय तंबुओं में रुकना पड़ता था। नवलाखी के आसपास खुली हवा में पाखाना करने की सबको स्वतंत्रता थी। दूसरे दिन सुबह कच्छ स्थित कांडला के लिए नाव-यात्रा होनी थी। तत्पश्चात भुज के लिए चार घंटों की अति लंबी, अति धीमी छोटी लाइन की रेल में यात्रा करनी पड़ती थी। रेल द्वारा बंबई से भुज तक पहुंचने के लिए कुल चालीस घंटे लगते थे।

भुज में, सर पीटर क्लटरबक से मिलने का सौभाग्य मिला। सर पीटर भारतवर्ष के वनों के इंस्पेक्टर-जनरल रह चुके थे, तथा उसके बाद सेवानिवृत्ति पर कश्मीर राज्य के चीफ कंजरवेटर ऑफ फारेस्ट और उसके बाद महाराव विजयराजजी के अनुरोध पर कच्छ के वन विभाग का पुनर्गठन कर रहे थे। अपनी समस्त भारतीय सेवा में अपनी अत्यधिक असाधारण वन-सेवा, निष्ठावान प्रकृति वैज्ञानिक तथा संरक्षक के रूप में विख्यात थे। इस समय वे युवा तो नहीं रह गए थे, तथा गर्मी की कष्टदायक ऋतु एवं यात्रा की दुष्कर कठिनाइयों के बावजूद, उन्होंने महाराव से मेरे साथ राजहंस नगर जाने की तीव्र इच्छा अभिव्यक्त की। नीर में रात्रि के पड़ाव हेतु कच्छ दरबार ने पर्याप्त विलासपूर्ण शिविर का प्रबंध किया था। भुज से कवड़ा होते हुए, आंशिक यात्रा कार से तथा आंशिक ऊंट (110 कि.मी.) से, नीर पहुंचे थे। उस रात सर पीटर के साथ मेरा रात्रि भोज था; मेजपोश दमिश्क का था, कटलरी चांदी की तथा वेटर्स उचित वर्दी में ! मुझे याद है कि रात्रि भोज-साक्षात्कार में उनसे मेरे संबंधों का प्रारंभ बहुत उग्र राजनैतिक विवाद के रूप में हुआ। महात्मा गांधी तथा उनके सत्याग्रह आंदोलन ने विश्वयुद्ध के काल से भी दस-पंद्रह वर्षों पूर्व से भारतीयों तथा ब्रिटिशों के पारस्परिक संबंध अत्यधिक कड़वे कर दिए थे। बड़े तथा छोटे

सरकारी अधिकारी तथा अन्य सभी ब्रिटिश भारत में बदनाम हो गए थे। राजद्रोही चूहा गांधी (जैसा संबोधन मैनहर्ट्जन ने उन्हें दिया था) तथा विश्वासघाती अनुचर नेहरू के उपदेशों तथा दुष्कृत्यों पर सभी गोरे उबल रहे थे—विशेषकर नेहरू पर क्योंकि हैरो तथा कैंब्रिज में उपयुक्त शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी उसने उनके साथ विश्वासघात किया। इस तरह की बातों से सर पीटर ने उस संध्या इस विषय पर अकारण अपना बोझ हल्का करना प्रारंभ किया। तत्पश्चात उन्होंने अपनी कर्कशता का दबा हुआ विष, अकारण, मेरे ऊपर उंड़ेलना शुरू किया। जैसी स्वीकारोक्ति मैं पहले कर चुका हूं, मैं अपने मीठे स्वभाव के लिए कभी विख्यात नहीं था, तब यहां तो अपना बांध तोड़ने के लिए पर्याप्त कारण थे। मुझे आशंका है कि, संभवतया मैंने उस स्थिति की उपयुक्तता से भी अधिक चोट करने वाली बातें कहीं, किंतु उसके फलस्वरूप सर पीटर तथा मेरे बीच का वातावरण सदा के लिए साफ हो गया। मैंने उनसे स्पष्ट कहा कि मेरा उद्देश्य उन्हें उनकी दृढ़ धारणाओं से हटाने का कतई नहीं है, तथा उनके लिए भी मुझे बदलने का उद्देश्य सफल नहीं होगा—स्थिति स्पष्ट थी। हम दोनों की पक्षिजीवन तथा वन्य जीवन में एक समान गहरी रुचि है, तब क्यों न हम लोग अपने संबंध को यहीं तक सीमित रखें तथा राजनीति को राजनीतिज्ञों के लिए छोड़ दें। इस दुर्भाग्यपूर्ण किंतु निश्चयात्मक मुठभेड़ के बाद मैंने देखा कि सर पीटर अद्वितीय मनोहर तथा आनंदप्रद साथी हैं। सन् 1958 के लगभग उनकी मृत्यु तक, हमारे बीच मित्रता तथा परस्पर सम्मान की भावना, जो उस राजहंस-यात्रा के समय उपजी थी, बढ़ती ही गई। इंग्लैंड में उनकी मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही मुझे उनसे मिलकर खुशी हुई थी। हमारी मित्रता को बढ़ाने में उनके प्रिय पुत्र ब्रिग्रेडियर जे.ई. (जैक) क्लटरबक एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक थे। वे 1948 में जी.आई.पी. रेलवे के प्रमुख अभियंता के पद से, लंबी सराहनीय सेवा के उपरांत सेवानिवृत्त हुए थे, तत्पश्चात उन्होंने समरसैट, इंग्लैंड में कृषक का नया जीवन प्रारंभ किया। मेरे लिए जैक सभी तरह से प्रिय तथा प्रशंसनीय बंधु थे। वे भारतीय जंगलों के लिए 'पागल' थे, जहां हम लोगों ने, समय-समय पर शिविर, शूटिंग, ट्रैकिंग तथा प्रकृति प्रेम का अतीव आनंद लूटा था। वे मेरे निकटतम तथा आंख के तारे के समान प्रिय अंग्रेज मित्रों में से एक थे।

सन् 1896 में राजहंस (क्रुंच) नगर का उल्लेख पहले पहल हुआ था। वहां राजहंस वर्ष प्रतिवर्ष रहते आए हैं, वह पारंपरिक राजहंस नगर नीर के उत्तर-पूर्व में लगभग 10 कि.मी. की दूरी पर पश्चिम द्वीप की नोक पर स्थित है। वह स्थल रण का सागर के समान आकृतिहीन समतल था।* राजहंसों के प्रजनन क्षेत्र में

---

* (समुद्रतट का वह समतल भाग वर्ष में एक बार समुद्री जल, वर्षा के जल सहित डूब जाता है, और फिर जिसकी सतह सूखकर खारी पपड़ी के समान हो जाती है, रण कहलाता है—अनुवादक)।

प्रजनन काल में पहुंचने के लिए बहुत दूर तक पैदल, टट्टू या ऊंटों पर वारिकंक चाल से जाना पड़ता है, उस समय वहां टखने से लेकर कमर तक गहरा दलदल होता है। यह दलदल प्रगाढ़ खारे पानी तथा रेत से मिलकर फिसलन आदि कठिनाइयां तो पैदा करता ही है, साथ में इसके ऊपर पतली नमक की धोखेबाज पपड़ी जमा रहती है, तथा नमक के स्फटिक टूटे कांच के टुकड़ों के समान काटने की ताकत रखते हैं। मरुस्थली तेज धूप में यह नमक के स्फटिक ताजे हिमपात के समान अंधा करने वाली चकाचौंध करते हैं। टट्टुओं के टखने, कभी-कभी लवण स्फटिकों की पपड़ी में घुसने से कट-फट जाते हैं। अप्रैल माह का तापक्रम 45° से. से भी अधिक था किंतु सारे दिन की शीतल हवा की कृपा से वह उतना गरम नहीं लग रहा था जितना कि थर्मामीटर बतला रहा था। रात के समय आकाशदर्शी तंबुओं में सोते समय चादर ओढ़ना सुख दे रहा था। चरम प्रजनन के वर्ष में, राजहंस नगर में उनकी आबादी की वास्तविक गणना केवल इसी वर्ष हुई, इसके बाद आज तक दूसरी ऐसी गणना नहीं हो पाई जो विश्वसनीय रूप से सही थी। उस समय शुक्ल पक्ष की निर्मल उजली रातों की इष्टतम स्थितियों में पक्षियों का रात्रि में गमनागमन तथा व्यवहार का अध्ययन भी किया जा सका था। उस उत्तेजक कार्य-स्थल में हम लोग केवल दो रातें ही रुक पाए क्योंकि ताजे पानी, पकाने के लिए ईंधन तथा जानवरों के लिए चारे की कमी ने हमारा अधिक समय के लिए रुकना असंभव कर दिया था। अधिक रुकने के लिए सावधानीपूर्वक संयोजित पिछले 'बंदोबस्त' को और अधिक व्यवस्थित करना पड़ता। सर्वप्रथम राजहंसों के आवासक्षेत्र को मापा, फिर 90×90 मीटर के अनेक प्रतिदर्श प्लाटों को यादृच्छिक रूप से उस क्षेत्र में निशानी लगाकर परिसीमित किया गया, घोंसलों के समूहों के बीच के कोरे स्थलों का हिसाब भी रखा गया और तब मैंने गणना कर निष्कर्ष निकाला कि निवासित घोंसलों की कुल संख्या, उस नगर में, 1,04,758 है। प्रत्येक घोंसले में दो वयस्क तथा प्रत्येक तीन घोंसलों में दो शावकों तथा प्रजनन न करने वाले वयस्कों तथा किशोरों को जोड़ते हुए राजहंस नगर की आबादी लगभग पांच लाख पक्षी होगी। अर्थात एशिया में 'विशाल राजहंसों' की यह कालोनी विशालतम है, तथा विश्व की विशालतम कालोनियों में से एक है। मुझे बहुत पहले समझ में आ गया था कि कच्छ के विशाल रण में जैव वैज्ञानिक आश्चर्यों की संभावना बहुत है तथा एक स्वतंत्र संपूर्ण वैज्ञानिक गवेषणा की आवश्यकता पूरी तरह न्यायोचित है, और एक पर्याप्त तथा विस्तृत सर्वेक्षण मैं स्वयं नहीं कर सका, इसका मुझे दुख है। राजहंस नगर की एक अनुवर्ती यात्रा में, सौभाग्य से मैंने, इसके उपनगरों में 'चुटीला कुसिया' (एवोसैट, *Recurvirostra avosetta*) की प्रजनन कालोनी की खोज की—इस उपमहाद्वीप की सर्वप्रथम खोज; और एक और अवसर पर 'गुलाबी हवासीलों' (रोज़ी पैलिकन) (*Pelecanus onocrotalus*) की नीड़न कालोनी की खोज की, यह

भी सर्वप्रथम। यह कालोनी गुलाबी हवासीलों ने राजहंसों के छोड़े गए घोंसलों में बनाई थी किंतु नगर की परिधि पर।

मेरे कैमरे में ऐन वक्त पर (भुज से निकलने से पहले) कुछ गड़बड़ी हो गई थी, अतएव महाराव ने अपना कैमरा मुझे दिया था। यह निश्चित करने के लिए कि उनका कैमरा मेरे हाथ में सही काम करे, महाराव विजयराजजी ने, मेरा ख्याल करके, भुज से अपना 'राजकीय फोटोग्राफर' अली मुहम्मद, पूरे साज-सामान तथा एक सहायक के साथ भेजा, यद्यपि सहायक की उपयोगिता मेरी समझ में नहीं आई। दोनों फोटोग्राफर तथा उनके साज-सामान मिलकर दो ऊंटों के भार के बराबर थे। उनका पुरातन उपकरण—ठोस सागौन का बड़ा चौड़ा 'पूरी-प्लेट' वाला स्टूडियो कैमरा लगता था कि 'विलियम द कांकरर' के जमाने का या उनके आसपास का 'एंटीक फर्नीचर' हो। इसका 'शटर' यांत्रिक नहीं था, वरन स्वयं फोटोग्राफर लैंस के ऊपर से एक टोपी बड़ी अदा से निकालकर, फिर लगा देता था। वहां की तेज रोशनी में, फोटोग्राफर की सारी अदाकारी तथा फिल्म के धीमी होने के बावजूद 'नेगेटिव' अति-प्रकाशित (ओवर एक्सपोज्ड) हो जाते थे। स्पष्ट रूप से उस कैमरे का इतिहास था, और बहुत संभव है कि यह वही कैमरा हो जिससे महाराव खेंगरजी ने सन् 1896 में रण में राजहंसों (विशाल क्रुंचों) के प्रजनन का प्रमाण देने के लिए फोटो लिया हो। न केवल इस उपकरण को भारी काष्ठ त्रिपाद पर जमाने के लिए दो बलवान व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती थी वरन उसके जटिल सहयोगी कार्यकलाप के लिए भी उनकी आवश्यकता होती थी। इसका संचालन एक जल-जहाज के समान होता था, और इसीलिए एक प्रशिक्षित सहायक आवश्यक था। प्रमुख फोटोग्राफर (कैप्टन) अपने को विशाल काले कपड़े में ढांककर आंखों को संकेंद्रण-पर्दे[1] पर चिपकाता था। अपनी इस स्थिति से (कैप्टन का जहाज पर ब्रिज) वह मानो नीचे 'एंजिन रूम' को आदेश देता था कि संकेंद्रण घुंडी[2] को थोड़ा इस तरफ या थोड़ा घुमाए ताकि संकेंद्रण ठीक हो। स्पष्ट है कि संकेंद्रण घुंडी तक कप्तान का हाथ नहीं पहुंच सकता था, इसलिए प्रशिक्षित सहायक की आवश्यकता पड़ती थी। घोंसलों की कालोनी में जब कैमरे को घटनास्थल पर स्थापित किया गया तब उस विशाल दलदली प्रांगण में वह एक छोटा-मोटा मकान लगता था। और जब वहां पर हवा जोर से चलती थी तब कैप्टन के सिर को ढांके उसका काला कपड़ा हवा में फड़फड़ करता था, तब मैं सोचता था कि इसमें पक्षियों के अच्छे चित्र (फोटो) कैसे आ सकेंगे ! उस समय मैं भी (!) कैप्टन पर कुटिल हंसी मजाक कर लिया करता था, और उसने वह सब मजाक आश्चर्यजनक हास्यबोध से बर्दाश्त

1. संकेंद्रण-पर्दे (focussing screen)
2. संकेंद्रण-घुंडी (focussing knob)

किया था। हम लोग जब भुज लौटे और उसने नितांत अप्रत्याशित उत्तम परिणाम अपने डार्करूम से तैयार किए तब मुझे समझ में आया कि वास्तव में हंसी मेरी हुई थी तथा यह भी कि अच्छे फोटो तैयार करने के लिए अच्छे कैमरे के अतिरिक्त भी कुछ और चाहिए होता है।

'कच्छ के पक्षी' पुस्तक, जिसमें डी.वी. कोवैन के बीस रंगीन चित्र हैं, का सारा खर्च कच्छ दरबार ने दिया था। उसकी 1,000 प्रतियां, 1945 में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने कच्छ शासन के लिए प्रकाशित की थीं, गौरतलब है कि वह समय द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण बहुत कठिन समय था। महाराव ने उसकी 500 प्रतियां अपने पास, अपने अतिथियों को भेंट करने के लिए रख ली थीं। दुर्भाग्य से उन्हें असावधानी से एक सीलन वाले कमरे में रखा गया जहां दीमक ने उन्हें खा डाला। इस पुस्तक की भारत तथा विदेश में समीक्षकों ने बहुत प्रशंसा की थी। उस पुस्तक की कीमत, नाममात्र 20 रु. रखी गई थी, तथा सारी प्रतियां तुरंत ही बिक गई थीं। बाद में उसकी पुरानी प्रतियां $100 में भी बिकीं।

कच्छ-पक्षिसर्वेक्षण के समय हमारा एक शिविर छोटे-से मरुस्थली तथा गरीब गांव में था। रपड़ गांव में कुछ मड़ैया थीं, और वह गांव राज्य की पूर्वी सीमा पर स्थित था तथा 'लघु रण' को स्पर्श करता था। मिट्टी के परकोटे से घिरे उस गांव में तुलनात्मक रूप से केवल एक ही इमारत थी जो ठोस थी—पुलिस स्टेशन जिसमें दो पुलिसमैन थे और दौरा करने के लिए ऊंट। इनके साथ एक 'पग्गी' भी होता था। पग्गी का मुख्य काम गांव का चक्कर लगाना होता था, एक बिलकुल सुबह और दूसरा सूर्यास्त के समय आंखें जमीन पर गड़ाए, आदमियों के या जानवरों के पदचिह्नों का अवलोकन करते हुए यह पहचानने के लिए कि पिछले अवलोकन के बाद कौन बाहरी ऊंट या आदमी गांव में आया या गांव से गया। ऊपर के आदेश से पुलिस थाने के उपयोग की अनुमति हमें मिल गई थी। रपड़ में इस 'लीक पकड़ने' वाली विलक्षण वन्यजाति पग्गी के संपर्क में आने का हमारा प्रथम अवसर था। (पग्गी-पग अर्थात पैर, पद या पदचिह्न)। पग्गियों में यह अद्भुत कौशल पैतृक परंपरा से आता है। वे अपने गांव के जीवों के पगचिह्नों को उतनी ही सूक्ष्मता से पहचानते हैं जितना उनके चेहरों को। वे पूरे आत्मविश्वास से (सही-सही) बतला सकते हैं कि फलां पगचिह्न गांव वाले जीव का है या बाहर वाले का। मरुस्थलों में ऊंटों की चोरी लोगों की प्रिय अभिरुचि है, अतएव इस तरह की 'लीक पकड़ना' पुलिसवालों के लिए गुमे हुए या चोरी किए गए ऊंटों, ऊंट चोरों तथा अन्य अपराधियों को पकड़ने में बहुत सहायता करता है। प्रत्येक दूरस्थ पुलिस थानों में एक या दो पग्गी पुलिस सेवा दल में रहते ही हैं। इन निष्णात 'ट्रैकर्स' (लीक पकड़ने वालों) की यह पैतृक विशेषता जो इन्होंने अनेक संततियों में सीखी है चमत्कारिक तथा सचमुच आश्चर्यजनक है।

कच्छ के तात्कालिक पुलिस इंस्पेक्टर जनरल खान बहादुर मैल्कम कोठावाला को राजस्थान के विभिन्न मरुस्थलीय क्षेत्रों के पग्गियों का अतुलनीय अनुभव था। उन्होंने रपड़ गांव सरीखे सीमांत गांव का ऊंट-चोरी का एक अनुभव सुनाया। इस ऊंट के अगले बाएं पैर में हल्का-सा लंगड़ापन था जो कि स्थानीय पग्गी के लिए, और केवल उसके लिए, विशिष्ट पहचान थी। एक रात वह ऊंट एक बाहरी व्यक्ति के साथ गायब हो गया, और जैसा कि पग्गी ने बतलाया वह बाहरी व्यक्ति एक दिन पहले आया था। उस पग्गी ने उस लीक का पीछा बहुत दूर तक किया, किंतु जब पथरीली जमीन आने से पगचिह्न भी गायब हो गए तब वह आगे न जा सका। दो वर्ष बाद वह पग्गी अपने गांव छुट्टी पर गया जो उसी पुरानी लीक की दिशा में था और काफी दूर था। जब वह अपने गांव में घूम रहा था तब उसने उसी ऊंट के पगचिह्न देखे जो उसने दो वर्ष पहले असफल रूप से, यद्यपि काफी दूर तक पकड़े थे। उसे अपने पर पूरा विश्वास था। साथ ही ऊंट के साथ जिस आदमी के पगचिह्न थे, वे उस व्यक्ति के नहीं थे जो उस ऊंट को लेकर भागा था। फिर भी उसने ऊंट के पगचिह्नों का पीछा किया और उसके मालिक के पास पहुंच गया। पूछने पर पता लगा कि इस व्यक्ति ने वह ऊंट कुछ माह पहले खरीदा था। उस बेचने वाले का भी पता लगा तथा उसके पगचिह्नों से यह पुष्ट हुआ कि यह वही आदमी था जो उस गांव से ऊंट लेकर भागा था। सामान्य तीसरे दर्जे की सभ्य परिचर्या के बाद उस व्यक्ति ने चोरी स्वीकारी। चोर तथा चोरी का माल खरीदने वाले दोनों को दंड मिला तथा ऊंट अपने असली मालिक के पास वापस आया। उन खान बहादुर के पास इन अपढ़ लोगों के लीक पकड़ने के बहुत सारे अविश्वसनीय रूप से चमत्कारिक किस्से थे। इतनी जटिल तथा कठिन कुशलता ये अपढ़ लोग, संततियों से पैतृक परंपरा से सीखकर उसमें निपुण हो रहे थे, और यह दुख की बात है कि आधुनिक परिष्कृत युक्तियों के आने से अपराधी पकड़ने की इस परंपरा का ह्रास हो रहा है, पग्गियों का महत्व कम हो रहा है, उस विशेषज्ञता का लोप हो रहा है, तथा पग्गियों की नौकरी तथा जीविका भी जा रही है।

ब्रिटिश इंडिया की जीव-जंतु शृंखला के 'स्तनधारियों' के खंडों का संशोधन आर.आइ.पोकॉक कर रहे थे। 1945 में उन्होंने बी.एन.एच.एस. को लिखकर पूछा कि क्या वे कच्छ के वन्य गर्दभों के कुछ ताजे नमूनों को प्राप्त करने का प्रबंध कर सकते हैं, क्योंकि ब्रिटिश म्यूजियम (प्राकृतिक इतिहास) में उनके क्रांतिक अध्ययन के लिए समुचित नमूनों की कमी पड़ रही है। वन्य गर्दभों का बड़ा आवास स्थल लघु रण है। अपने स्वभाव के अनुरूप, महाराव विजयराजजी ने उदारतापूर्वक सोसायटी को लघु रण में संग्रह अभियान के लिए सारी सुविधाएं प्रदान करना स्वीकार किया। मार्च 1946 में मैं गुजरात में पक्षिसर्वेक्षण कर रहा था इसलिए इस सुनहले अवसर का—बिरले तथा रुचिकर जानवर के अध्ययन का लाभ मैंने सहर्ष उठाया।

क्योंकि इसका जैववैज्ञानिकीय तथा पारिस्थितिकीय ज्ञान नहीं के बराबर उपलब्ध था। इससे मुझे लघु रण के पक्षियों के अध्ययन का भी अवसर मिलेगा जिसे मैं कच्छ-सर्वेक्षण के दौरान नहीं कर पाया था तथा मुझे ऐसा बहुत दिनों से लग रहा था कि लघु रण 'लघु क्रुंच'[1] का भारत क्षेत्र में एकमात्र प्रजनन क्षेत्र है।

बी.एन.एच.एस. के 46 : 472-77 (1946) के जर्नल में वन्य गर्दभ अभियान का वर्णन, उस जाति के व्यवहार तथा आहार के क्षेत्र-नोट तथा पांच संग्रहीत नमूनों के माप तथा अन्य विवरण प्रकाशित हुए थे। क्षेत्र में वन्य गर्दभ का वजन मापने के लिए एक मोटी कामचलाऊ तुला का निर्माण तत्काल ही करना पड़ा था--एक लट्ठे को वृक्ष की शाखा से तुला दंड की तरह लटकाया गया शा, तथा तुलादंड के एक छोर पर वन्य गर्दभ को लटकाकर, दूसरे छोर पर तीन या चार घरेलुओं (अर्थात मेरे शिविर के सहायक) को लटकाकर संतुलन देखा जाता था। बाद में शिविर सहायकों के वजन अलग अलग तौले गए तथा गर्दभों के कामचलाऊ वजन प्राप्त किए गए। पक्षिवैज्ञानिकीय दृष्टि से भी यह यात्रा बहुत उपयोगी रही। बानस नदी लघु रण में आते ही उपलब्ध समतल पर एकदम फैलती है। सौभाग्य से हम इस फैलाव पर पहुंचे जिसमें खारा पानी उथले में फैला हुआ था। इसमें हमने प्रवासी हंसकों जलचरों तथा अन्य पक्षियों का इतना भारी जमावड़ा देखा जितना न तो पहले कभी देखा था और न बाद में। किलोमीटरों दूर तक लाखों हंसक पानी को काला कर रहे थे। इनमें बहुलता 'पांगरसिर हरिताक्षिए'[2] की थी और साथ में 'खंतिया हंसकों'[3] के बड़े-बड़े झुंड यहां-वहां बिखरे हुए थे तथा और भी अनेक जातियां थीं जो दूर से स्पष्ट नहीं दिखलाई दे रही थीं। इन सबके अतिरिक्त कोई अस्सी 'गुलाबी हवासील' तथा 3-5 लाख छोटे क्रुंच (ज्यादा विशाल नहीं), अनगिनत 'सिकतिल'[4], स्टिंट्स[5], ललगोड़ा[6], हरितगोड़ा[7] आदि-आदि; तथा हजारों सामान्य एवं दैम्बाज़ैल क्रौंच[8] सभी वहां प्रवास से वापस लौटने के लिए इकट्ठे हो रहे थे। दुर्भाग्य से, मुझे वहां उपयुक्त समय पर जाने का अवसर फिर नहीं मिला।

---

1. 'लघु क्रुंच' (Phoeniconaias minor)
2. 'पांगरसिर हरिताक्षिए' (Common Teal, *Anas crecca*)
3. 'खंतिया हंसकों' (Shoveller, *Anas clypeata*)
4. अनगिनत 'सिकतिल' (sandpipers)
5. स्टिंट्स (stints)
6. ललगोड़ा (redshanks)
7. हरितगोड़ा (greenshanks)
8. दैम्बाज़ैल क्रौंच (Demoiselles Cranes)

15
भरतपुर

सन् 1935 के पहले, मैं भरतपुर के 'घाना' को महाराजाओं तथा उनके विशिष्ट तथा उत्कृष्ट अतिथियों की प्रसिद्ध आश्चर्यजनक निजी 'हंसक शिकारगाह' ही समझता था। उस वर्ष मेरी प्रेरणा से बी.एन.एच.एस. के क्यूरेटर और मेरे मित्र प्रेटर ने सर रिचर्ड टॉटनहैम, आई.सी.एस. को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने पूछा था कि राज्य की तरफ से प्रसिद्ध केवलादेव घाना झील में 'प्रारंभिक वन्य पक्षी वलयन केंद्र'[1] की स्थापना करने में क्या साधन मिल सकेंगे। सर रिचर्ड सोसायटी के उत्साही प्रकृति वैज्ञानिक-शिकारी सदस्य होने के साथ साथ वे महाराजा ब्रिजेन्द्र सिंह के वयस्क होने तक भरतपुर राज्य के प्रशासक रहे और ऐसे लाटसाहब कि जो कह दें वही कानून। इस तरह इस परियों के देश के समान सुंदर जलाशय से मेरा सर्वप्रथम परिचय हुआ था जो धीरे-धीरे मेरा 'अखाड़ा' बना, तथा परिणामस्वरूप सोसायटी का भारत में पक्षिप्रवासन का प्रमुख अध्ययन केंद्र बना। इसके पूर्व मध्यप्रदेश के धार राज्य के उद्यमी महाराजा सर उदयसिंह पुआर के 1926 में अग्रगामी प्रयोगों के अतिरिक्त, भारत में पक्षिवलयन[2] का लगभग कोई कार्य नहीं हुआ था। उस समय बी.एन.एच.एस. ने 'महाराजा धार को सूचना दें' टंकित अल्यूमीनियम के वलयों का, महाराजा के लिए, (प्रारंभिक रोल्स रायस कारों की विख्यात शैली में) हस्तशिल्प द्वारा निर्माण किया था। उपयुक्त अल्यूमीनियम की चादर में से उपयुक्त पट्टियां हाथ से काटी जाती थीं, फिर उनके कंटीले किनारों को रेती से चिकना किया जाता था तत्पश्चात संकेत-पद तथा क्रमांक का इस्पाती ठप्पों से उन पर अक्षर प्रति अक्षर टंकण किया जाता था। इस तरह यह कार्य धीमा तथा श्रमसाध्य था। उन परिस्थितियों में यह कार्य छोटे पैमाने पर ही किया जा सकता था। इतना होने पर भी तुर्किस्तान, साइबेरिया तथा सोवियत संघ के अन्य राज्यों जैसे अतिदूरस्थ स्थानों से प्राप्ति की इतनी उत्साहवर्धक रिपोर्ट मिलीं कि मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया

---

1. 'प्रारंभिक वन्य पक्षी वलयन केंद्र' (Pilot Wildfowl Ringing Centre)
2. पक्षिवलयन (bird ringing)

कि जब भी बी.एन.एच.एस. के पास उपयुक्त धन तथा सुविधाएं होंगी, 'पक्षिवलयन' सोसायटी का प्रमुख क्षेत्र कार्य होगा। सोसायटी ने धार-सफलता का प्रलोभन दिखलाकर, सिंध प्रशासन के कुछ नागरिक-सदस्यों की सहायता से थोड़े से धनी शिकारी जमींदारों को प्रवासी पक्षियों का वलयन करने के लिए प्रेरित किया। यहां भी वलयों की न्यूनता इस कार्य की तीव्र प्रगति में बाधा थी। 'बाम्बे नेचु.हि. सोसायटी को सूचना दें' संकेत पद टंकित वलय उस समय भी हाथ से ही बनाए जाते थे। सिंध में कम वलयन होने पर भी, 'प्राप्ति' आशातीत परितोषप्रद थी।

इस कार्य के लिए लंबी प्रतीक्षा करना पड़ी किंतु विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा इसकी संभावना, बिना मांगे, सौभाग्य से हमारी गोद में आ गई। कर्नाटक (द. भारत) के 'क्यसानुर' वन क्षेत्र में एक नए प्रकार का मस्तिष्क ज्वर का विस्फोट हुआ जिससे आदमी तथा बंदर मरने लगे। विषाणु अनुसंधान केंद्र[1], पुणे ने जानकारी दी इस मस्तिष्क ज्वर (इसे वानर रोग भी कहते हैं या KFD) का 'चिंचिड़' वाहक विषाणु ओम्स्क हैमरजिक फीवर तथा रूसी बसंत-ग्रीष्म मस्तिष्क ज्वर (RSS) से संबंधित है। इस विषाणु का अंतर्महाद्वीपीय वितरण, स्पष्ट लगा कि सोवियत संघ तथा भारत के बीच प्रवासी पक्षियों पर आवासी चिंचिड़ों द्वारा किया गया होगा। डब्ल्यू.एच.ओ. ने इस समस्या को गंभीरतापूर्वक लिया। मार्च 1959 में जिनेवा में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन 'साइंटिफिक ग्रुप ऑफ रिसर्च ऑन बर्ड्स एज़ डिसेमिनेटर्स ऑफ ऑथ्रोपॉड-बोर्न वाइरसैज़' हुआ था। इसमें कच्छ तथा उत्तर-पश्चिम भारत में पक्षिप्रवासन पर अध्ययन के लिए मुझसे एक प्रायोजना तैयार कर सम्मेलन में भाग लेने का अनुरोध किया गया था। प्रायोजना उत्साहपूर्वक स्वीकृत की गई थी। डब्ल्यू. एच.ओ. की आर्थिक सहायता से, इस उपमहाद्वीप की सर्वप्रथम पक्षिवलयन तथा प्रवासन अध्ययन की सुनियोजित योजना प्रारंभ की गई। सोसायटी की 'पक्षिप्रवासन प्रायोजना' की उत्पत्ति यही है जिसके बीज का मेरे मस्तिष्क में दृढ़ तथा सुचारु रूप से रोपण 1929 के हैलिगोलैंड स्थित पक्षिवैज्ञानिकीय वेधशाला से साक्षात्कार में हुआ था।

कम विकसित देशों में विभिन्न प्रकार के जन स्वास्थ्य अनुसंधान कार्यक्रमों के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वयं ही, लगभग 1965 तक, यू.एस. सरकार से महत्वपूर्ण आर्थिक सहायता प्राप्त कर रहा था। तीन-चार वर्षों के बाद वि.स्वा.सं. द्वारा बी.एन.एच.एस. को आर्थिक सहायता देना बंद हो गया। कोरियाई युद्ध में यू.एस. के सहभागी होने से तथा उसके प्रति प्रतिबद्ध होने से, उसे अनुसंधान-कार्यक्रमों को सहायता देना बहुत कम करना पड़ा जिसका दुष्परिणाम बी.एन.एच.एस. को भी भुगतना पड़ा। सोसायटी की पक्षिवलयन प्रायोजना संकट में पड़ गई थी, और

1. विषाणु अनुसंधान केंद्र (Virus Research Centre)

वह लुप्त भी हो जाती यदि वाशिंगटन स्थित 'स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशन' ने समय पर सहायता न की होती। उन्होंने संकटकालीन अवधि के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देने का उत्तरदायित्व संभाला। सौभाग्य से थोड़े समय बाद अनपेक्षित स्रोत से स्वतः ही सहायता आ गई।

उस समय सीएटो (SEATO), जिसका मुख्यालय बैंकाक में था, की 'यू.एस. सैन्य आयुर्विज्ञान अनुसंधान प्रयोगशाला' विशाल पक्षिवलयन कार्यक्रम चला रही थी। इस कार्यक्रम का नाम 'मैप्स'[1] था जिसका कार्यक्षेत्र जापान, फिलिपींस, थाइलैंड, मलाया, इंडोनेशिया तथा ताइवान जैसे दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों में था। 'मैप्स' इस कार्यक्षेत्र में भारत को भी सम्मिलित करने के लिए बहुत उत्सुक था और डब्ल्यू. एच.ओ. तथा स्मिथसोनियन दोनों ने 'पक्षिप्रवासन अध्ययन' में बी.एन.एच.एस. के उत्कृष्ट कार्य निष्पादन की अनुशंसा की थी। 'मैप्स' कार्यक्रम का निदेशन और तालमेल बैठाने का कार्य अमेरिकी पक्षिवैज्ञानिक डॉ. एच. एलियट मेकक्ल्यौर कर रहे थे, जो बहिर्मुखी थे तथा जिनके साथ कार्य करना आनंदप्रद तथा शिक्षाप्रद था। संस्थाओं का धन खर्च करने में मैं हमेशा ही मितव्ययता तथा पूर्ण सदुपयोग का पक्षधर रहा हूं। अतएव जब मैकक्ल्यौर ने सोसायटी के आर्थिक निष्पादन अर्थात प्रति डालर वलयित पक्षियों की संख्या के रूप में खर्च पर आश्चर्य प्रकट करते हुए प्रशंसा की, विशेषकर अन्य दक्षिण-पूर्वी देशों के निष्पादन की तुलना में जिन्हें मैप्स सहायता कर रही थी, तब मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी।

मैप्स प्रायोजना की निधि का अधिकांश यू.एस. सैन्य अनुसंधान एवं विकास संघ (सुदूरपूर्व), जापान देता था। मैप्स बी.एन.एच.एस. के भारत में वलयन कार्य की प्रगति की सराहना करते हुए उस पर दृष्टि रखे हुई थी। जब उसे यह पता चला कि वह वलयन कार्य संकट में है तथा बंद भी हो सकता है, उसने तुरंत धन देने का वचन दिया केवल इस अनुबंध के साथ कि बी.एन.एच.एस. जो आंकड़े एकत्रित कर रही है वह उन्हें मैप्स को दे ताकि मैप्स अपनी संबद्ध जानकारी को पूर्ण कर सके। वह सब मुझे न्यायसंगत लगा, और मुझे उस समय यह आशंका तनिक भी न हुई कि इतना उपयोगी वैज्ञानिकी सहयोग सोसायटी को तथा मुख्य अन्वेषक के रूप में मुझे व्यर्थ के विषाद में डाल देगा तथा इतना बदनाम करेगा।

ऐसा लगता है कि सोसायटी के 'मैप्स' के साथ वलयन पर सहयोग की बात जब एक उत्तर भारतीय समाचारपत्र के महत्वाकांक्षी संवाददाता को मालूम हुई तब उस तथाकथित विज्ञान संवाददाता ने बखेड़ा खड़ा किया। उसकी कल्पना उर्वरता संभवतया चरम रूप में थी जब उसने एक भयावह किस्सा गढ़ा। उसने लिखा कि सोसायटी यू.एस. के साथ मिलकर जैव वैज्ञानिकीय युद्ध विषयक यू.एस.एस.आर. के

1. (MAPS—Migratory Animals Pathological Survey—प्रवासीय जंतुओं का रोगवैज्ञानिकी सर्वेक्षण)

विरुद्ध एक षड्यंत्र रच रहे हैं। इस हेतु वे प्रवासी पक्षियों द्वारा प्राणघातक विषाणुओं तथा कीटाणुओं को शत्रु-देशों में फैलाने की संभावनाओं की खोज कर रहे हैं। चूंकि हमारे प्रवासी पक्षी मुख्यतया सोवियत संघ से आते हैं तथा कुछ चीन से भी, इसलिए उस शीतयुद्ध के वातावरण में जो उस समय गरम हो रहा था, कुछ लोगों के लिए यह समाचार विश्वसनीय था। दिल्ली के राजनैतिक गलियारों में इस रिपोर्ट ने खलबली मचा दी, तथा लोकसभा में हमारे साम्यवादियों के मित्रों तथा यू.एस. विरोधी देशभक्तों ने बहुत गरमी (बिना प्रकाश की) तथा कोलाहल पैदा कर दिया। इस कोलाहल के परिणामस्वरूप एक के बाद एक दो जांच समितियां बैठाई गई तथा उन दोनों समितियों ने प्रायोजना निदेशक सालिम अली तथा सोसायटी दोनों को आपराधिक चेष्टा या देशद्रोही कार्य के आरोपों से पूर्णतः मुक्त प्रमाणित किया। किंतु कुछ संसद सदस्यों का संदेह बना रहा। अतएव, इस कोलाहल तथा बने रहे संदेह को सदा के लिए निश्चित रूप से समाप्त करने के लिए तीसरी उच्चाधिकार जांच समिति गठित की गई जिसमें विषाणु अनुसंधान, पुणे; टाटा मूलभूत अनुसंधान, मुंबई, तथा भारतीय प्राणिवैज्ञानिकीय सर्वेक्षण, कलकत्ता के तीन उच्चतम वैज्ञानिक सदस्य बनाए गए तथा उन्हें आदेश दिया गया कि वे जांच पड़ताल बिलकुल प्रारंभ से तथा पूर्ण रूप से करें। जब तक इस समिति के अभिमत ने पिछली समितियों के पिछले अभिमतों की पुष्टि नहीं की तब तक सोसायटी ने अपनी पुरानी विश्वसनीयता तथा जन-छवि प्राप्त नहीं की। किंतु इन दो वर्षों के अंतराल में जब वह तुमुलनाद चल रहा था, हमारा प्रवासन अध्ययन व्यावहारिक रूप में, धनाभाव के कारण लगभग समाप्त हो गया था, तथा इस बीच 'मैप्स' प्रायोजना का भी समापन हो गया था। इस तरह की कुत्सित घटनाएं भविष्य में न दुहराई जाएं, अतएव सरकार ने निर्णय लिया कि उसके द्वारा स्वीकृत सभी सहयोगी प्रायोजनाओं का अर्थ-प्रबंध वह स्वयं करेगी, वह अमेरिका सहयोगी संस्था के अनुरोध पर पी.एल. 480 योजना के तहत भारत में संचित रुपयों की राशि में से आवश्यक धन निकाल सकेगी।

इस स्रोत से पुनः धन मिलने से न केवल सोसायटी का वलयन कार्यक्रम पुनर्जीवित हुआ वरन पारिस्थितिकी तथा आवासी एवं प्रवासी पक्षियों के गमनागमन पर भी अध्ययन प्रारंभ कर दिया गया। हमारे पक्षिप्रवासन अनुसंधान कार्यक्रम तथा क्षेत्र कार्य में व्यावहारिक शिक्षण के कार्यों ने बी.एन.एच.एस. के लंबे साहचर्य में जो कार्य मैंने किए हैं उनसे मुझे सर्वाधिक परितोष मिला है। हमारे व्यावहारिक शिक्षण कार्य ने अनेकानेक स्नातकोत्तर जैववैज्ञानिकी में अनुसंधान कर प्राणिविज्ञान में विश्वविद्यालय की ऊंची डिग्रियां अर्जित की हैं। अभी तक (1983) हम लोग अपने उत्पादों को अपनी व यू.एस. विभाग के आंतरिक संभाग की 'मत्स्य एवं वन्य जीवन सेवा' के साथ दो सहयोगी पंचवर्षीय योजनाओं में अनुसंधान जैव वैज्ञानिक

के रूप में खपा सके हैं। 'भारतीय विमान पत्तनों में पक्षी आघात खतरे की पारिस्थितिकी' हमारी तीसरी प्रायोजना चल रही है, इसे भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय का 'वैमानिकी अनुसंधान एवं विकास बोर्ड' पूरी आर्थिक सहायता दे रहा है। पक्षिप्रवासन प्रायोजना के तीस वर्षों के कार्य के फलस्वरूप, प्राप्त ज्ञान पक्षिप्रवासन संबंधित कार्यों में अनुमानों के स्थान पर आंकड़े वैज्ञानिक महत्व के उपलब्ध करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा बी.एन.एच.एस. के नियमित पक्षिप्रवासन अध्ययन हेतु आर्थिक सहायता मिलने के पहले मैं अपने भरतपुर के वार्षिक भ्रमण को आवासी जल पक्षियों की नीड़न ऋतु में करता था; आवासी जल पक्षियों में महाबक[1], अंजन[2], बगले[3], जलकाक[4], आइबिस[5], चिमटा[6] तथा अन्य पक्षी घाना में घने मिश्रित बगलाथानों में प्रजनन करते हैं। उनके देश के भीतर के तथा कुछ के विदेश गमनागमनों के विषय में हमारे पास कम ज्ञान है। महाराजा (भरतपुर) के मित्रवत सहयोग से तथा उनके शिकारियों एवं वन पहरेदारों की सहायता से, प्रतिवर्ष मैं, कई सैकड़ों नीड़शावकों को हस्तटंकित छल्ले पहनवा सका था। अक्सर अनापेक्षित दूरस्थ स्थानों से, कम जानकारियों से भी अत्यंत रुचिकर ज्ञान तथा 'किस्से कहानियां' मिलते थे। स्वाभाविक रूप से प्राप्त जानकारियां कम मिलती थीं (क्योंकि हम अपेक्षित रूप से कम पक्षियों को वलयित कर पाते थे)। स्वीडन से चयनित मापों के वलय की आपूर्ति जब निःशुल्क मिलने लगी तथा जापान से कुहासे-जाल हमें प्राप्त होने लगे तभी विशाल संख्या में वलयन संभव हो सका। पहले पांच वर्षों में हमारा ध्यान मुख्यतया थल-पक्षियों में चिंचिड़ों के आतिथेयी भू-आहारी पक्षियों तक सीमित था। हंसकों के लिए उचित मात्रा में वलयन बहुत देर के बाद प्रारंभ हो सका था क्योंकि भरतपुर के (तथा अन्य स्थलों) के स्थानीय सहायक हंसकों तथा अन्य जल पक्षियों को पकड़ने में कुशल नहीं थे। वो तो जब हम लोगों ने बिहार की साहनी तथा मिर्शिकार वन्य जातियों की खोज की तब विशाल संख्या में वलयन संभव हो सका। ये व्यवसायी बहेलिये अपनी विराट सिद्ध पद्धतियों से पक्षियों को फंसाने में कुशल होते थे।

जलपक्षी अभयारण्य तथा तत्पश्चात राष्ट्रीय उद्यान बनने से पहले केवलादेव घाना भरतपुर के राजाओं का अनोखा निजी हंस शिकारगाह था। जब तक वर्तमान महाराजा के पास अपने अधिकार थे, घाना को पक्षी अभयारण्य में बदलने का न

1. महाबक (storks)
2. अंजन (herons)
3. बगले (errets)
4. जलकाक (cogmorants)
5. आइबिस (ibises)
6. चिमटा (spoonbills)

तो कोई विचार उनके मन में था और न इसका प्रश्न उठता था क्योंकि स्वेच्छा से वे अपना शूटिंग अधिकार कतई नहीं छोड़ना चाहते थे। वे अक्सर 'शिकार' के लिए तथा खाने के लिए थोड़े से हंसकों की शूटिंग किया करते थे। किंतु वे प्रत्येक ऋतु में तीन या चार शूटिंग के भव्य आयोजन भी किया करते थे जिनमें वे वाइसराय, गवर्नरों, मिलिटरी तथा गैरमिलिटरी के ऊंचे अधिकारियों, अन्य राज्यों से भाई राजाओं आदि अति महत्वपूर्ण व्यक्तियों, तथा कुछ 'अति' से 'कम' को आमंत्रित किया करते थे। राज्य सेना के सैनिकों से हंकौओं का कार्य करवाते थे ताकि पक्षियों को नीचे बैठने का अवसर न देकर वे बंदूकों के ऊपर उड़ने के लिए बाध्य करते रहें। शिकारियों के बंदूक चलाने के स्थान नियत थे तथा उन्हें बंदूकों पर अंकित कर दिया जाता था। शिकार की समस्त संक्रिया मिलिटरी युद्धाभ्यास की तरह यांत्रिकी परिशुद्धता से चलती थी। इनमें से कुछ महाकाय आयोजनों की उपलब्धि 'सर्वनाश' हुआ करती थी। अनेक उल्लेख उपलब्ध हैं जिनमें एक दिन में दो से तीन हजार पक्षियों का शिकार होता था, तीन बार तो एक दिन में चार हजार से अधिक पक्षी मारे गए थे। किंतु सर्वनाश का, 'अधिकतम' रिकार्ड तो लार्ड लिल्निथगो—पीठासीन वाइसराय—की अध्यक्षता में किए गए शिकार का बना जिसमें केवलादेव घाना में नवंबर 1938 में 38 बंदूकों द्वारा 4,273 पक्षी शूट किए गए थे। इसमें यद्यपि लार्ड साहब का योगदान बहुत महत्वपूर्ण नहीं था किंतु उन्होंने, उस दिन 12 बोर बंदूक से अपने कंधे पर से 1,900 कारतूस चलाए थे, जो निश्चित ही विश्व रिकार्ड हो सकता है। जिसने किसी दिन एक सुबह कुछ सैकड़े कारतूस चलाई हैं तथा अपना कंधा नीला-काला कर लिया है, वही साहब के भारी भरकम शरीर के लिए कुछ छूट दे!

घाना की अद्वितीय विशिष्टता, पंछिनिहारक की दृष्टि से, न केवल आवासी तथा प्रवासी जातियों की उपयुक्त ऋतुओं में विभिन्नता एवं अद्भुत जमाव के कारण है वरन असामान्य रूप से पंछी निहारन अवधि के लगातार छह महीने तक उपलब्ध होने के कारण भी है। सामान्य मानसून की ऋतु में महाबक, बगले, जलकांक आदि आवासी पक्षी अगस्त में प्रजनन प्रारंभ कर देते हैं। नवंबर तक माता-पिता तथा शावकों के बगलाथान को छोड़ने के पहले ही प्रवासी हंसक तथा हंसों का आगमन प्रारंभ हो जाता है जो नवंबर अंत तक चलता रहता है और तब प्रवासी अपना आधिपत्य जमा लेते हैं। जल पक्षियों के पंछी निहारन की इतनी विस्तृत एवं लगातार अवधि विश्व में अद्वितीय है। यह गुण केवलादेव राष्ट्रीय उद्यान को प्रकृति वैज्ञानिक पर्यटक तथा पक्षिफोटोग्राफर के लिए आदर्श घटनास्थल बनाना है—प्रकृति संरक्षण की दृष्टि से इस लाभ पर प्रश्न चिह्न लगाया जा सकता है !

सन् 1936 के लगभग मेरे भाई हामिद के घनिष्ठ मित्र एवं प्रशंसक, युवासम एवं उत्साही के.पी.एस. मैनन, आई.सी.एस. सर रिचर्ड होटनहम के स्थान पर भरतपुर

राज्य के प्रशासक बने। मुझे याद है कि वे तथा उनकी बारह वर्षीय जुड़वां कन्याएं, मेरे साथ झील पर डगमगाती लोहे की डोंगी में से निकलकर महाबक तथा बगलों के शावकों को उनके नीड़ में वलय करने में कितने रोमांचित तथा पुलकित हुआ करते थे।

उत्तर प्रदेश तथा सिंधु-गंगा के मैदानों में इसके समान झीलें भरी पड़ी हैं, किंतु इस उपमहाद्वीप में केवल यही केवलादेव घाना जलाशय है जहां, कम संख्या में सही, बिरली तथा अतिशय सुंदर हिमधवल साइबेरियाई धवल क्रौंच शीतकाल में प्रवास करती हैं। इसका कारण इस झील में उनके विशेष प्रिय आहार की उपलब्धि है या कुछ और यह तो ज्ञात नहीं। और चूंकि अब वे वन्य जीवन (संरक्षण) धारा 1972 (पूर्णतः रक्षित) की प्रथम अनुसूची में उल्लिखित हैं, यह संभव नहीं लगता कि हम उनके पेट के भीतर की सामग्री की जांच-पड़ताल कर इस तथ्य को खोज पाएंगे। साइबेरियाई क्रौंचों से मेरी पहली भेंट 1937 में हुई जब मैं केवलादेव में मैनहर्ट्जन के साथ उनके विशेष अध्ययनार्थ पंख-यूक इकट्ठे कर रहा था। ग्यारह पक्षियों का एक दल आया जिसमें से मैंने एक शूट किया। दुर्भाग्य से उसके शरीर पर कोई भी पंख-यूक नहीं मिले, किंतु उसके पेट की सामग्री को हम लोगों ने संभालकर रखा जिसमें मुख्यतया तथा लगभग शुद्ध रूप से साइपैरुस घास की कंदिकाएं थीं जिसकी कई जातियां इस जलाशय में उगती हैं। इस सामग्री की विशेषरूप से लंदन स्थित 'क्यू'[1] में जांच पड़ताल की जानी थी किंतु किन्हीं कारणों से यह जांच-पड़ताल कभी नहीं हो पाई। अतएव यह पक्षी भरतपुर को अपने विशेष आहार की उपलब्धता के कारण पसंद करता है या नहीं, एक रहस्य बना हुआ है। इसी अवधि में हम शिकारी पक्षियों के पंख-यूक भी इकट्ठे कर रहे थे। उनकी डायरी के नोट्स से पता लगता है कि उस समय शिकारी पक्षियों की आबादी भी कितनी घनी थी और अब इस अंतराल में कितनी कम हो गई है। उनके नोट्स : 'भरतपुर, 2.3.1937। नाश्ते के बाद दो बिंदुकित (Spotted), पल्लास (Pallas's), दो सामाजिक (Imperial), एक पिंग (गेहुंआ, Tawny), एक Spilornis (स्पिलोर्निस), एक एक Circaetus (सेर्सीटुस) शूट किए; यदि मैं चाहता तो प्रत्येक जाति के एक-एक दर्जन शूट कर सकता था।' यह आश्चर्यजनक है कि उन्होंने शूट नहीं किए !

भारत की स्वतंत्रता के समय जब भरतपुर राज्य का भारत में विलयन हो रहा था, तब महाराजा ने हठ किया था कि घाना में उनका तथा उनके मित्रों का एकमात्र अधिकार बना रहे। उस समय अनेक बड़ी समस्याएं सामने थीं, अतएव भारत सरकार ने उन्हें इसकी स्वीकृति दे दी थी। महाराजा के शिकार के इस एकमात्र अधिकार से तथा (इस जनतंत्र में) साधारण प्रजा को उससे वंचित रखने से राज्य

---

1. क्यू—(Kew)

की सशक्त महाराजा विरोधी पार्टी उन्हें भूतकाल के आरोपित कुकृत्यों तथा अन्यायों के लिए दंडित करने हेतु 'कुछ भी' करने को तैयार थी। उन्होंने यह आरोप लगाते हुए कि महाराजा ने घाना पर अपना एकमात्र अधिकार मात्र अपने आनंद हेतु कृषि योग्य उत्तम भूमि तथा जल को भूमिहीन प्रजा तथा उनकी खेती के लिए आवश्यक जल को दुष्टतापूर्वक उनसे वंचित रखा है, जन आंदोलन खड़ा किया था। कुटिल राजनीतिज्ञों की मदद से घाना का पूरा विनाश करने का षड्यंत्र भी रच लिया था, और सचमुच यह विनाश घाना के सिर पर ही था। उसी समय संयोग से मुझे उस षड्यंत्र की भनक मिली। मैं उस समय दो प्रतिष्ठित पक्षिवैज्ञानिकों के साथ मित्रों—होरेस अलैक्ज़ैंडर, प्रसिद्ध क्वेकर (Quaker) जिसे एक समाचारपत्र ने Quacker छापा था तथा जनरल सर हैरॅल्ड विलियम्स, उस समय भारतीय थलसेना के चीफ इंजीनियर—भरतपुर में ही था। हम तीनों ही प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से अच्छे से परिचित थे तथा उनके प्रकृति के गहरे प्रेम से भी। हम लोगों ने उन्हें तुरंत ही खतरनाक स्थिति से परिचित कराया तथा उनसे याचना की कि वे प्रकृति की कलाकृति को सन्निकट सर्वनाश से बचाने के लिए तुरंत कार्यवाही करें। और जवाहरलाल के तात्क्षणिक तथा सकारात्मक हस्तक्षेप से घाना सिर पर मंडरा रहे सर्वनाश से बच गया। अपने ऊर्जस्वी तथा संवेदनशील कृषि तथा सिंचाई मंत्री रफी अहमद किदवई के द्वारा उन्होंने जल तथा भूमि अपहरण आरोपों की जांच करवाई तथा संबद्ध लोगों के लिए संतोषजनक समाधान निकाला। कुछ समय बाद हठी महाराजा पर नैतिक दबाव डालकर उन्हें अपने एकमात्र शूटिंग अधिकारों को छोड़ने के लिए मनवा लिया। इस तरह घाना को सुनिश्चित सर्वनाश से बचा लिया तथा आज वह विश्व के सर्वाधिक मनोरम जल पक्षी अभयारण्य के रूप में विख्यात है।

16
बस्तर : 1949

ब्रिटिश राज के 'पूर्वी राज्य अभिकरण' के अंतर्गत बस्तर तथा कांकेर दो वन्य जातियों के राज्य थे। 1949 में मेरे पक्षिसर्वेक्षण करने तक जैववैज्ञानिकीय दृष्टिकोण से इनके विषय में बहुत कम जानकारी उपलब्ध थी और इसलिए यह क्षेत्र प्रकृति वैज्ञानिकों के लिए विशेषरूप से ललचाने वाला कार्यक्षेत्र था। भारत की स्वतंत्रता के दो वर्ष बाद तक राजा-महाराजा अपनी गद्दियों पर आसीन थे किंतु भविष्य की अनिश्चितता उन्हें डगमगा रही थी। उस समय तक यह क्षेत्र सभ्यता तथा विकास प्रक्रियाओं से अछूता एकदम वन्य प्रदेश था; तथा वन्य जातियों की सामान्य जीवनशैली में प्रचलित महिलाओं के ऊपरी भाग को निर्वस्त्र रखना भी आपत्तिजनक नहीं था। उस समय आज के सर्वनाश की ओर अग्रसर, विशेषकर जापानियों द्वारा वहां की विशाल लौह खदानों पर ललचाई दृष्टि पड़ने के बाद वाले बस्तर से नितांत भिन्न था। वहां धूलभरी तथा डामरहीन वर्षभर चलने वाली सड़कें भी बहुत कम तथा विरल थीं। अधिकांश गमनागमन कम तथा अनियमित निजी बस सेवाओं से, अन्यथा बैलगाड़ियों द्वारा सुहावने मौसम वाले वन-पथों या बैलगाड़ियों के चक्कों द्वारा बनाई गई नितांत कच्ची लीकों पर से होता था, यहां तक कि बांसों से बनें कामचलाऊ पुलों को वन जलधाराओं के ऊपर बनाकर जाना होता था तथा ये पुल बरसात की तेज बारिश में बह जाते थे। कुछ पुरानी थकी-मांदी फौज की जीपों के अतिरिक्त चार पहियों पर चलने वाले वाहन नहीं मिलते थे। जब धाराओं में पानी कम होता था, लोके (वान थो) स्टेशन वैगन उनके तटों की ढीली रेत में धंस जाती या मझधार में आधी डूब जाती थी तब आदमियों की सहायता से खींचकर धकेलते हुए उसे मुश्किल से निकालना होता था। और आदमी ? अक्सर वे भी लकड़ी ढोने वाले गाड़ीवान मिल जाते थे, जो स्वयं अक्सर फंसे होते थे। इस तरह के दुखदायी अनुभवों के पश्चात मैं नियमित रूप से कुछ फावड़े तथा तारों की जाली लेकर ही चलता था। पार करने के पहले ढीली रेत पर जाली बिछा देने से पहिए रेत में मथानी की तरह नहीं घूमते थे। इससे जो समय पहले आदमियों को मदद के लिए ढूंढ़ने में लग जाता था वह बच जाता था। एक और दुखदायी अनुभव ने मुझे अपने

वाहन के ऊपर विशेष बंधनी[1] में साइकिल बांधकर ले जाना सिखा दिया। साइकिल 'रक्षा-नौका' की तरह उपयोगी थी।

एक दोपहर गीथम (एक बड़ा-सा गांव) तथा बस्तर की राजधानी जगदलपुर से 30 कि.मी. पहले, रास्ते में एक अत्यंत दुर्गम खंड में, 'वैगन' का एक्सल टूट गया तथा पिछला पहिया निकलकर भाग जाने से वाहन असंतुलित होकर घिसटता हुआ सड़क किनारे की खाई में घुसते घुसते बचा। एक निजी बस इस स्थान से हर दूसरे दिन चला करती थी। सुबह हमने उसे विरुद्ध दिशा में जाते देखा था अतएव दूसरे दिन उसके लौटकर आने की आशा थी। देर दोपहर हो चुकी थी। अतएव वाहन से सामान निकाला, तंबू लगाए, रात्रि के लिए तैयारी की और आशा लगाई कि बस अगले दिन सुबह आएगी। सुबह ही, नाश्ते के बाद, जल्दी जल्दी बिस्तर, खाट, बर्तन, बाल्टियां, लालटेनें और सभी कुछ बांधा तथा धैर्यपूर्वक बस की प्रतीक्षा शुरू कर दी। जब सूर्यास्त तक कोई भी बस, किसी भी दिशा से, नहीं दिखाई दी तब हम समझ गए कि बस में कुछ गड़बड़ी हो गई है। अब फिर हमने उसी मुश्किल में रात बिताने का निश्चय किया—सामान खोला, तंबू लगाए तथा बस की चिंता के साथ सो गए।

उस क्षेत्र में एक आदमखोर बाघ के आने की खबर से बैलगाड़ियों का आना-जाना एक सप्ताह से बंद था। शाम को सामान खोलने तथा सुबह बंद करने की और धैर्यपूर्वक बस की प्रतीक्षा करने की प्रक्रिया दुहराई गई। किंतु जब सूर्यास्त तक कोई बस नजर नहीं आई तथा जगदलपुर तक 'बचाओ बचाओ' (SOS) खबर भेजने का कोई चारा नहीं मिलता दिखलाई दिया, तब मैंने शिविर को गैब्रियल तथा रसोइए के जिम्मे छोड़कर, जगदलपुर तक अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति द्वारा अविराम चलने का निर्णय किया। मध्य रात्रि के बाद जब कुछ ठंडक हुई तब मैंने उजियारी चांदी में प्रयाण किया। साथ में दूसरे चर्मसंस्कारक एंथॅनी डिसूजा (पूर्वी अफ्रीका का शरणार्थी दृढ़ गोअन) तथा कंधे पर कारतूस भरी माउज़र राइफल थी। रास्ता बांसों तथा साल के मिश्रित जंगलों से जा रहा था। ये जंगल बाघ के प्रिय अड्डे थे तथा दस दिन पहले ही उसने वहां शिकार किया था। मुझे अब समझ में आता है कि बाघ द्वारा अचानक झपटने पर कारतूस लदी राइफल कुछ नहीं कर सकती थी। वह यंत्रणादायक, भयाक्रांत अनुभव था, जो मनोबल तोड़कर व्याकुलता बढ़ा रहा था, किसी भी छाया का हिलना, यथार्थिक या काल्पनिक लगता था कि वह आदमखोर घात हमारा पीछा कर रहा है। किंतु करता क्या ? किसी भी प्रकार के वाहन की प्रतीक्षा अनंत काल-सी लग रही थी, तथा दिन में सूरज इतना तपता था कि जैसे भट्टी में भूना जा रहा होऊं। बेचारे एंथॅनी डिसूजा के जूते उसे इतना काट रहे थे कि

1. बंधनी (bracket)

उसके पैरों में छाले पड़ गए थे और उनमें से खून भी बहने लगा था, मुझे उसके लिए बहुत दुख हो रहा था क्योंकि गंतव्य अभी भी बहुत दूर था। उसे अपनी गति से आने के लिए पीछे छोड़ा भी नहीं जा सकता था, आदमखोर बाघ की भूखी छाया जो पीछा कर रही थी। अतएव उसकी पीड़ादायक दुखद स्थिति के होते हुए भी उसे धकियाते हुए चलने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं था। लगभग छह घंटे अविराम चलकर, सुबह आठ बजे के लगभग हम जगदलपुर पहुंचे। इस तीव्र गति का कारण निस्संदेह रूप से वह पीछा करता हुआ काल्पनिक आदमखोर था। बस कंपनी के सुहृद प्रबंधक श्री कृष्ण स्वामी (या कृष्णमूर्त्ति ?) ने जो अल्पाहार हमें खिलाया वह स्मरणीय है क्योंकि, उस परिस्थिति में, घर की बनी नरम स्वादिष्ट इडलियां शहद के साथ ऐसी लग रही थीं कि जैसे स्वर्ग से प्राप्त सात्विक आहार हो। तत्पश्चात प्रामाणिक मद्रासी कॉफी ने तो सचमुच दिव्यावस्था में पहुंचा दिया। प्रबंधक ने शीघ्र ही एक राहत-वाहन तथा अपनी कार्यशाला में से एक होशियार वरिष्ठ मिस्त्री का, उस अकर्मण्य स्टेशन वैगन को खींचकर लाने हेतु, प्रबंध कर दिया। दो दिनों की ठोकपीट के बाद हम लोग पुनः अपने 'रास्ते' पर थे।

उस समय बस्तर के जंगल यद्यपि आज की तुलना में कम क्षत-विक्षत थे तब भी सभी प्रकार के वन्य जीवों की आबादी शोचनीय रूप से कम कर दी गई थी। इसलिए यह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं थी कि वे जंगल अब आदमखोर बाघों से पीड़ित थे। वन्य जाति भील के सभी पुरुष वन्य जीवों का पीछा करने में न केवल निष्णात थे वरन वर्ष भर भरमार बंदूकों से लेकर तीरधनुष से शिकार करने में चतुर थे। इसके साथ, हर साल, बुवाई के पहले, भीलों के 'पराड' या 'बहुए' होते थे, इनमें आसपास के सभी स्वस्थ भील इकट्ठे होकर सारे जंगलों में हांका लगाते थे और बड़ा या छोटा, स्तनधारी, सरीसृप या पक्षी जो कुछ भी चलता हो, उसकी हत्या करते थे। ये विनाशी शिकार वे वन-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए करते थे ताकि वे अच्छी फसल का आशीर्वाद दें। निषेधात्मक वन अधिनियमों के होते हुए भी उनकी यह विनाशकारी परंपरा निर्बाध गति से चल रही है।

बस्तर पक्षिसर्वेक्षण की अवधि में मैंने एक भील को अपना जंगल गाइड बनाया था। उस भील ने मुझे भीलों के शिकार-कौशल का एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उस समय तक हम यह जानते थे कि शोभावान 'विशाल कलकठफोड़'[1] केवल 'बेलगाम के दक्षिण-पश्चिमी घाट' को आबाद करता है। 'नवीन जीव जंतु'[2] में स्टुअर्ट बेकर ने इसका वितरण दिया था : 'दक्षिण भारत के पश्चिमी तट पर बेलगाम से त्रावणकोर तक'। यह ग्रंथ हमारा मानक संदर्भ ग्रंथ है। इसके प्रकाशन पश्चात, गुजरात के

1. 'विशाल कलकठफोड़' (Great Black Woodpecker) (*Dryocopus javensis*)
2. 'नवीन जीव जंतु' (New Fauna)

पक्षिसर्वेक्षण ने इसके वितरण को उत्तरी दिशा में बढ़ाकर सूरत डैंग (खानदेश निकट) तक कर दिया था। अतएव जब मैंने मध्यप्रदेश के इस दूरस्थ खंड के एक घने पुनर्जीवित जंगल में एक बड़े काले कठफोड़ को देखा तो मुझे बहुत आश्चर्य तथा कौतूहल हुआ। अतएव मैं इसका एक नमूना चाहता था ताकि मैं उसकी पहचान सुनिश्चित कर सकूं। वह पक्षी बहुत ही सतर्क तथा शर्मीला था, और पीछा करने पर एक के बाद दूसरे वृक्ष पर मुझसे दूर होता गया तथा हमेशा बंदूक की परास से बाहर रहा। लगभग आधे घंटे के असफल तथा श्रांतकारी प्रयास के बाद, और उस नमूने के गायब हो जाने के भय से, मैंने उस भील गाइड को वह कठफोड़ा लाने पर पांच रुपये के खजाने का वचन दिया। उस भील ने मेरी बंदूक ली और छिपता हुआ घनी कंटीली झाड़ियों में गायब हो गया। अगले पांच मिनट में मैंने बंदूक की आवाज सुनी तथा उसके दो मिनट बाद वह नमूना मेरे हाथ में था ! उसने मुझे आश्वासन दिया कि यह बड़ा काला पक्षी 'भैंसा खिदड़ी' (उनकी भाषा में) इस क्षेत्र में दुर्लभ नहीं है तथा इसे और इसके शिशु को घोंसलों से चुराकर, इसके अच्छे स्वाद के कारण बहुत खाया जाता है—इससे उस पक्षी के सतर्क तथा शर्मीले होने का कारण भी समझ में आया। धनेश तथा बिलों में रहने वाले अन्य पक्षी इसीलिए कम होते जा रहे हैं। बस्तर-कांकेर पक्षिसर्वेक्षण की एक बड़ी उपलब्धि यह रही कि 'विशाल कलकठफोड़' तथा अन्य कुछ जो कि प्रमुखतया पश्चिमी घाट के पक्षी माने जाते थे, का वितरण पूरे (प्रायः महाद्वीप) भीतरी भागों से होता हुआ पूर्वीघाट तक बढ़ गया है। केरल तथा आर्द्र दक्षिण-पश्चिमी भारत की 'मलायी-बंधुता' वाली जातियों के वितरण में यह महत्वपूर्ण बढ़त करता है। इसका होरा के 'सतपुड़ा अनुमान' (जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं) से विशेष संबंध है।

'पूर्वी राज्य अभिकरण' के निकटस्थ जिन राज्यों में मैंने पक्षिसर्वेक्षण किया वे थे—मयूरभंज, भद्रमा, बामरा, कोरेआ, क्योंझार, नीलगिरि, धेंकनाल तथा अनेक अन्य छोटे राज्य। स्वतंत्रता पश्चात इनका मध्यप्रदेश, आंध्र तथा उड़ीसा में पुनर्गठन के साथ विलयन हुआ। लोलुप टिंबर पट्टेदारों तथा वन-ठेकेदारों ने, विशेषकर छोटे राज्यों में, वनों का अत्यधिक शोषण कर निर्मम नुकसान पहुंचाया था, तब भी वन, विशेषकर 'साल' वन मोटे तौर पर ठीक ही थे। पहाड़ी क्षेत्र में वन्य जातियों ने 'झूम' खेती की परंपरा के कारण विशाल क्षेत्रों को बुरी तरह बर्बाद किया था। 'अभिकरण' के राज्यों में मयूरभंज, संभवतया विशालतम तथा सुव्यवस्थित राज्य था जिसमें कुछ शोभनीय वन थे जिनमें प्रचुर वन्य जीव भी थे। महाराजा का एक शिकारगाह 'सिमलीपाल' अब हमारा उत्तम बाघ अभयारण्य है।

अपने लंबे जीवन में सरगुजा के महाराजा की अपनी प्रजा के प्रति भलाई करने वाली एकमात्र प्रतिबद्धता थी, बाघों की हत्या करना। न केवल अपने राज्य में वरन पास-पड़ोस के राज्यों में भी बाघ की खबर पाकर वे इस नृशंस कार्य हेतु

वहां भी पहुंच जाते थे। वे सत्तर वर्ष से अधिक जीवित रहे जिसमें उन्होंने 1170 से अधिक बाघ मारकर, निश्चय ही किसी प्रकार का रिकार्ड बनाया होगा तथा अपने अंतःकरण में, यदि उनमें था, उसकी कचोट अनुभव की होगी। एक बार मैं कान्हा किसली वन्य जीव अभयारण्य में भ्रमण कर रहा था, उस समय (सातवें दशक में) वह राष्ट्रीय उद्यान नहीं बन पाया था। उस समय इन महाराजा साहब ने पड़ोस का एक शूटिंग खंड ले रखा था। एक दोपहर वे मेरे पास अति प्रफुल्लित होकर आए और बड़े गर्व से उन्होंने घोषित किया कि वह दिन उनके जीवन का सर्वाधिक सुखमय दिन था क्योंकि उस सुबह उन्होंने अपने जीवन का 1100वां बाघ मारा था। मैंने देखा कि उनके हाथ तूफान में एक पत्ते की तरह कांप रहे थे। मैंने उनसे पूछा कि वे शिकार के लिए अपनी राइफल स्थिर कैसे रखते हैं। पता लगा कि मचान के कटहरे पर राइफल रखकर निशाना लगाने में उन्हें बड़ा आनंद आता है। सचमुच रुचियों पर कोई प्रतिबंध नहीं है। कुछ माह के बाद जब एक प्रशंसक ने उनसे पूछा कि उन्होंने कुल कितने बाघ मारे हैं, तब उन महाराजा का उत्तर था '1170 मात्र', जिसमें 'मात्र' पर उन्होंने कुछ आत्मदया दर्शाते हुए बल दिया।

सरगुजा राज्य के एक पड़ोसी राज्य, कोरेआ (पूर्वी मध्य प्रदेश) के महाराज ने शिकार में अपना नाम अमर कर लिया है। उन्होंने एक रात में अपनी जीप पर से चकाचौंध करनेवाली बत्तियों की मदद से, भारत के अंतिम तीन चीतों का शिकार कर इस जाति का भारतीय जमीन पर से हमेशा के लिए सफाया कर दिया।

17
यूरोप में मोटरसाइकिल पर

मैंने 1914 में टेवॉय पहुंचने पर जब पहली बार, एक ज़ैरवादी मित्र एल.एम. मदार की 3.5 हॉर्स पावर एन.एस.यू. मोटरसाइकिल चलाई, तभी से मैं मोटरसाइकिल पर गहरा आसक्त हो गया। मोटरसाइकिल तथा मोटरसाइकिल भ्रमण पर मेरी आसक्ति बढ़ती ही रही है। 68 वर्ष की आयु में, अनेक दुर्घटनाओं से (बंबई के बढ़ते अराजकता वाले ट्रैफिक में) बाल बाल बचने के बाद मुझे इस 'प्रफुल्लता' से निवृत्ति के लिए अंततः फुसला लिए जाने के बाद भी, तथा मेरी अंतिम मशीन (1949 मॉडल, 500 सी.सी., दो सिलिंडर, धुरा चालित, सनबीम) से बिछुड़ने की पीड़ा भुगतने के बाद भी तेज गति से गुजरती बी.एम.डब्ल्यू. का दर्शन तथा गान मुझे अब भी पुलकित कर देता है। स्वतंत्रता पश्चात विदेशी कारों तथा मोटरसाइकिलों के आयात पर प्रतिबंध लगने के बाद, दुख की बात है कि भारतीय सड़कों पर अब कुलीन तथा सुसंस्कृत मॉडलों का दिखना, कभी कभार पुरातन मॉडल के अतिरिक्त दुर्लभ हो गया है। राजदूत, जावा तथा एनफील्ड परिवार के उनके बड़े भाई जैसे निम्न स्तरीय मॉडलों में वह बात कहां। अतएव उन विरल अवसरों पर जब मैं विदेश यात्रा करता हूं, अपनी तृष्णा को तृप्त करता हूं और उस समय हो रही किसी भी मोटरसाइकिल प्रदर्शनी को देखने का भरसक प्रयत्न करता हूं। बर्मा के मेरे अनुभवहीन दिनों में मेरी सारी पढ़ाई मोटरसाइकिल जर्नलों तथा पक्षियों, सामान्य प्राकृतिक इतिहास तथा बड़े शिकार की विशेषकर भारत से संबंधित पुस्तकों और पत्रिकाओं तक ही सीमित थी।

सन् 1915 में मैंने पहली मोटरसाइकिल ली थी, आंशिक रूप से, क्योंकि वह टेवॉय की हमारी जे.ए.अली ब्रदर्स एंड कंपनी की संपत्ति थी। वह 3.5 हॉर्स पावर, युगल सिलिंडर जैनिथ थी। उसका गेयर बाक्स नहीं था और वह बैल्ट-चालित थी। उसमें ग्रेडुआ गेयर नामक परिष्कृत युक्ति थी जिसे विज्ञापन में 'अजेय, सर्वविजयी' प्रचारित किया गया था। इससे गेयर के अनुपात लगातार बदलते हुए तथा अधिक विस्तृत परास में मिलते थे। ऐसा करने के लिए पेट्रोल टंकी पर स्थित एक क्षैतिज दंड को ट्राम के ब्रेक हत्थे की तरह घुमाना पड़ता था। उसके बाद

मेरे पास हार्ली डेविडसन (विभिन्न हॉर्स पावर के तीन मॉडल), डगलस, स्कॉट (द्विसिलिंडर, द्विस्ट्रोक, जलशीतित) नई हडसन और अन्य अल्पकालों के लिए रहीं। और अंतिम तथा प्रियतम माडल था सनबीम। जिस पर मेरा 'मोटरसाइकिल भ्रमण' जीवन का समापन हुआ था। यह मेरा अंतहीन दुख रहा कि मैं बी.एम.डब्ल्यू. नहीं खरीद सका, उसे पाकर मैं सुखपूर्वक जा सकता था। मोटरसाइकिल इंजनों में प्रतिवर्ष हो रहे परिष्कारों, परिष्कृतियों तथा उन्नतियों में गहरी रुचि थी। एतदर्थ मैं बहुत व्यग्रता से विशेष जर्नलों तथा निर्माताओं के कैटलॉगों में प्रकाशित विशिष्टियों तथा मार्ग-परीक्षण रिपोर्टों को पढ़ा करता था। प्रारंभिक दिनों में इंजन के खोलने, कसने, ट्यूनिंग करने या बिना मतलब के कुछ भी करने में बड़ा मजा आता था। उस भले चंगे इंजन का, बजाय उसे अच्छी हालत में छोड़ने के, मैं अक्सर छुट्टियों में अंग प्रत्यंग खोल लेता था, फिर कस देता था, फलस्वरूप कालिख, ग्रीज़ तथा तेल में रंग जाता था। अक्सर अंत में कुछ नटबोल्ट, पेंच, बंधकपिन तथा वाशर आदि बच जाते थे, तब मैं सोचा करता था कि निर्माताओं ने इन सबको व्यर्थ में क्यों लगाया था जबकि उनके बिना मशीन काम कर सकती है, तब वे इतने उदार क्यों रहे ! मैं प्रत्येक सप्ताहांत में घंटों अपनी मशीन पर लगाता था, मोटरसाइकिल का निकिल चमकाने में, पालिश करने में मेरे सारे तनाव धुल जाते थे, मुझे उसके—दोनों इंजन तथा शरीर के, रख-रखाव पर बड़ा गर्व था तथा अपने से कम सजावट रखने वाले, पर संभवतया अधिक विवेकशील उत्साही साथियों की ईर्ष्या से बहुत संतोष मिलता था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के शीघ्र बाद प्रेटर इंग्लैंड चले गए थे तथा मैककान न्यूजीलैंड। इसलिए 1950 में मैं बी.एन.एच.एस. के क्यूरेटर तथा संपादक का कार्य कर रहा था। द्वितीय विश्वयुद्ध पश्चात 1950 में अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिकीय कांग्रेस उप्साला, स्वीडन में हो रही थी। विश्वयुद्ध ने पक्षिवैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों में बहुत बाधा डाल दी थी, अतएव इस कांग्रेस से सभी को पुनर्मिलन की मधुर आशाएं थीं। इस कांग्रेस में भारत के गैर अधिकारी प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए सभी सदस्यों से बी. एन.एच.एस. ने धन इकट्ठा किया।

यूरोपीय देशों में स्वीडन विश्वयुद्ध के ध्वंस से लगभग अछूता रह गया था, अतएव कांग्रेस के लिए उसे चुना गया तथा समय रखा गया जून 1950। जैव वैज्ञानिकों में वर्गीकरण एवं नामकरण की आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति के जन्मदाता कार्ल लिन्नीउस का जन्म उप्साला में हुआ था तथा उप्साला एक सुंदर विश्वविद्यालय वाला नगर है, अतएव इस कांग्रेस के लिए उप्साला का चयन किया गया। 4 मई, 1950 को पी एंड ओ.एस.एस. स्ट्रैथैडैन से मैं और मेरी सनबीम ने मुंबई तट छोड़ा। मैंने योजना बनाई थी कि सनबीम पर मैं सारे यूरोप तथा ब्रिटेन का भ्रमण करूंगा। उन स्थानों में 'प्राकृतिक इतिहास' तथा संरक्षण संबंधी, विशेषकर पक्षियों से संबंधित

स्थल, प्राकृतिक अभयारण्य देखूंगा तथा विभिन्न स्थानों में बिखरे मेरे मित्रों, जो भारत से सेवानिवृत्त होकर वहां गए थे, से मिलूंगा। प्रस्थान पूर्व शुभेच्छुओं द्वारा दी गई व्यर्थ किंतु निःशुल्क सलाहों तथा प्रलयवादियों की अनिष्टमय भविष्यवाणियों के बावजूद वह योजना विवेकशील तथा पूर्णतः उपयोगी एवं आनंदप्रद सिद्ध हुई। उस समय यूरोप में युद्धोत्तर स्थिति के परिणामस्वरूप जनपरिवहन साधन काफी अव्यवस्थित थे। अतएव मोटरसाइकिल यात्रा, अन्य साधनों की तुलना में सर्वाधिक मितव्ययी तथा विश्वसनीय एवं सुविधाजनक निकली। इससे मेरे यात्राक्रम की कठोरता, तथा रेल, बस एवं होटलों के अग्रिम आरक्षण से मुक्ति मिल गई थी, अन्यथा कार्यक्रमों को मनचाहा बदलने की स्वतंत्रता के स्थान पर पूर्व निश्चित यात्राक्रम की दासता ही मेरा भाग्य होती। टिल्बरी पत्तन से निकलने के बाद लिवरपूल स्ट्रीट रेलवे स्टेशन पहुंचने पर प्लेटफार्म पर, रेल द्वारा आगतों को लेने आए मनुष्यों के अपार समुद्र को जब मैंने देखा तब मुझे निश्चित रूप से घबराहट हुई थी। इस स्टेशन पर मुझे लेने के लिए मेरे लंदन के संभावित आतिथेयी पक्षिवैज्ञानिकीय मित्र मैनहर्ट्ज़न आने वाले थे। मैं हैरान था कि इस विराट भीड़ में दो व्यक्ति कैसे एक-दूसरे को ढूंढ़ पाएंगे।

इस भीड़-भार में अपने को निरुद्देश्य-सा ठेलता हुआ जब मैं चल रहा था तब मैंने (कुछ आश्चर्य से) देखा कि एक दुबला पतला व्यक्ति ठेल-पेल करते जनसमूह से सिर तथा कंधों से भी ऊंचा व्यक्ति, ध्वज स्तंभ के समान सीधा खड़ा हुआ था। अपनी लाक्षणिक विचारशीलता तथा मौलिकता से मैनहर्ट्ज़न ने एक डिब्बा किराए पर ले लिया था तथा उस पर अपने को सुस्थापित कर लिया था। और इस तरह हम दोनों ने उस समुद्र में एक-दूसरे को ढूंढ़ा था ! 'कैंसिग्टन पार्क गार्डंस' के किनारे एक तिमंजिली, विक्टोरियन, अर्ध स्वतंत्र इमारत में मैनहर्ट्ज़न रहते थे। यह एक समय कुलीन आवास स्थल था। उन्होंने, पिछले पचास वर्षों में, दुनिया के कोने-कोने से जो सहस्रों पक्षिचर्मों का भव्य अनुसंधानी संग्रहण किया था। वह भी इसी इमारत में था। इस संग्रह का अवलोकन तथा अध्ययन प्रसन्न करता था क्योंकि अधिकांश पक्षियों के चर्मसंस्कार मैनहर्ट्ज़न ने अपनी लाक्षणिक विचारशीलता तथा सर्वोत्कृष्टता से और उनके नामांकन एवं सूचीपत्रण सूक्ष्मता तथा सतर्कता के साथ किए थे। मैनहर्ट्ज़न की पत्नी एनी जैक्सन भी उच्चकोटि की पक्षिवैज्ञानिक थीं। उनकी 1928 में रिवाल्वर दुर्घटना से मृत्यु हो गई थी (पापी ही ऐसा सोच पाते हैं कि यह बात गढ़ी हुई हो)। मेरे भ्रमण के समय उनके साथ बहुत आकर्षक तथा युवा उनकी भतीजी (या भानजी) थैरैसा क्ले रह रही थीं। लगभग तीस वर्ष की थैरैसा कीटवैज्ञानिक थीं तथा साउथ कैंसिग्टन म्यूजियम में कार्यरत थीं जो बाद में 'पंख-यूक'[1] पर अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विदुषी बनीं।

1. 'पंख-यूक' (mallophaga)

17' कैंसिंग्टन पार्क गार्डंस' एक समान ('बैरोक वास्तु' की) संलग्न इमारतों की एक पंक्ति का अंग था। 'बैरोक वास्तु' शैली लंदन में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में लोकप्रिय थी। इसका स्तंभावलीय सम्मुख प्रवेश द्वारा मार्ग पर खुलता था, तथा पिछला प्रवेश द्वार आंगन के समान परिवेष्ठित बाग की तरफ खुलता था। यह बाग सभी आवासियों के उपयोग के लिए था। जून के प्रारंभिक दिनों में प्रसिद्ध वार्षिक डर्बी दौड़ होने वाली थी। डर्बी के दिन, मैनहर्ट्ज़न आनुष्ठानिक नियमितता से घनिष्ठतम मित्रों को अपने साथ एप्सम में पिकनिक लंच तथा मस्ती मनाने के लिए आमंत्रित करते थे। सौभाग्य से मैं उस समय वहां था और आमंत्रित किया गया था। एक शैरबंग (लंबी बस या कार) किराए पर ली गई थी। कुछ युवा, कुछ अधेड़, कुछ महिलाएं, कुछ पुरुष, कोई बीस-तीस लोगों ने उस बस की छत पर से, अन्य सहस्रों दर्शकों के समान, जोशोखरोश से ताली बजाकर, चिल्लाकर, दौड़ का आनंद उठाया तथा छप्पन प्रकार के भोजन किए। उस विशाल पार्किंग के स्थान पर वाहनों का जैसे समुद्र लहरा रहा था, तथा साथ ही मन बहलाने के लिए मेला लगा हुआ था। उसके पहले तक यह मेरी कल्पना के बाहर था कि मैनहर्ट्ज़न इतने मौज-मस्ती वाले तथा प्रसन्नवदन हो सकते हैं जितना उस दिन मैंने उन्हें सबके साथ देखा। उन्होंने सभी तमाशों में आगे-आगे भाग लिया, खटोलों के घोड़ों पर सवारी की, चटखारे लिए; यूं लगा कि उन्होंने पूरी तरह से आनंद लूटा।

उस डर्बी महोत्सव की एक व्यवस्था (अव्यवस्था) मेरे स्मृति पटल पर क्रोधाकुल होकर अंकित है। वहां मूत्रालय का प्रबंध न केवल गंदा, कुत्सित था वरन महोत्सव के नाम पर कलंक था। उस दिन ठंड थी और हवा तेज थी, सब उत्सव खुले में था, अतएव इस सुविधा की मांग भी अधिक थी। एक विशाल खुला शामियाना था जिसमें प्रवेश हेतु छह पैसे लगते थे। प्रवेश करते ही एक नाली के किनारे आपको बीसियों पेशाब करते हुए नंगे पुरुषों का सामना करना पड़ता था तथा इसके लिए भी 'क्यू' में अनेक लोग खड़े थे। उस नाली के किनारे सभी लोग अपने पूरे पैसे वसूल रहे थे। चूंकि उस दिन व्यवसाय तेजी पर था, नाली के किनारे से मूत्र बाहर आ रहा था, और दोपहर तक वहां, चाहे अनचाहे, मानवमूत्र का दलदल बन गया था, जिस पर से संक्रिया हेतु आने वालों को छपछप चलना पड़ता था। सबसे पिछड़ी सभ्यता में भी असभ्यता का यह प्रदर्शन घृणित माना जाएगा। और अंग्रेजों के 'घर' में यह सब देखकर मुझे प्रचंड धक्का लगा, वे अंग्रेज जो भारत में भारतीय लोगों की मलिन आदतों पर कितने गर्व से उन्हें बदनाम करते हैं। नहीं, कतई नहीं, इसमें हम उन्हें भारत में भी नहीं हरा सकते।

मैनहर्ट्ज़न के पुस्तकालय में पक्षियों, प्राकृतिक इतिहास तथा बड़े शिकार संबंधी पुस्तकों का श्रेष्ठ संग्रह था—उनमें से अनेक प्रथम संस्करण की तथा संग्राहकों की प्रिय थीं। किंतु मुझे उनकी लगभग सन् 1890 से लगातार तथा सतर्कता से लिखी

हुई डायरियों ने सर्वाधिक प्रभावित किया। वे एक से 'इटैलिक फौंट' में टंकित तथा चमड़े की सुंदर जिल्द में बंधी वार्षिक अंकों में संगठित थीं। उन डायरियों में मैनहर्ट्जन के व्यक्तिगत अनुभव, तथा अफ्रीका के ब्रिटिश उपनिवेशों के पूर्णतः जागृत औपनिवेशिक सेना अफसर की साहसिकताएं तो थी हीं, सहकर्मियों तथा अन्य समकालीनों के जीवंत संस्मरण भी थे। उस काल की राजनैतिक तथा सामाजिक स्थितियां, तथा व्यक्ति एवं घटनाओं पर निष्कपट, किंतु तीखी तथा कभी कभार अनुदार तथा पूर्वाग्रही, सम्मतियां एवं दृष्टिकोण भी उल्लिखित हैं। उनकी लंबी सैन्यसेवा की अवधि में, तथा अफ्रीका एवं अन्य देशों में किए बहुल वैज्ञानिक एवं शिकार संबंधी अभियानों में श्रमपूर्वक प्राप्त किए गए वैज्ञानिक तथ्यों तथा आंकड़ों का खजाना उन डायरियों में सुरक्षित है। वे (मैनहर्ट्जन) अत्यंत उत्साही, सतर्क तथा मौलिक सोच-विचार वाले व्यक्ति थे, इसलिए उनकी डायरियां अमूल्य खजाने से भरी पड़ी हैं।

उनकी पुस्तक 'केन्या डायरी' तथा अन्य प्रसिद्ध पुस्तकों का आधार यही उपर्युक्त डायरियां हैं। उनके जीवनीकारों ने उनकी डायरी का पूर्ण दोहन किया है, यथा जॉन लार्ड लिखित 'कर्तव्य, सम्मान, साम्राज्य' (न्यूयार्क, रैंडम हाउस, 1970) में। अफ्रीका में उनकी साहसिकताओं, तथा उनकी वीरता एवं हिम्मत संबंधी कहानियों ने उन्हें विस्तृत यश दिया, साथ-साथ बदनामी भी। 'दूसरी तरफ के लोगों' के मन में उनके प्रति जो भय मिश्रित आदर था, गैविन मैक्सवेल की एक पुस्तक में सुस्पष्ट रूप से उभारा गया है। गैविन के चाचा (मामा ?) लार्ड विलियम पर्सी स्वयं पक्षिवैज्ञानिक थे। अपने बचपन के अपने चाचा के संस्मरण में मैक्सवैल लिखते हैं, 'वे (लार्ड विलियम) कर्नल डिक मैनहर्ट्जन घनिष्ठ मित्र थे, और कर्नल के केन्या के पराक्रम प्रसिद्ध थे, वे मेरे लिए पौराणिक व्यक्ति के समान थे जो, चाचा विली के द्वारा मेरे एक बचकाने कथन पर लिए गए प्रत्युत्तर के फलस्वरूप, दैत्य के समान बन गए थे, ''गैविन, डिक मैनहर्ट्जन अगले सप्ताह हमारे यहां रहने के लिए आ रहे हैं। मैं यदि तुम्हारे स्थान पर होऊं तो उनके सामने ऐसी बातें नहीं कहूंगा कि उन्होंने नंगे हाथों से आदमियों को मारा है !''

मैनहर्ट्जन 'यहूदियों के लिए उनकी मातृभूमि' सिद्धांत के प्रतिपादक डा. चेम वाइज़मान के घनिष्ठ मित्र तथा प्रशंसक थे। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत जब अल्पकाल के लिए मैनहर्ट्जन पैलेस्टाइन के सैन्य गवर्नर थे, 'बैल्फोर घोषणा' को कार्यान्वित करने के लिए दोनों सक्रिय रूप से योजनाएं बना रहे थे। जब इज़राइल का स्वप्न साकार हुआ तब मैनहर्ट्जन वहां अक्सर भ्रमणार्थ जाते थे तथा वे विश्वभर से 'प्रतिज्ञात भूमि' पर आए यहूदियों के पक्षपाती थे। वे यहूदियों की निष्ठा, अध्यवसाय तथा देशभक्ति के अनन्य प्रशंसक थे। इसके विपरीत उन्हें मुस्लिम अरबों में कोई विशेष सद्गुण नहीं दिखते थे, तथा वे उनसे घोर घृणा करते थे। यह तो सच है कि इज़राइलियों ने अल्पकाल ही में उस रेतीली भूमि में आश्चर्यजनक विकास किया था, उस जलहीन

मरुस्थल में कृषि को फलीभूत करके संपन्न उद्यान बनाकर अपनी आवश्यकताएं पूरी कर ली थीं। उनकी एक प्रशंसा से प्रेरित होकर, मैंने उस देश को देखने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की थी, किंतु मुस्लिम नाम के कारण मेरा वहां स्वागत होगा इसमें मुझे संदेह था। मई 1953 में अपने इज़राइल के एक भ्रमण पश्चात उन्होंने एक पत्र में लिखा था :

> डैड सी (मृत सागर) तथा जोर्डन घाटी के ऊपर तथा अक़ाबा की खाड़ी में बाजों, महाबकों तथा गंगचीलों का प्रवासन देखने में मुझे बहुत आनंद मिला। आपको इज़राइल भ्रमण के विषय में कोई शंका नहीं करनी चाहिए : वहां कोई वर्गभेद नहीं है, धार्मिक विद्वेष नहीं है, राजनैतिक विद्वेष नहीं है। अधिनायकत्व के दोषों से नितांत मुक्त वहां विशुद्ध साम्यवाद है। चाहे वे साम्यवादी हों या दक्षिणपंथी परंपरापोषक हों, पूरी आबादी इज़राइल सरकार के प्रति पूर्णतः निष्ठावान है। मैंने भी ऐसा देश नहीं देखा जिसने पांच वर्षों के भीतर, छह शत्रुवत मुस्लिम अरब देशों से घिरे होकर भी, इतनी अधिक उपलब्धियां प्राप्त की हों। बिना किसी आक्रामक राष्ट्रवाद या घमंड के, सारे वातावरण में उत्साह, उन्नति तथा देशभक्ति व्याप्त है। विनम्रता जो एक विरल मानव सद्गुण है यहां सर्वसुलभ है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि मध्यपूर्व को इज़राइल स्थायित्व प्रदान करता है। वहां जाइए और देखिए!...विश्व के किस भाग में सर्वाधिक गड्डमड्ड है? क्या विश्व का कोई भाग है जिसमें कोई गड्डमड्ड नहीं है? अफ्रीका तथा एशिया दोनों जाग रहे हैं : जम्हाई लेने की अवस्था उन्होंने पार कर ली है और अब वे अपने पैरों पर खड़े हो रहे हैं, किंतु मेरी इच्छा है कि इसके लिए वे इतना हल्ला-गुल्ला न करें।

इंग्लैंड के उल्लासपूर्ण समय, बसंत ऋतु के मनोरम दृश्यों का आनंद लेते हुए अपनी मोटरसाइकिल में वहां के अनेकानेक सुदूर आवासी मित्रों से मिलने गया। इंग्लैंड में लगभग एक सप्ताह आनंद लूटने के बाद गोथैनबुर्ग के लिए एक स्वीडी जहाज में प्रस्थान किया। औद्योगिक नगर औरेब्रो में एक रात मित्रों में बिताकर, मैं दोपहर को, कांग्रेस के उद्घाटन सत्र हेतु बिलकुल ठीक समय पर उप्साला पहुंचा। भारत से मोटर साइकिल पर यात्रा करते हुए भी, एकदम ठीक समय पर पहुंचने के कारण, मेरे मित्रों तथा अन्य प्रतिनिधियों में हल्की-सी हलचल मच गई थी ! मैंने अपनी एकल मशीन पर दो बड़े-बड़े कैनवस के थैले लगवा लिए थे। उनमें मेरा पूरा 'वार्डरोब' (वस्त्रागार) था, जिसमें औपचारिक अवसरों के लिए एक काली शेरवानी भी थी; किंतु यह बाद में समझ आया कि इनमें से अधिकांश व्यर्थ का वजन था। रात्रि के समय होटलों आदि में ये थैले निकालकर अंदर लिए जा सकते

थे। वे सामान ले जाने के लिए बहुत सुविधाजनक तो थे, किंतु अपने वजन के कारण वे मोटरसाइकिल का संतुलन बिगाड़ देते थे तथा पिछाड़ी में डगमगाहट पैदा करते थे जो चिंता पैदा करती थी। जब यूरोप के अनेक नगरों की चिकनी बटियादार सड़कों पर तेजी से उसे चलाते थे, तब तो वह खतरनाक हो जाती थी। इस तरह की अनेक अनियत फिसलनों में मुझे एक कड़ी चोट करने वाली फिसलन जर्मनी के युद्ध ध्वंसित नगर मॅन्स्टर में प्रवेश पूर्व हुई थी। उस फिसलन से मोटरसाइकिल ने पूरा एक चक्कर लगा लिया था और मुझे बीच सड़क में चारों खाने चित्त गिरा दिया था, वह तो मेरा सौभाग्य था कि चोटें इतनी मामूली थीं कि मुझे अपनी यात्रा को रोकना नहीं पड़ा। उस समय सड़क पर आवाजाही कम थी नहीं तो कोई विशाल दैत्याकार ट्रक जिसमें एक दर्जन कारें लदी रहती थीं, पीछे से आकर सारे अभियान को एक क्षण में समाप्त कर सकता था; ऐसे ट्रक जब भी मेरे बाजू से गरजते हुए 'आटो मोटरवे' पर निकलते थे, हमेशा मेरा मन दहला देते थे !

फ्रांसीसी कार चालकों तथा विशेषकर ट्रक चालकों की जानलेवा ड्राइविंग के प्रति मुझे चेतावनी दे दी गई थी। कार चालकों ने पेरिस मार्गों पर मुझे अनेक भयाकुल प्रमाण दिए किंतु अनेक बार मैं ध्वंस से बच गया। मुझे फ्रांसीसियों, कम से कम पेरिस वालों के अन्य अप्रिय गुणों के अनुभव भी हुए। मेरे साथ यह इतने अधिक बार हुए कि मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि व्यक्तियों में मैत्री भावना तथा सौजन्य की न्यूनता के कारण ऐसा हुआ, किंतु, संभवतया फ्रांसीसियों के कुख्यात उत्कट भाषाई मोह के उजड्ड तथा सुविचारित प्रदर्शन के कारण हुआ। मेरे लिए पेरिस नया था। प्रत्येक दिन, निकलने से पहले मैं नक्शे का अध्ययन सूक्ष्मता से करता था। किंतु सड़कों पर मरम्मत या किन्हीं अन्य कारणों से मार्ग बदलना पड़ता था तब सरलता से सड़कों तथा बुलवार्डो के जाल में भटका जा सकता था। दुर्भाग्य से मुझे फ्रांसीसी भाषा नहीं आती और जब भी मैंने किसी पैदल चलते व्यक्ति से विनम्रतम अंग्रेजी में सहायता मांगी, उसने मेरी तरफ पहले तो ताका और फिर बिना क्षमायाचना का स्वांग भी किए—पीछे मुड़कर चल दिया।

सन् 1944 में जब से मेरा परिचय विशाल रण-कच्छ के विशाल क्रुंचों (राजहंसों) के अकल्पनीय प्रजनन क्षेत्रों से हुआ तबसे इस पक्षी में मेरी विशेष रुचि हो गई। उप्साला कांग्रेस में मैं अनेक यूरोपीय तथा अमेरिकी पक्षिवैज्ञानिकों से मिला जो क्रुंचों के प्रेमी थे। उनसे इस विषय पर चर्चाएं हुईं, जानकारी का आदान-प्रदान हुआ। उन्होंने मेरी कच्छ के रण वाली रिपोर्ट पढ़ी थी। स्वभावतया मैं दक्षिणी फ्रांस में 'कमार्गे' तथा स्पेन में ग्वाडलकिविर नदी के मुहाने पर स्थित यूरोपीय प्रजनन क्षेत्रों का, पारिस्थितिकी की तुलना करने की दृष्टि से, अध्ययन करना चाहता था। फ्रांसीसी पक्षिवैज्ञानिकी के आदरणीय विद्वान, तथा 'म्यूज़े दिस्त्वार नातुरैल' (प्राकृतिक इतिहास म्यूजियम) के प्रोफेसर जे. बेलियोज़ ने मुझे कृपापूर्वक कमर्गे के क्रुंच संरक्षक के नाम परिचय पत्र दिया।

युवा स्विस पक्षिवैज्ञानिक डा. ल्यूक हाफ़मान ने आतिथ्य तथा उस क्षेत्र में पक्षी के अध्ययन की सुविधाएं भी दीं। इन्हीं डा. ल्यूक ने बाद में जैववैज्ञानिकीय अनुसंधान केंद्र खोला था, जो कालांतर में विश्व प्रसिद्ध 'स्ताशियां बायोलॉज़ीक दु ला वाला'[1] हुआ तथा डा. ल्यूक ने भी विश्वख्याति पाई। एक दिन मुझे उनके यहां लंच के लिए पहुंचना था। मैं उनके आवास से 100 कि.मी. दूर गया हुआ था। मैंने 1 बजे पहुंचने के हिसाब से यात्रा प्रयाण किया था। मैंने फ्रांसीसी ट्रक-चालकों के कारण उत्पन्न स्थिति का सही आकलन नहीं किया था, अतएव मैं उनके घर 4.30 बजे माथे पर गहरी चोट तथा मोटरसाईकिल की टूटी हैडलाईट और कुछ अन्य जगहों पर पिचकी हुई मोटरसाईकिल के साथ पहुंचा। सौभाग्य से वे चोटें इतनी गंभीर नहीं थीं कि मुझे रोक लेतीं। जब मैं एक अंधे मोड़ पर बड़ी सावधानी से आ रहा था, तभी एक पूरे भरे ट्रक ने फ्रांसीसी ऊर्जा के साथ उस मोड़ पर तेजी से मुड़कर मुझे लगभग सीधी जोरदार टक्कर दी। मुझे लुढ़कता पुढ़कता फेंककर, वह ड्राइवर अपनी मातृभाषा में जोर से चीखा (निस्संदेह कोई सम्मानजनक बात नहीं) और अपने रास्ते चलता गया, मानो कि वह भी उसका रोज का कार्य था। अनुसरण करती एक कार के भले सज्जन ने खून से लथपथ मुझे उठाया तथा आर्ले नगर के पास एक कान्वैंट की मठवासिनियों (नन) द्वारा चालित अस्पताल में तुरत-फुरत पहुंचा दिया। इन भली महिलाओं में से एक भी अंग्रेजी नहीं जानती थी। मूक अभिनय द्वारा उनको स्थिति तथा परिस्थिति समझाना, अपनी विश्वसनीय पहचान स्थापित करना बहुत थकाने वाला था तथा यह समझाना कि एंटी टिटैनस इंजेक्शन मुझे लग चुका है—मूक पहेली-बुझौवल था, यद्यपि वे इस इंजेक्शन के विषय में विशेष चिंतित थीं। (यह सब आज मजेदार लगता है)। कृपालु 'सिस्टर्स' ने शीघ्र ही सिलाई कर दी, पट्टियां बांध दीं, और मेरे कपड़ों से खून के धब्बे धो दिए, किंतु उस दशा में वे मुझे अस्पताल से छुट्टी नहीं दे रही थीं और जोर दे रही थीं कि एक रात मुझे उस अस्पताल में रहना जरूरी है। वह शब्दहीन संघर्ष था जिसने मुद्राओं की सहायता से अंततः मुझे अस्पताल से छुट्टी दिलवाई, फलस्वरूप आभार प्रदर्शन के लिए कुछ और मूक अभिनय हुआ। मेरे पास मेरे आतिथेयी का टेलिफोन नंबर नहीं था और उन कृपालु नन्स को यह समझाना असंभव था कि मैं क्या चाहता था। परंतु उन्होंने मेरी सनबीम तक के लिए टैक्सी कर दी, जहां मेरी मोटरसाइकिल तब तक एक ओर पड़ी हुई थी और कुछ ठोकपीट की सहायता से, कुछ सीधा करने से कुछ हथौड़े से आकार सही कर, बिचारी, बिना किसी न-नुच के चालू हो गई तथा रास्ते भर उसने कोई कष्ट नहीं दिया। मेरे आतिथेयी मेरे न पहुंचने के कारण कुछ करने के लिए विचार कर रहे थे, जब मैं अपने सिर पर पट्टी बांधे उन्हें घटना का वर्णन सुनाने पहुंच गया।

---

1. 'स्ताशियां बायोलॉज़ीक दु ला वाला' (Station Biologique du la Valat)

दुर्भाग्य से कमर्गे में जुलाई माह क्रुंचों के लिए प्रजनन ऋतु नहीं है। किंतु प्रजनन क्षेत्र पहुंचकर अप्रयुक्त घोंसलों का परीक्षण करना उपयोगी हुआ, विशेषकर इसलिए कच्छ के रण में क्रुंच नगर में पहुंचने की तुलना में यहां यह आसान था। कमर्गे में अच्छी ऋतु में अनुमानतः लगभग 7,000 जोड़े नीड़न करते हैं। कच्छ के क्रुंच नगर की आबादी के (आवासी नीड़ों के आधार पर) कामचलाऊ विश्वसनीय अनुमान (जो अब तक केवल 1945 में किया गया था) के अनुसार कुल आबादी (नर तथा मादा तथा सभी शावक मिलाकर) 5 लाख है। उस गणना में, जो अंडे उस समय सेए जा रहे थे वे नहीं जोड़े गए थे। इस तरह यह विश्वसनीय हो सकता है कि विशाल क्रुंचों की कच्छ-कालोनी एशिया की सर्वाधिक आबादी वाली कालोनी है, तथा यह भी संभव है कि विश्व में भी महत्तम हो। 1945 का क्रुंच नगर अभियान मेरे लिए सर्वाधिक स्मरणीय है क्योंकि उसके पूर्व तथा बाद के अभियानों में, केवल उसी वर्ष मुझे कालोनी सर्वाधिक प्रजनन कार्यकलापों में लगी मिली।

कांग्रेस पश्चात उप्साला से मैंने स्वीडी लापलैंड के अबिस्को तथा स्वीडी-नार्वे सीमा पर स्थित रिक्सग्रांसैन क्षेत्र अभियान के लिए चुने। वे हिममंडित पर्वतों, छल छल करते झरनों तथा आंशिक हिमावृत्त झीलों तथा तड़ागों वाले मनोरम दृश्यों सहित परियों के देश के समान कल्पना से परे सुंदर क्षेत्र थे। मध्य जून के लगभग पक्षियों का प्रजनन कार्य चोटी पर था। मुझे अपने भारतीय शीतकालीन प्रवासी मित्रों—शतकुकरी[1], 'व्हिमब्रैल', लाल ग्रीवी 'फ़ैलारोप', चौड़ चंचु सिकतिल, दो 'गॉडविट' की जातियां तथा दो 'स्टिंट्स' की—को अपने ग्रीष्मकालीन सुंदर परिधानों में तथा उनके ध्रुवीय नीड़न क्षेत्रों में मिलकर विशेष खुशी मिली।

अबिस्को में हम लोग पर्यटकों की कुटियों में रखे गए। मेरे साथ, कुटी में, 'वाइल्ड फाउल ट्रस्ट' के पीटर स्कॉट तथा आइसलैंड के दैत्याकार (संभवतया मेरे अनुभव के सर्वाधिक बड़े तथा भारी पुरुष) फिन्नुर गुडमुंडसन थे। किसी हट्टे-कट्टे भारी भरकम खुर्राटे भरने वाले व्यक्ति के साथ छोटा कमरा या उच्चतुंग तंबू में रहना मेरे प्रिय विरोधों या अरुचियों में से एक है, तथा मेरी दीनावस्था की अवधारणा है। मैं गुडमुंडसन से पहले नहीं मिला था अतएव मुझे उसके प्रमुख आंकड़े या उनके खुर्राटे भरने की क्षमता की कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए जब मैंने उन्हें देखा तब छोटे-से कमरे को उसके महाकाय शरीर से, कल्पना में ही, भरते देखकर मेरा हृदय बैठने लगा। अतएव अत्यंत दुखी रात्रि के लिए मैंने कमर कस ली। मेरा भय निराधार साबित हुआ : सुख की बात थी कि अपने महाकाय कद के लिए फिन्नुर उदार रूप से खुर्राटे भरने वाला नहीं निकला। मैंने उन्हें सज्जन तथा मित्रवत व्यक्ति तथा उत्तम पक्षिवैज्ञानिक पाया जिनसे मैंने उनकी मनोहर मातृभूमि

1. शतकुकरी (curlew)

तथा उसके पक्षियों के जीवन की बहुत-सी बातें सीखीं।

मैं देखता हूं कि मैंने बी.एन.एच.एस. के बाद की कहानी छोड़-सी दी है। बी.एन.एच.एस. से, बर्मा से 1924 में लौटने के बाद से, तथा भारत की स्वतंत्रता के बाद से विशेषकर गहराई से जुड़ा रहा हूं। व्यक्तिगत रूप से यह काल मेरे लिए बौद्धिक परितोष का काल रहा है, तथा मुझे ऐसा लगता है, सोसायटी की प्रगति में विशेष महत्व का रहा है और देश-विदेश में इसकी छवि का उपयुक्त प्रसारण हुआ है। स्वतंत्रता के तुरंत बाद प्रेटर के जाने से क्यूरेटर का पद रिक्त हुआ था तथा चार्ल्स मैककान के जाने से न केवल सह-क्यूरेटर का पद रिक्त हुआ था वरन वे प्रेटर के क्यूरेटर के पद के लिए उपयुक्त थे तथा उसे भर सकते थे। अतएव मेरे सचिव कार्यकाल में तथा अस्थायी क्यूरेटर के पद के समय मेरी एक समस्या इन पदों के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के चुनाव की थी। दोनों ने उत्कृष्टता का जो मापदंड स्थापित कर दिया था उसके लिए योग्य व्यक्ति पाना कठिन था। अतएव अनेक प्रत्याशियों को परीक्षाधीन रखकर ही योग्यताओं की संभावना लिए अनुभवहीन होते हुए भी उपयुक्त व्यक्तियों का चुनाव हो सका था।

इस समय मुझे एक अलौकिक संयोग का स्मरण आता है, जो निश्चित ही अद्वितीय माना जा सकता है। मैंने यह कहानी नाना प्रकार के सभी लोगों को अनेक बार सुनाई है, किंतु यहां दुहराने में कोई नुकसान नहीं होगा। केरल का एक युवा प्राणिविज्ञान का एम.एससी. इस पद के लिए प्रत्याशी चुना गया। और आश्चर्य था कि वह क्षेत्रकार्य में रुचि रखता था तथा उसे करने के लिए उत्सुक भी था। क्षेत्र कार्य में काफी तथा लगातार शारीरिक श्रम की आवश्यकता होती है, अतएव साधारणतया जो उसे टाल सकते हैं उनमें से, अधिकांश उसे टाल देते हैं। इस रूढ़िमुक्त युवक की पृष्ठभूमि के विषय में और जानकारी लेने के लिए मैंने उससे यूं ही पूछ लिया कि क्या उसने केरल में जीवनायकम नाम के व्यक्ति के विषय में कुछ सुना है। 1930 दशक में त्रावणकोर सरकार ने शिक्षाविदों की भ्रमणशील समिति[1] बनाई थी जिसके सदस्य सचिव थे जीवनायकम और जिसका कार्य था राजकीय सहायता प्राप्त शालाओं के भ्रष्टाचारों की जांच पड़ताल करना। 1932 में जब मैं त्रावणकोर राज्य में पक्षिसर्वेक्षण के लिए घूम रहा था, मैं अक्सर विभिन्न डाक बंगलों या शिविर तंबुओं में जीवनायकम से टकरा जाता था। जीवनायकम ने मेरे प्रति हमेशा विशाल सहृदयता तथा मित्रता का भाव प्रदर्शित किया तथा हमारे पक्षिकार्य में उत्साहपूर्ण रुचि। किंतु उसके बाद हम लोग नहीं टकराए। अब यहां केरल का एक शिक्षित युवा था : उसके द्वारा जीवनायकम को जानने से अधिक संभव क्या हो सकता है! अतएव मैंने डेनियल से विनोदपूर्ण मुद्रा में पूछा था कि क्या

1. भ्रमणशील समिति (Statham Committee)

उसने अपनी जन्मभूमि त्रावणकोर में ऐसे व्यक्ति का नाम सुना है (जिसे मैंने केवल बीस वर्ष पहले जाना था)। तब मैंने पूर्ण अविश्वास के साथ सुना, क्योंकि ऐसा होने का संयोग एक करोड़ में से एक था, कि जीवनायकम और कोई नहीं वरन स्वयं डेनियल के पिता थे ! दक्षिण भारतीय परंपरा के अनुसार उसके नाम जे.सी. डेनियल के आद्य अक्षरों में जे. जीवनायकम का द्योतक था और मैं कितना भोला था कि इसका अनुमान भी नहीं कर सका !

सन् 1929 के मेरे पक्षिवैज्ञानिकी में अपने उज्ज्वल भविष्य हेतु विशिष्टता प्राप्त करने के दुखद अनुभव पर चर्चा करते हुए याद आता है कि भारत में उस समय इस योग्य कोई भी संस्था नहीं थी जो क्षेत्र-कार्यों आदि में उपयुक्त शिक्षण दे सके। जब बी.एन.एच.एस. में हम लोगों ने आवश्यक अनुभव तथा विशेषज्ञता में योग्यता प्राप्त कर ली तब मैं बंबई विश्वविद्यालय को समझा सका था कि वे क्षेत्र-पक्षिवैज्ञानिकी में स्नातकोत्तर तथा डाक्टर (पीएच.डी.) की डिग्रियों के लिए बी.एन.एच.सी. को पथ-प्रदर्शिका संस्था के रूप में मान्यता प्रदान करें। मेरा प्रथम एम.एससी. का विद्यार्थी था पुणे का विजयकुमार अम्बेडकर। उसकी थीसिस के लिए बाह्य परीक्षक के रूप में डॉ. डेविड लैक एफ.आर.एस. (एडवर्ड ग्रे इंस्टिट्यूट ऑफ फील्ड आर्निथोलाजी, ऑक्सफोर्ड के निदेशक) को आमंत्रित करने के लिए मैंने विश्वविद्यालय को, असाधारण मामला मानते हुए सहमत करा लिया था। उसकी थीसिस का विषय था, 'The Ecology and Breeding Biology of the Baya Weaver Ploceus philipinus (Linn)' (कथकंठ सोनल बया की पारिस्थितिकी तथा प्रजनन जैववैज्ञानिकी)। उन्हें मैंने अपने संतोष के लिए बुलवाया था। यह जानने के लिए कि मेरा पथ प्रदर्शन ठीक दिशा में चल रहा था या नहीं। अम्बेडकर की थीसिस के डॉ. लैक द्वारा किए मूल्यांकन ने मुझे आश्वस्त किया, कुछ छोटी आलोचनाओं के बाद उन्होंने लिखा, "यह मानते हुए कि बंबई विश्वविद्यालय की एम.एससी. का स्तर 'इंग्लिश विश्वविद्यालयों' के स्तर के बराबर है, मेरी राय में प्रस्तुत थीसिस अवार्ड के उपयुक्त है, तथा वांछनीय स्तर को अच्छी तरह पा सकी है।...मुझे थीसिस बहुत रुचिकर लगी, अभिव्यक्ति स्पष्ट है, तथा संप्रेषणीयता उत्तम, विषय पर उपलब्ध साहित्य का उपयोगी सर्वेक्षण और पर्याप्त मात्रा में मौलिक अनुसंधान है, जो इसे अवार्ड के लिए पूर्णतः योग्य ठहराता है।"

मैंने बीजरूप में अनुदान देकर, बी.एन.एच.एस. के तहत 'सालिम अली-लोके पक्षिवैज्ञानिकीय अनुसंधान विधि' (SALOR) की स्थापना की है। इसकी 3;00,000 रु. की निधि सोसायटी के सदस्यों तथा हितैषियों के अनुदान से बनी है, किंतु मुख्यतया यह सिंगापुर के लोके परिवार के उपकार द्वारा संभव हुआ है। इस निधि की स्थापना मेरे घनिष्ठ मित्र एवं साथी पक्षिवैज्ञानिक लोके वान थो की स्मृति हेतु की गई थी, जिनकी मृत्यु 1964 में ताइवान में विमान दुर्घटना में हुई थी। इस निधि के ब्याज

से दो स्नातकोत्तर 'फैलो' को दो या तीन वर्ष के लिए सहायता दी जाती है। बाद में सर दोरबजी टाटा ट्रस्ट के अत्युदार दान से सोसायटी एक और फैलो को उसके अध्ययन काल के दौरान सहायता देता है। सोसायटी अब इतनी योग्यता के उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित क्षेत्र-जैववैज्ञानिक तैयार कर सकती है, जितने शेष भारत में मिलने कठिन हैं; यह सब मुझे बहुत संतोष देता है।

18
हामिद अली

कुछ वर्ष पहले, संयोग से, विख्यात इंडियन सिविल सर्वेंट सर मैल्कम डार्लिंग द्वारा लिखित पुस्तक 'शक्ति प्रशिक्षु'[1] (1966 में प्रकाशित) मेरे हाथ लगी। यह पुस्तक लेखक के 60 वर्षों पुराने भारत के प्रथम साढ़े तीन वर्षों का, जब वे इंडियन सिविल सर्विस के नए-नए सदस्य थे, वर्णन करती है। यह पुस्तक उनके इंग्लैंड में मित्रों को तथा उनकी मां को लिखे गए पत्रों तथा डायरी पर आधारित है। पुस्तक के प्राक्कथन में वे आत्मस्वीकृति देते हैं, 'मैं भारत, उसके इतिहास को थोड़ा बहुत जानकर आया था, किंतु उसके जन का मुझे कोई ज्ञान नहीं था।' उनकी पुस्तक के प्रथम अध्याय के प्रथम पैरा में उनके भारत आगमन का वर्णन है—जिसने मुझे अप्रत्याशित गर्व का रोमांच दिया। लिखा था :

> "27 नवंबर, 1904 रविवार को 'सिटी ऑफ वियना' ने बंबई में लंगर डाला। मैं डैक (जहाज की छत) पर सो रहा था, जब मैं उठा तब सुंदर पत्तन के पार दूर पहाड़ियों के पीछे अरुणिम आभा लिए सूर्योदय हो रहा था। गर्मी लग रही थी, तथा वायु में विदेशी सुगंध थी, कुछ वैसी जैसी पोर्ट सईद में मिली थी। पोर्ट सईद ने मुझे 'पूर्व का भय—घृणित देसी लोग' वाली भावना दी थी। यह सुखद है कि जहाज पर एक भारतीय है जिसने मुझे नितांत भिन्न प्रभाव दिया। बंबईवासी तथा मेरी ही तरह इंडियन सिविल सर्विस के लिए नए हामिद अब्दुला अली ने फ्रांसीसी, जर्मन तथा इंग्लिश में विस्तृत अध्ययन किया है, उनकी अपनी राय हैं उन विषयों पर जिन्हें उन्होंने पढ़ा है, तथा उनका हास्यबोध तीव्र है। मेरे लिए वे, जहाज पर, 'सर्वाधिक' रुचिकर व्यक्ति थे किंतु एक दुर्घटना ने उन्हें गोरे के स्थान पर काला बना दिया जिसके फलस्वरूप जहाज के संगी साथियों से, मुझसे भी अधिक मात्रा में, अलग रखे गए। भारत में, उन दिनों, पूर्व तथा पश्चिम के बीच की विस्तृत खाई का यह मेरा पहला अनुभव था।"

1. 'शक्ति प्रशिक्षु' (Apprentice to Power)

हामिद मेरे सर्वाधिक प्रिय भाई थे, जैसे कि संभवतया वे अन्य भाई-बहनों के भी थे। मुझे यह सोचने का दुस्साहस करना अच्छा लगता है कि मैं उनके निकटतम था—स्वभाव, रुचियों, दृष्टिकोणों तथा पसंद-नापसंद में मैं उनकी निम्नतर नकल हूं। परिवार में सर्वाधिक प्रभाव तथा सीधा प्रोत्साहन उनका ही था, कृति विज्ञान में मेरी प्रारंभिक दीक्षा तथा विकास हुआ। मेरे ग्यारहवें या बारहवें जन्मदिन पर जबसे मुझे उन्होंने रौलैंड वार्ड का अंड-संग्रहण 'किट' दिया, तबसे उन्होंने मेरे पक्षी-अध्ययन की प्रगति पर सहानुभूतिपूर्वक तथा प्रोत्साहित करने वाली दृष्टि रखी, उनकी सकारात्मक टिप्पणियां एवं सलाहों ने मुझे और अधिक परिश्रम करने के लिए हमेशा प्रेरणा दी। मेरी 'त्रावणकोर पक्षिवैज्ञानिकीय सर्वेक्षण' की रिपोर्ट पर उन्होंने मुझे लिखा (सतारा, 20.6.35), 'बी.एन.एच.एस. जर्नल [वाल. 37(4)] के ताजे अंक में तुम्हारे 'त्रावणकोर सर्वेक्षण' लेख को मैं अभी ही पढ़ पाया। यह उचित होगा कि मैं तुम्हें, विषय को तुमने जिस ढंग से पकड़ा है, उस ढंग पर, बधाई की कुछ पंक्तियां लिखूं। मेरी समझ में, अभिव्यक्ति में यह परिपक्वतम तथा गंभीरतम है तथा विषय एवं सामग्री में सर्वाधिक पर्याप्त है। इसे पढ़ने में मुझे इतना सुख मिला कि मुझे बैठना और लिखना पड़ा।' हामिद भाई से सिंध में दौरों पर, शीतकालीन छुट्टियों में, शिविरों में जो आनंद लूटा वह अपने आप में शिक्षा थी। वे मेरे लिए स्मरणीय सुअवसर थे, न केवल इसलिए कि उन्होंने प्राकृतिक इतिहास तथा पक्षियों के प्रति मेरे प्रेम को पनपाया, वरन इसलिए भी कि जिन लोगों के प्रति वे (हामिद भाई) उत्तरदायी थे, उन्हें उन्होंने जो सच्चे प्रेम तथा आदर की प्रेरणा दी तथा उन्हें स्वयं जो सार्वजनीन लोकप्रियता मिली उसके रहस्य की मुझे अंतर्दृष्टि भी प्राप्त हुई। सचमुच, लोगों के मन में उनके प्रति जो सम्मान तथा स्नेह था वह इतना गहरा था कि जब बीसेक वर्षों बाद मुझे उनके उन जिलों में भ्रमण का अवसर आया जिनमें उन्होंने काम किया था, तब मात्र यह कहने पर कि मैं उनका भाई हूं, जिन्होंने उनके साथ काम किया था वे श्वेत दाढ़ी वाले लोग अतीव भावोच्छवास के साथ खुले हृदय से मेरा स्वागत करते थे, तथा राजसी आतिथ्य एवं सहायता करते थे।

हामिद उच्चकोटि के बहुभाषी थे। यूरोपीय भाषाओं में अंग्रेजी, जर्मन तथा फ्रांसीसी में पांडित्यपूर्ण प्रवीणता तो थी ही, वे उर्दू, हिंदी, सिंधी, गुजराती, मराठी, पश्तो, अरबी तथा फारसी लिखने तथा पढ़ने में कुशल थे तथा इनमें से अधिकांश भाषाएं वे धाराप्रवाह बोल भी सकते थे।

हामिद के ससुर, मेरे मामा अब्बास तैयबजी की बात कुछ अलग है यद्यपि उन राजनैतिक हलचलों के दिनों में ऐसे अनेक व्यक्ति मिलते थे। लगभग 1893 में, इंग्लैंड से बैरिस्टर बनकर आने के बाद वे बड़ौदा के गायकवाड़ की न्यायिक सेवा में लग गए थे। अनेक वर्षों तक 'जिला न्यायाधीश' रहने के बाद वे बड़ौदा

उच्च न्यायालय की पीठ के सदस्य बने तथा 1913 में सेवानिवृत्त हुए। जब मेरी मां 1897 के लगभग विधवा हुई, तब उनके बड़े तथा एक ही एक भाई होने के कारण उन्हें मेरे भाई बहनों का अभिभावक बनना पड़ा। मां की मृत्यु पर हम सब भाई बहन अनाथ हुए और उनकी अभिभावकता से छूटे, तथा एक दूर के निस्वार्थी मामा अमीरुद्दीन तथा उनकी निस्संतान पत्नी हामिदा ने तत्परता से हम सबकी अभिभावकता ले ली (इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है)। यह दुख के साथ कहना पड़ता है कि उनकी मृत्यु तक (1935 या 36), मेरे गुरुजनों में अब्बास मेरे पक्षिवैज्ञानिकीय कार्यों के कटुतम आलोचक रहे तथा उन्हें पूरी तरह से 'अस्वीकार' करते रहे। उनकी दृष्टि में मैं कामचोर 'उड़ाऊ' था, तथा पक्षिवैज्ञानिकी मेरे आलस्य तथा 'ईमानदार एवं लाभदायक' कार्य न करने का आवरण मात्र थी। यह भी दुख की बात है कि आलस्य ने जो लाभ दिया उसे देखने के लिए वे जीवित न रहे।

यह सब अलग कहानी है। इंग्लैंड में उनकी शिक्षा के समय से, उनके उच्च न्यायालय से सेवानिवृत्ति तक मामा अब्बास (अंग्रेज) भक्तों में भी कट्टर भक्त रहे। यद्यपि वे हृदय से देशभक्त थे किंतु ब्रिटिश लोगों, ब्रिटिश राज, और राजा-सम्राट या राजपरिवार के विरुद्ध हल्की-सी निंदा या अवमानना उन्हें असहनीय थी; यह इतनी तीव्र थी कि यदि वे किसी ऐसी चर्चा में फंस जाते जहां इस तरह की भक्तिहीन या राजद्रोही भावनाएं व्यक्त की जा रही हों, तब वे वहां से उठकर सीधे बाहर चल देते थे। यदि उनके हृदय में स्वदेशी के प्रति प्रबल भावनाएं रही हों तब उन्होंने उन्हें कभी सिद्धांतों या उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। उनके अधिकांश कपड़े विदेशी सामग्री से बनते थे, तथा उनके गृहस्थी की प्रत्येक वस्तु तथा जीवनपद्धति 'कुलीन' थी, पक्की पाश्चात्य तथा एकदम 'प्रॉपर' (अंग्रेजों की दृष्टि में उचित) थी। ऐसी स्थिति में, गांधीजी तथा उनके राजनैतिक जनजागरण की पद्धतियों—सविनय अवज्ञा, भारत में ब्रिटिश सरकार से असहयोग (यद्यपि वह अहिंसात्मक था) तथा आक्रामक स्वदेशीवाद जिसमें विदेशी कपड़ों को जलाया जाता था—से वे प्रचंड रूप से असहमत थे। उनका संयमित किंतु आतुर राष्ट्रप्रेम तथा न्यायाधीश के बतौर उनकी शतप्रतिशत ईमानदारी तथा निष्पक्षता के लिए वे विस्तृत रूप से वामपंथी कांग्रेसियों तथा ब्रिटिश विरोधी आंदोलनकारियों द्वारा भी जाने माने जाते थे तथा सम्मानित थे।

सन् 1919 में जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद कांग्रेस ने एक स्वतंत्र 'तथ्य जांच समिति' बनाई तब अध्यक्ष/संयोजक के लिए अब्बास तैयबजी का चयन हुआ। जनरल डायर की नृशंसता का वर्णन जब उन्होंने सैकड़ों प्रत्यक्षदर्शियों से सुना तथा उनका प्रति परीक्षण किया, उन साक्षात तथ्यों से सामना करते समय जैसे उन्हें उलटी कर देने की इच्छा तथा घृणा हो रही थी। घोर राजभक्तों तथा परंपरावादी अंग्रेजों से जब उन्होंने जनरल डायर की प्रशंसा सुनी तब वे सहसा जैसे विश्वास

न कर सके किंतु इस घटना के पश्चात उनका मोहभंग हुआ और पूर्ण कायाकल्प हो गया। सहसा, जैसे एक रात में ही, उन्होंने राजनैतिक पलटी खाई और शीघ्र ही गांधीजी के परम निष्ठावान सहकर्मी बन गए। उन्होंने अपनी पाश्चात्य अभिजात वर्गीय जीवनशैली त्याग दी तथा उत्कटता से सीधी सादी हाथ की काती गई खादी अपना ली। सारे देश में रेल की यात्रा उन्होंने अनभ्यस्त तीसरे दर्जे में करनी शुरू कर दी, आश्रमों या खटमलों से पीड़ित असुंदर धर्मशालाओं में ठहरना, कड़ी जमीन पर सोना, तथा तपती दोपहरों में दूर-दूर तक पैदल चलकर औपनिवेशिक 'शैतान' ब्रिटिश भारतीय सरकार के विरोध में अहिंसा तथा असहयोग के 'धार्मिक सत्यों' पर प्रवचन देना उनका धर्म हो गया। यह सब कठोर जीवनशैली उन्होंने तब अपनाई जब वे सत्तर वर्ष कभी का पार कर चुके थे, जिसमें राजनैतिक कैदी के रूप में कुल मिलाकर उन्होंने अनेक वर्ष भी बिताए थे।

हामिद 1917 में गुजरात के पांच महल जिले के सहायक कलेक्टर तथा जिला मजिस्ट्रेट थे। उस समय मैं बर्मा से अध्ययन-अवकाश पर भारत आया था। उनके शीतकालीन दौरे पर उनके शिविर में कुछ दिन उनके साथ बिताने का अवसर मिला था। गांधीजी के प्रभाव से ब्रिटिश सरकार से असहयोग का आंदोलन तेजी से फैला था। अतएव उस समय लोगों पर निष्ठाहीनता या देशद्रोह (राजद्रोह) के अभियोग बहुत लगाए जाते थे। उसी समय हामिद भाई को गांव के एक पटेल, जिस पर सरकार ने राजद्रोह का अभियोग लगाया था, पर अन्वीक्षा कर न्याय करना था। उस पटेल के प्रतिवाद के लिए साक्षी देने स्वयं गांधीजी आए थे। लंबी सुनवाई के बाद पटेल को निरपराधी घोषित कर छोड़ दिया गया। कचहरी तंबू से थोड़ी ही दूर, एक पुरानी भव्य अमराई में, हम लोग भी एक तंबू में थे। मुझे पूरी तरह याद है जब हामिद भाई गांधीजी को भोजन तंबू में सम्मानपूर्वक चाय के लिए लाए थे, चाय क्या थी, बकरी का दूध था उसमें चिवड़ा (भुनी मूंगफली ?) था। यद्यपि गांधीजी ने उस समय अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त नहीं की थी, किंतु जिसने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरोध में तथा मानवसेवी कार्य कर सारे विश्व में ख्याति प्राप्त कर ली थी, मुझे उनसे मिलकर रोमांच हुआ था। मुझे उनकी स्पष्ट तथा निरभिमानी सरलता और उनके निर्मल हास्यबोध ने प्रभावित किया था। मुझे दिखावट से, कहीं भी, कैसी भी हो, सख्त चिढ़ है, तथा हास्यबोध के अनुग्रह पर पूरा विश्वास है, अतएव जो अपने महत्व से चमत्कृत नहीं हैं तथा जो अपने ऊपर हंस सकते हैं, जैसे कि गांधीजी हैं, मैं उनका हृदय से प्रशंसक हूं। मैं सचमुच बहुत भाग्यवान हूं कि संयोग से गांधीजी के साथ हमारे परिवार का साक्षात्कार हुआ, विशेषकर इसलिए कि बाद की उनसे भेंटें जनता के साथ दर्शन के रूप में निर्वैयक्तिक रहीं।

उस समय की बाम्बे प्रेसिडेंसी के अनेक जिलों में, समय-समय पर हामिद

भाई जिला मजिस्ट्रेट रहे। वह समय लगभग 1915 से, जब दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी आए थे, 1935 तक जब हामिद भाई सेवानिवृत्त हुए राजनैतिक उथल-पुथल का था। जब वे सेवानिवृत्त हुए तब उन्होंने चैन की सांस ली क्योंकि उस काल का राष्ट्रीय आंदोलन हामिद भाई के लिए पीड़ादायक था। इस सारे अंतराल में उनकी स्थिति बहुत दुस्साध्य तथा ईर्ष्या न करने लायक हो गई थी : अपने विश्वासों के आधार पर वे पक्के राष्ट्रवादी हैं, किंतु अपने जिले के वरिष्ठ नागरिक एवं प्रशासनिक अधिकारी होने के नाते, उनका कर्तव्य था कि वे विधि का शब्दशः पालन करें, तथा राजनैतिक उपद्रवियों (आंदोलनकर्ताओं) से निष्पक्ष रूप से विधिवत व्यवहार करें। उनका राष्ट्रवादी झुकाव तथा जनता एवं स्थानीय राजनैतिक नेताओं में उनकी लोकप्रियता उनके शासक अधिकारियों में उन्हें संदेहास्पद बना रही थी, तथा 'शक्ति-प्रशिक्षु' दिनों से ही उन पर निशान लग गया था। उनकी कंटकहीन दक्षता तथा व्यवहारकुशलता के रहते हुए भी वे कलेक्टर तथा जिला मजिस्ट्रेट के पद के ऊपर उन्नति नहीं कर सके, स्पष्टतया यह उनके राष्ट्रवादी दृष्टिकोण तथा झुकाब के पर्याप्त प्रच्छन्न न रहने के कारण, तथा सरकार की पक्षधर या विरोधी भारतीय जनता में उनकी लोकप्रियता के कारण था।

अब्बास की पुत्री, उनकी पत्नी शरीफा अधिक वाचाल, किंतु कभी-कभी अविवेकी, राष्ट्रवादी थीं जिसके फलस्वरूप हामिद भाई की स्थिति और कठिन हो जाती थी। वे दृढ़ इच्छाशक्ति वाली तथा समर्पित समाज सेविका थीं। कन्याओं की शिक्षा तथा ग्रामीण महिलाओं के सामाजिक उत्थान में उनकी विशेष रुचि थी। वे स्वदेशी आंदोलन की प्रबल समर्थक थीं। उस समय इस कार्य में सशक्त राजनैतिक फंसाव थे, किंतु उन्होंने उसे कभी भी नहीं छिपाया। जिसके ससुर घर के बाहर घूम-घूमकर उपद्रवी सविनय अवज्ञा तथा असहयोग के धार्मिक प्रवचन सुना रहे हों, तथा घर के भीतर स्पष्टभाषी पत्नी हो, उसके सरकारी-पथ में कांटे तो उगेंगे ही। उन्होंने अब्बास से अनुरोध किया कि वे उनके जिले में न आएं क्योंकि आने पर राजद्रोही भाषण देने के अपराध में वे उन्हें गिरफ्तार करने के लिए बाध्य होंगे। मामा अब्बास की प्रशंसा करनी चाहिए कि उन्होंने हामिद भाई के धर्म संकट को समझा तथा समझदारीपूर्वक दूर ही रहे।

गांवों में अनुनय अवज्ञा आंदोलनों के समय न्याय व्यवस्था बनाए रखने के लिए या पुनर्स्थापित करने के लिए जब वे पुलिस दलों को प्रस्थान पूर्व आदेश देते थे, हामिद भाई ने हमेशा उत्तेजित न होने की आवश्यकता पर बल दिया, तथा उकसाने वाली स्थिति में या हिंसा की आशंका होने पर भी न्यूनतम शक्ति का उपयोग करने का आदेश दिया। उनके एक जिले में पुलिस अधीक्षक साम्राज्य निर्माता युवा ब्रिटिश था, वहां पर आदिवासियों द्वारा वन में एक उत्तेजनापूर्ण सत्याग्रह की आशंका थी तथा खून-खराबे का भी डर था। स्वभावतया हामिद भाई चिंतित थे।

सत्याग्रह स्थल पर जाते समय पुलिस सह-अधीक्षक अपने दल के साथ, रास्ते में जिला मजिस्ट्रेट से अंतिम आदेश सुनने के लिए आए। मैंने हामिद भाई को उनसे प्रतिपादित करते हुए सुना कि यथासंभव न्यूनतम बल का उपयोग, और वह भी जब अपरिहार्य हो, करना चाहिए ! बल उपयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी, यद्यपि एक समय स्थिति खतरनाक हो गई थी। जिला मजिस्ट्रेट ने चैन की सांस ली।

हामिद भाई 1934 के लगभग सेवानिवृत्त होने पर, अपनी पत्नी शरीफा के साथ मसूरी में रहने लगे। उनका बंगला 'साउथवुड' बहुत ही मनमोहक था, जो उन्होंने बाद में अधिकारियों को 'अवकाश-गृह' के रूप में आनंद उठाने के लिए, केंद्रीय सरकार को भेंट कर दिया। उनके कुछ लंगोटिया यार बड़े मजे से उनके द्वारा खेली गई शरारतपूर्ण नौटंकी का, वह भी, जब वे 75 वर्ष से अधिक हो चुके थे, तथा शरीफा के साथ 50 वर्ष से अधिक वैवाहिक जीवन बिता चुके थे, वर्णन करते हैं। एक सुबह उन्हें हामिद भाई का संक्षिप्त आमंत्रण पत्र मिला, बिना किसी पूर्वाभास के, मानो बम के गोले की तरह, उसमें उद्घोषणा थी कि वे विवाह कर रहे हैं और उन्हें विवाह समारोह में सम्मिलित होने का आमंत्रण दे रहे हैं। हामिद अली युगल का उस हिल स्टेशन में बौद्धिक मित्रों तथा प्रशंसकों का विशाल समूह था। वे सामाजिक भलाई के कार्यों में भी लगे रहते थे। लोग उन्हें निष्ठावान तथा आदर्श युगल मानते थे। अतएव उनके मित्र विश्वास ही नहीं कर पा रहे थे कि वे एक नई पत्नी लाने वाले हैं, वह भी जीवन की संध्या बेला में। वे समझे कि बेचारा बूढ़ा सठिया गया है, किंतु जब उन्हें बाद में सचाई पता चली तब उन्होंने राहत की सांस ली। शरियत कानून के अनुसार एक मुस्लिम अपने जीवन काल में अपनी संपत्ति किसी को भी पूरी या कुछ मात्रा में भेंट कर सकता है। किंतु उसकी मृत्यु पश्चात, उसकी संपत्ति, उसके विधिवत-उत्तराधिकारियों में बांटी जाती है, तथा इस पर उसके वसीयतनामे का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मुस्लिम होते हुए तथा निस्संतान होते हुए अपने वसीयतनामे को प्रभावी बनाने का एक ही रास्ता था—'सिविल मैरिज एक्ट' के तहत विवाह। अतः यह विचित्र खेल इस तरह सुखांत हुआ।

नवंबर 1980 की दोपहर कोई तीन बजे मैं, बनियान तथा ढीले पायजामे में अपनी डैस्क पर बैठा काम कर रहा था। अतएव मैं किसी से मिलने के लिए तैयार नहीं था कि अचानक हमारे सावधान कुत्तों से बचकर, एक अजनबी सीधे मेरे अध्ययन कक्ष में घुस आया। वह 65 वर्षीय मोटा-तगड़ा-सा, पूरे पाश्चात्य परिधान में, 'टाई' सहित, सम्मानित व्यक्ति दिख रहा था। इस गलत समय में उसके अनाहूत प्रवेश से मैं स्वभावतः क्रोधित था, अतः मैंने उससे कठोर भाषा में पूछा कि वह कौन है, उसे क्या चाहिए तथा वह ऐसे असामान्य समय क्यों आया है। उसने क्षमा मांगते हुए समझाया कि वह गुजरात से व्यक्तिगत महत्वपूर्ण कार्य हेतु बंबई

आया है। बड़ी कठिनाई से उसने मेरे घर का पता लगाया है और बहुत देर से 46, पाली हिल खोज रहा था। उसे मुझसे कुछ नहीं चाहिए था, वरन उलटे, मुझे एक पुराना ऋण चुकाने के लिए ढूंढ़ रहा था। उसका नाम क्षीरसागर था, तथा गुजरात के एक विश्वविद्यालय से वह रजिस्ट्रार पद से हाल ही में सेवानिवृत्त हुआ था। उसके पिता सितारा में स्कूलमास्टर तथा समर्पित समाज सेवी थे। इन दोनों कारणों से ही वे उस समय सतारा के कलेक्टर हामिद अली, आई.सी.एस. के निकट संपर्क में आए थे तथा उनसे उनकी मित्रता हो गई थी और वे उनका बहुत सम्मान करते थे। कुछ समय पूर्व उनके पिता की मृत्यु हो गई तथा वे दसवें (या तेरहवें ?) दिन का संस्कार कर रहे थे। इसमें वे दिवंगत आत्मा के मोक्ष के लिए कौओं को पूजा किया हुआ भात खिलाते हैं। जब भात कौओं के लिए रखा गया तब कौए आए, और एक वृत्ताकार में बैठ गए किंतु दिया हुआ भात उन्होंने नहीं खाया। इसे देखकर एक चतुर वृद्ध ने सुझाया कि संभवतया मृत व्यक्ति की किसी अभिलाषा की पूर्ति उन्होंने नहीं की है अथवा उनका कोई ऋण है जिससे वे मुक्त नहीं हुए हैं। उस समय उन्हें ऐसी कोई अभिलाषा याद नहीं आई, किंतु अंततः उन्हें याद आया कि उनके पिता ने मेरे भाई हामिद से एक ऋण लिया था। क्षीरसागर के पिता ने, सेवानिवृत्ति के अनेक वर्षों बाद, हामिद भाई को 'बचाओ ! बचाओ !' (एस.ओ.एस.) पत्र भेजा था। क्षीरसागर के अध्ययन हेतु यू.एस.ए. प्रस्थान के लिए उनके पिता को अचानक धन की आवश्यकता पड़ गई थी। ऐसा स्मरण आते ही क्षीरसागर ने प्रतिज्ञा की कि वे उस ऋण को चुकाने का भरसक प्रयत्न करेंगे और ऐसी प्रतिज्ञा के मिनटों बाद ही, एक कौआ आगे बढ़ा तथा उसने भात पर चोंच मारी, और फिर अन्य कौओं ने भी उस भात को स्वीकारा ! इस घटना ने क्षीरसागर के मन में कौओं के मानव आत्माओं के उद्धार में हस्तक्षेप करने की क्षमता पर यदि कोई संशय बचा रहा हो उसे मिटा दिया; वरन इस 'अंधविश्वास' में उनकी आस्था को और सुदृढ़ कर दियां। बिना स्मरण दिलाए तथा बिना मांगे, पचास वर्ष पुराने ऋण को चुकाने के लिए, चाहे वह प्रत्यक्ष कारण के लिए न हो, वे (क्षीरसागर) सम्मान के पात्र हैं। काश कि ऐसे व्यक्ति और जन्म लें तथा अधिक संख्या में लें !

श्री क्षीरसगर उस महत्वपूर्ण प्रतिज्ञा को पूरा करने बंबई आए हुए थे। अपने भाई की वसीयत का मैं एक क्रियान्वयक था, किंतु उनके कागजों में उस ऋण का कोई उल्लेख नहीं मिला। अतएव मैंने उस चुकौती को लेने से अस्वीकार कर दिया। चूंकि क्षीरसागर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए कटिबद्ध थे, मैंने उन्हें एस.एफ.बी. तैयबजी एंड कं. के पास भेज दिया क्योंकि यह कंपनी दिवंगत श्री तथा श्रीमती हामिद अली की संपत्ति की कार्यवाही कर रही थी। उनके वकीलों को भी इस लेन-देन का कोई प्रमाण नहीं मिला अतः उन्होंने भी चुकौती अस्वीकार कर दी। क्षीरसागर ने व्याकुलता में एक गुड़ा-मुड़ा पोस्टकार्ड निकाला। यह पोस्टकार्ड

हामिद भाई के हाथ का लिखा हुआ था, जो उन्होंने मसूरी के 'साउथवुड' बंगले से 1934 (या 35) में लिखा था। इसमें उन्होंने क्षीरसागर के पिता के अनुरोध के अनुसार एक 'बैंक ड्राफ्ट' तुरंत ही भेजने की बात लिखी थी तथा आशा व्यक्त की थी कि वह धन उन्हें समय पर मिल जाएगा ताकि उनका पुत्र अपनी यात्रा पर जा सकेगा। हमने पता लगाया कि वह धन 1000 रु. का था, अर्थात उन दिनों के हिसाब से कोई छोटी-मोटी रकम नहीं थी। उस समय गेहूं और चावल एक रुपये के आठ-दस सेर मिला करते थे, बिलकुल नई फोर्ड कार 4,000 रु. की मिलती थी। किंतु हामिद भाई की आडंबरहीन उदारता तथा मानव प्रेम का यह एक छोटा-सा उदाहरण है। वे निस्संतान थे इसलिए उस तरफ से निश्चिंत थे अतः सारे कार्यकाल में वे नियमित रूप से अपने मासिक वेतन का अच्छा हिस्सा अभावग्रस्त तथा वृद्ध संबंधियों तथा आश्रितों को, या निर्धन बालक बालिकाओं की शिक्षार्थ तथा अन्य उचित कार्यों के लिए दिया करते थे, वह भी बिना लिखा-पढ़ी के। हमें उनके ऐसे कल्याणकारी दानों की जानकारी संयोग से कभी कभार उनके लेने वालों अथवा किन्हीं अन्य स्रोतों से मिलती रहती थी।

अंधविश्वास की बातें करें ! मैं पैदायशी रूप से भूत-प्रेतों, तंत्रविद्याओं, फलित ज्योतिष तथा इंद्रियातीत जादू तथा इसी तरह के अन्य अंधविश्वासों में विश्वास नहीं करता। किंतु, मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि एक बार मेरा यह विश्वास डिग गया था, चाहे अल्पावधि के लिए ही सही। मेरे भाई आमिर के साथ 1919 में बर्मा में, हमारे टेवॉय व्यवसाय में साथ लगने के दो माह के भीतर जो घटित हुआ, उसने मुझे डिगाया था। नगर से कुछ कि.मी. दूर एक बौद्ध मठ था जिसके अहाते के सुंदर वन में एक काफी बड़ा पक्का तालाब था। उस तालाब में कार्प मछलियों की प्रचुरता थी तथा उनमें से बहुत-सी सैकड़ों वर्ष की आयु की मानी जाती थीं तथा वे सब पावन तथा धर्मरक्षित थीं। उन्हें तीर्थयात्री तथा पर्यटक दोनों ही खूब खिलाते थे अतः वे अच्छी मोटी हो गई थीं और इसलिए 'ललचाती' थीं। किंतु वे शिकार-चोरों तथा ध्वंसकों से भी सुरक्षित थीं क्योंकि सभी का पारंपरिक दृढ़ विश्वास था कि जो भी उन्हें चुराएगा या नुकसान पहुंचाएगा, अंततः दुख पाएगा। आमिर मेरे ही समान अंधविश्वासों एवं तंत्र-मंत्र में बिलकुल विश्वास नहीं करता था। शुद्ध शैतानी वश तथा मानो 'भाग्य' को चुनौती देते हुए, जब वहां आसपास कोई नहीं था, उसने हल्केपन से एक पत्थर उठाया तथा उद्देश्य सहित उन प्रचुर मछलियों को निशाना बनाया। उस सुबह हम लोग उस सुंदर स्थल पर पिकनिक के लिए गए थे। हार्ले डेविडसन की पार्श्व कार में तैहमीना बैठी थीं तथा पीछे आमिर। सुबह आमिर पूर्णतया स्वस्थ एवं प्रफुल्ल चित्त थे, किंतु लंच के पश्चात जब हम लौटे तब उन्होंने जोड़ों में कुछ जकड़ने की शिकायत की। उन नितांत कच्ची, नाली-सी बनी सड़कों पर मोटरसाइकिल में पीछे बैठने वाले के लिए ऐसी

शिकायत होना कोई अनहोनी नहीं थी। अतएव हम लोगों ने उस पर ध्यान नहीं दिया। परंतु शाम तक आमिर को ज्वर-सा महसूस हुआ तथा जोड़ों में दर्द, जो बढ़ता ही गया, ज्वर भी दो दिन तक बढ़ता गया। तब उसका निदान ज्ञात हुआ कि वह गठिए का तेज बुखार था। उस छोटे-से कस्बे में जो भी चिकित्सा मिल सकती थी उसके बावजूद, बेचारे आमिर का नौवें दिन देहांत हो गया (22 अप्रैल, 1919)। आप इसे संयोग कह सकते हैं, किंतु इसने मेरी 'तर्कबुद्धि' को बलशाली धक्का दिया था।

19
पांच अन्य पुरुष

सिडनी डिल्लन रिप्ली

सन् 1944 में बी.एन.एच.एस. का पक्षिसंग्रह अस्थायी तौर पर प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम में रखा गया था। एक दिन जब मैं उस पर कार्य कर रहा था, एक युवा अमेरिकन मिलने आया। उन युद्ध के दिनों में बंबई से बहुत से यू.एस. सैनिक आया-जाया करते थे, यह भी उनमें से एक था। उसने बतलाया कि उसका नाम सिडनी डिल्लन रिप्ली है तथा वह येल विश्वविद्यालय का, जिसके पक्षिवैज्ञानिकीय प्रकाशनों से मैं प्रभावित था, जैववैज्ञानिकीय का स्नातकोत्तर विद्यार्थी था। मुझे उससे मिलकर खुशी हुई तथा हम दोनों की मित्रता शीघ्र प्रगाढ़ हो गई। वह दक्षिण-पूर्व एशियाई अमरीकी सेना में 'आसूचना अधिकारी'[1] पद पर श्रीलंका में नियुक्त किया गया था। उस कार्यवश उसे नई दिल्ली स्थिति 'संयुक्त कमान मुख्यालय' बहुधा आना पड़ता था। यह मेरी उस व्यक्ति से पहली भेंट थी, जो मेरा आजीवन मित्र बनने वाला था, मूल्यवान साथी, पक्षिवैज्ञानिक तथा खोजी बंधु तथा बहुत-से वैज्ञानिक आलेखों एवं पुस्तकों का सहलेखक भी। इसी भेंट में, तथा श्रीलंका और दिल्ली के बीच उसकी यात्रा में हो सकने वाले उपलब्ध अवसरों पर हम लोगों ने युद्ध पश्चात भारत में संयुक्त पक्षिवैज्ञानिकीय क्षेत्रकार्य तथा नमूना-संग्रहण करने तथा अनेक अभियानों के हवाई किले बनाने का काम किया था। युद्ध पश्चात जब स्थिति सामान्य हो जाएगी, देश के भीतर विशेषकर उत्तरपूर्व सीमांत प्रदेशों में, गमनागमन खुल जाएगा। नितांत उत्तर-पूर्व असम की मिश्मी पहाड़ियां हम लोगों की सूची में प्रथम थीं, क्योंकि वहां का पक्षिवैज्ञानिकीय अध्ययन सुचारु या सुव्यवस्थित रूप से तब तक नहीं किया गया था। वास्तव में, इस प्रकार के कार्य हेतु स्थिति को युद्ध पश्चात सामान्य बनने में बहुत देर लगी; 1946 के अंत तक ही इस कार्य का प्रारंभ किया जा सकता था। युद्धकाल में पेट्रोल तथा

1. 'आसूचना अधिकारी' (intelligence officer)

वाहनों का आयात कठोरता से बंद करने के कारण तथा युद्धोपरांत के दुष्कर परिणामों के कारण भी सड़क परिवहन, विशेषकर दूर दराज स्थानों के लिए, बहुत दुर्लभ था। मिशी पहाड़ियों के लिए यह समस्या कम कठिन थी। क्योंकि वहां के लिए वैसे भी अधिकांश परिवहन के साधन टट्टू तथा कुली थे। यद्यपि मिश्मी अभियान संयुक्त था, उसके आर्थिक स्रोत विभिन्न थे। मेरे लिए, जैसा कि मेरे पिछले अनेक अभियानों में हुआ था, सारा खर्च लोके वान थो ने उठाया था, और बी.एन.एच.एस. ने क्षेत्र संग्राहक चर्मसंस्कारक की सेवाएं तथा बाद में आवश्यक म्यूजियम की सुविधाएं प्रदान की थीं।

इस अभियान में, पहली बार इतालवी तथा जापानी कुहासा-जालों का उपयोग किया था। इस जाल से वे पक्षी पकड़ में आ जाते थे जो घनी झाड़ियों में तथा निचले पौधों में छिपे रहते हैं, अतएव इन जालों, विशेषकर सरल जापानी जालों, की उपयोगिता मिश्मी जैसी पहाड़ियों तथा पूर्वी हिमालय में सिद्ध हुई। हम लोगों के मिश्मी के इस प्रथम संयुक्त अभियान में यह विचार किया गया कि लगभग 20 वर्ष पहले प्रकाशित स्टुअर्ट बेकर की 'ब्रिटिश भारत के जीवजंतु' शृंखला में से पक्षियों के खंडों को अद्यतन किया जाए क्योंकि हम दोनों तथा अन्य पक्षिवैज्ञानिकों ने उसे कई प्रकार से असंतोषजनक पाया था। हम लोगों को यह भी लगा कि नया संस्करण न केवल व्यावसायिक संग्रहालय के पक्षिवैज्ञानिकों के लिए वरन शौकीन पंछिनिहारकों के लिए भी पूर्णरूपेण अद्यतन हो। अतएव उसमें बहुल उपयोगी चित्र हों तथा पक्षियों का जीवन लोकप्रिय शैली में लिखा हो, लगभग वैसा जैसा विदरबी की 'ब्रिटिश पक्षी निर्देशन पुस्तिका'[1] में है। हम लोग लेखन को दो भागों, वर्गीकरण तथा परिस्थितिकी में बांट देंगे, जिसमें प्रथम की जिम्मेदारी मुख्यतया रिप्ली की रहेगी तथा दूसरे की मुख्यतया मेरी। सामान्य भाग के लिए स्रोत सामग्री मेरे पिछले पचास वर्षों के क्षेत्र अभिलेखों से, ह्विसलर की उत्तर-पश्चिम सेवा के दौरान बनाए गए सूक्ष्म पक्षी-नोट्स से तथा रिप्ली के अनेक भारतीय संग्रहण अभियानों से आएगी। साथ ही पिछले 150 वर्षों के भारतीय पक्षियों पर प्रकाशित मुख्य ग्रंथों व लेखों के उद्धरणों के समुचित चयन उस स्रोत सामग्री को और समृद्ध करेंगे। प्रस्तावित 'हैंडबुक ऑव द बर्ड्स ऑव इंडिया एंड पाकिस्तान' पुस्तक के वर्गीकरण का आधार रिप्ली द्वारा बनाई गई प्रामाणिक, विस्तृत तथा अद्यतन निरीक्षण सूची होगी तथा जिसका प्रकाशन बी.एन.एच.एस. करेगा। हमारी 'निर्देशन पुस्तिका' उस पूरी जानकारी का प्रामाणिक स्रोत होगी जो अभी तक कुछ जातियों के विषय में अभिलिखित है, तथा वह भी जिनकी पर्याप्त जानकारी नहीं है और जिनके लिए अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।

1. विदरबी की 'ब्रिटिश पक्षी निर्देशन पुस्तिका'–(Witherby's Handbook of British birds)

उपलब्ध पक्षिसाहित्य की गवेषणा तथा उनमें से उपयोगी उद्धरण निकालने के कार्य में चार वर्ष लगे थे। इस कार्य हेतु आर्थिक सहायता भारत सरकार, यू.एस. एजुकेशनल फाउंडेशन, तथा इंडियन नेशनल साइंस अकादमी ने दी। इस हेतु मैंने छह महीने यू.एस. में, मुख्यतया येल विश्वविद्यालय में कार्य किया था। यहां उस समय रिप्ली प्राणिविज्ञान के एसोशिएट (सहकारी) प्रोफेसर थे। इस अवसर पर वर्गीकरण संभाग जो रिप्ली को लिखना था, तथा जीवन-इतिहास संग्राम जो मुझे बंबई में लिखना था, को सर्वोत्तम बनाने के लिए अनेक विधियां हम दोनों ने सोची, विचारीं, जांची तथा परखीं। डिल्लन रिप्ली की सहायता से मुझे येल विश्वविद्यालय की 'सीस्सैल जुओलॉजिकल फैलोशिप' मिली जिससे मेरा अमेरिका में रहने का खर्च निकला। मेरी पूरी यात्रा का व्यय स्मिथ मंट ट्रैवल ग्रांट में निकला। पुस्तिका, (ग्रंथिका) लेखन का कार्य वास्तव में 1964 में ही प्रारंभ हो पाया, और उस समय तक डिल्लन रिप्ली 'स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशन' के सचिव होकर वाशिंगटन डी.सी. चले गए थे। ग्रंथिका का पहला खंड 1968 में प्रकाशित हुआ, तत्पश्चात शेष नौ खंड एक के बाद एक अल्प अंतराल से प्रकाशित हुए। इसकी शृंखला का प्रकाशन 1974 में समाप्त हुआ, तथा 16 नवंबर, 1974 को अंतिम खंड प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा लोकार्पित किया गया, मेरी 78वीं वर्षगांठ के चार दिन बाद।

अपने प्रारंभिक संपर्क से ही डिल्लन रिप्ली बी.एन.एच.एस. के उत्सुक सहायक रहे तथा 'स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूशन' के सचिव बनने के बाद तो और भी अधिक उत्सुक अपने सह संबंध से सोसायटी तथा इंस्टिट्यूशन दोनों को नानाविध महत्वपूर्ण लाभ हुए। पूर्वी हिमालय क्षेत्र तथा, हमारे उत्तर-पूर्वी सीमा क्षेत्र के राजनैतिक रूप से नाजुक किंतु पक्षिवैज्ञानिकीय रूप से अज्ञात क्षेत्रों में जो बहुत-से विस्तृत पक्षि-अभियान हुए, तथा जिन्होंने बहुल आनुसंधानिक बहुमूल्य सामग्री तथा वैज्ञानिक ज्ञान में महत्वपूर्ण वृद्धि की, वे बिना बी.एन.एच.एस. के सहकार के नहीं किए जा सकते थे। डिल्लन रिप्ली की उत्साहित व्यक्तिगत भागेदारी भी इस सफलता का कारण थी। और डिल्लन की बंधुत्वपूर्ण, बहुविध पत्नी, 'मैरी' जिनके नाजुक बदन में छिपी ऊर्जा तथा शक्ति ने शिविर जीवन को जीवंत बनाया था, भी इस सफलता के लिए प्रशंसनीय हैं। मैं पहले नवविवाहित मैरी से, जो सुरुचिपूर्ण परिधान में सुसज्जित थीं, 1950 के उप्साला में हो रही 'अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिकीय कांग्रेस' के सभ्य सामाजिक वातावरण में मिला था, वे उस समय आज से (1984) अधिक नाजुक दिख रही थीं। उसके तत्काल बाद ही वे नागा पहाड़ियों (क्या वह न्यूगिनी था ?) के बीहड़ों में पक्षि-अभियान के लिए प्रयाण करने वाले थे। और उस समय मुझे यह लगा कि वे उस कठोर अभियान के लिए नितांत अनुपयुक्त थीं। किंतु रिप्ली-युगल के साथ अनेक कठोर तथा परिश्रमी अभियानों में भागीदारी करने के बाद मेरी समझ में आया कि मैं कितना गलत था : वाशिंगटन की सुरुचि संपन्न बैठक वाली मैरी रिप्ली सफारी सूट पहने, जोंकों से उतराते जंगल के टपकते शिविर

वाली मैरी से नितांत भिन्न है। इनके ये दो रूप परस्पर नितांत विरोधी हैं।

मेरे 75वें जन्मदिन के उपलक्ष्य में, बी.एन.एच.एस. ने निर्णय लिया कि वे 12 नवंबर, 1971 को जर्नल का अभिनंदन अंक प्रकाशित करेंगे। तथा डिल्लन रिप्ली ने उसका संपादन सहर्ष स्वीकार किया जिसके लिए वे हमारे दोनों के अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिक मित्रों से उपयुक्त लेख आमंत्रित करेंगे (बाद में, 1978 में जिसे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने 'ए बंडल ऑव फैदर्स' नाम से एक पुस्तकाकार में प्रकाशित किया)। अभिनंदन अंक के अति उदार प्राक्कथन में रिप्ली ने स्वतः रचित काव्यात्मक प्रशंसात्मक तथा हास्यरस सिक्त रचना दी थी, जिसे अमरता प्राप्त करने से रोका नहीं जा सकता।

सालिम के 77वें जन्मदिन पर संबोध-गीत

12 नवंबर, 1973, भूटान के एक कैंप में

वाखन औ झील पैरियर
रणकच्छ बिंदुकैलिमियर
वर्षा में या धूप में
बंगलों में या डांडी में
जहां भी हों पंछी
सुनोगे शब्द श्रद्धावान :
आह ! सालिम हमारे हीरो हैं हृदयवान
निर्मल सलिल त्रिवेणी है जिनका ज्ञान
चिकुर का है भय उनका, वह फिन-बया का बांधव
सचमुच में है सालिम बहुउल्लेखनीय
मानव हो ! हो ! टंकचुंचु और फुटकी
हे ! हे ! ट्रैगोपैन औ अपुच्छी
हो ! हो ! ट्वीट ट्वीट व्सीप
हे ! हे ! तेंदुए की चीप*
कुक्कुभ और जल पंछियों का हंक
निकुंज झाड़ी औशैवाल पंक
ब्यूइट-उलूक की हू हू
ह्यूम के 'स्ट्रे फैदर' में ढूं ढूं
आहा सालिम हमारे हीरो हैं हृदयवान
निर्मल सलिल त्रिवेणी है जिनका ज्ञान
चिकुर का है भय उनका वह फिन बया का बांधव

*वाखन, पेरिचर झील, रणकच्छ, बिंदु कैलिमियर—यह कुछ वे अभयारण्य हैं जहां सालिम ने काम किया है।

सचमुच में हैं सालिम उल्लेखनीय मानव
है हमारा गान दीप्त रहे उनका ज्ञान
युगों युगों तक उनका दीप प्रज्वलित
सारस करें क्रौंच, ये जन्म दिन हमारा गान
सारे पंछी मिलकर गुंजाएं वृंदगान
जितना जानते हैं जीवन हॉजसन और बेकर
कोल्टार्ट इंग्लिस ने भोगा है जो पीड़न
पंछियों के प्रजनन खान गान नीड़न
नहीं बराबर सालिम आज करें हम
जिनका स्वागत
आहा सालिम हमारे हीरो हैं हृदयवान
निर्मल सलिल त्रिवेणी है जिनका ज्ञान
चिकुर का है भय उनको, वह फिन बया का बांधव
सचमुच में हैं सालिम उल्लेखनीय मानव

वास्तव में मुद्रण व्यवसाय की उच्छृंखलता के परिणामस्वरूप, जर्नल का अभिनंदन अंक [(वॉल्यूम 71 (3)] जिसे दिसंबर 1974 में निकलना था, मार्च 1976 में ही प्रकाशित हो सका था। और वह स्तुति वास्तव में मुझे मेरी 77वीं वर्षगांठ पर भेंट की गई थी जिस हेतु डिल्लन रिप्ली ने फुंटशोलिंग के शिविर में, चुपचाप तैयार कराए गए रात्रि भोज में, भूटान के संयुक्त पंछिअभियान के सफल समापन पर छोटा-सा उत्सव मनाया था।

जॉन बरडोन सेंडरसन हाल्डेन

प्रोफेसर जॉन बरडोन सेंडरसन हाल्डेन अपने समय के सर्वोच्च वैज्ञानिकों तथा चिंतकों में से एक थे। उन्होंने भारत में आकर कार्य किया, चाहे अल्पावधि के लिए ही किया। यह मेरा सौभाग्य था कि उस अल्पकाल में मैं उनके संसर्ग में आया। यह भी एक भाग्यशाली संयोग था कि भारतीय पक्षियों की पारिस्थितिकी पर मेरा प्रारंभिक कार्य, उनके भारत में प्रवासन के पूर्व, उनकी दृष्टि में आया था, तथा वह उनके मन भाया और उन्होंने उसका अनुमोदन करते हुए विशेष प्रशंसा की थी। वैज्ञानिक सम्मेलनों तथा गोष्ठियों में, अपने अनेक लोकप्रिय व्याख्यानों तथा वार्ताओं में उन्होंने, निर्धारित कार्यक्रम से हटकर, बहुत अनुग्रहपूर्वक मेरे कार्य का सराहते हुए उल्लेख किया। उन्होंने मेरे कार्य को एक अनुकरणीय उदाहरण की तरह प्रस्तुत करते हुए कहा कि बिना किसी परिष्कृत वैज्ञानिक उपकरण के, मात्र एक दूरबीन की सहायता से, अपनी निष्ठा एवं उद्यम से कितनी उपलब्धियां प्राप्त की जा सकती हैं। वे

विदेशों से, विशेषतया यू.एस. से, लौटे भारतीय वैज्ञानिकों की इस प्रिय अवधारणा कि बिना परिष्कृत उपकरणों के भारत में वैज्ञानिक एवं अनुसंधान प्रयोगशालाएं घटिया परिणाम ही प्रस्तुत कर सकती हैं—की हमेशा कटु आलोचना करते थे। हाल्डेन ने प्रत्येक अवसर पर इसी कमी पर बल दिया कि भारत में उपलब्ध जैववैज्ञानिकीय क्षेत्र में अतुलनीय अवसरों का लाभ भारतीय वैज्ञानिक नहीं उठाते हैं—ये अवसर जो पाश्चात्य जैववैज्ञानिक की ईर्ष्या के विषय हैं।

जे.बी.एस. की स्मरणशक्ति अद्वितीय थी, तथा उनके सोचने समझने, मन एकाग्र करने की शक्ति और उनके ज्ञान का विस्तार तथा गहराई 'विश्व ज्ञानकोश' के समान थी, और उनके विषय क्या थे—शास्त्रीय वैज्ञानिक अनुशासन वाले भौतिकी, रासायनिकी, जैविकी, जैवमापिकी, जीवाण्विकी आदि, तथा नृवैज्ञानिकी, नृकुलवैज्ञानिकी, दर्शन (विशेषकर हिंदू दर्शन) तथा खगोल शास्त्र आदि ! वे न केवल आकाश को एक खुले ग्रंथ के समान पढ़ सकते थे, वरन विशेष नक्षत्रों के नाम संस्कृत में बतला सकते थे। और मुझे सर्वाधिक आश्चर्य होता था कि अपने नाना बौद्धिक कार्यकलापों, वैज्ञानिक अनुसंधान एवं लेखन के बीच वे किस तरह नवीनतम खोजों, सिद्धांतों तथा विज्ञान एवं मानविकी की सभी शाखाओं के अनुसंधान एवं विकासीय जानकारियों के साथ सूक्ष्मता से अवगत रहते थे, और विभिन्न पक्षों का संश्लेषण कर उन पर चर्चा तथा पूरे बारीक विवरण के साथ उन्हें समझा सकते थे। जे.बी.एस. हाल्डेन की रोनैल्ड क्लार्क द्वारा लिखित (1968) जीवनी 'जे.बी.एस.' के प्राक्कथन में, उनके प्रसिद्ध सहयोगी, लंदन विश्वविद्यालय के प्राणिविज्ञान संभाग के अध्यक्ष, प्रोफेसर सर पीटर मेडावर, ने लिखा : 'गणितज्ञ, शास्त्रीय मनीषी, पत्रकार दार्शनिक, वैज्ञानिक, पत्रकार या साहित्यिक—इनमें से किसी भी विषय में वे निष्णात हो सकते थे। वास्तव में विभिन्न मात्राओं में वे यह सब थे। उनके जीवन को देखते हुए, वे न तो राजनीतिज्ञ हो सकते थे न प्रशासक (नहीं भाई, कभी नहीं !), विधिवेत्ता और न किसी भी प्रकार के आलोचक। अंत में वे अपने समय के तीन या चार सर्वाधिक प्रभावशाली जैववैज्ञानिक हुए।'

उनकी घनी भौंहें, बड़ा सिर तथा कठोर आकृति अपरिचित लोगों को निषेधात्मक प्रतीति दे सकते थे। वे मूर्खों तथा कपटियों को निश्चित बर्दाश्त नहीं कर सकते थे और अक्सर उन्हें ऐसा बतला देते थे। किंतु निष्ठावान शिक्षण के प्रत्याशी युवकों के साथ वे अत्यंत सुहृद, धैर्यवान तथा उद्धार होते थे, तथा उन्हें आगे बढ़ाने के लिए वे कितनी भी तकलीफ उठा सकते थे। भारतीय सांख्यिकीय संस्थान, कलकत्ता में जब वे प्रोफेसर थे, उन्होंने इस पद्धति से अनेक कुशाग्र तथा होनहार विद्यार्थियों को मौलिक वैज्ञानिकों के रूप में तैयार किया। उन्होंने उन्हें सुविचारित प्रयोगों, जिन्हें वे 'मूर्ख प्रयोग' कहा करते थे, को करने के लिए प्रोत्साहित किया, और

असफलता से निडर रहना सिखाया, क्योंकि ऐसे कुछ प्रयोग कभी-कभी अनापेक्षित किंतु मूल्यवान दिशा-निर्देश एवं परिणाम भी दे सकने की क्षमता रखते हैं।

जब 1961 में रानी एलिजाबेथ द्वितीय के भारत भ्रमण की बात शुरू हुई थी तब हाल्डेन से राजकीय स्तर पर पूछा गया कि उनकी समझ से रानी को किन-किन स्थानों का भ्रमण करना चाहिए। उनका उत्तर था कि 'यदि रानी, हमारे महानतम प्रकृति वैज्ञानिक सालिम अली से सलाह लेकर निर्णय लें, तब वे संभवतया चिल्का झील (उड़ीसा), काजीरंगा (असम) तथा सांभर झील (राजस्थान), बिना किसी प्राणी की हत्या किए, घूमना पसंद करेंगी। रानी प्राणियों को गंभीरतापूर्वक लेने वाले लगभग दस करोड़ भारतीयों में तत्काल लोकप्रिय हो जाएंगी, वैसे ही जैसे जहांगीर हुए थे।

मई 1961 में, इटली में हुई 'इंटरनेशनल कांग्रेस ऑन ह्यूमैन जेनेटिक्स' में भाग लेने के बाद जब उन्होंने लौटकर जो सद्यः स्फूर्त पत्र मुझे लिखा उसने मेरा हृदय छू लिया। उस पत्र में लिखा था, 'इतालियन अकादेमिया देइ लिंसेइ' द्वारा प्रदत्त भीमकाय पुरस्कार रु. 1,60,000 मुझे मिला है। संभवतः आप इस पुरस्कार के लिए मेरी अपेक्षा अधिक योग्य हैं। आपके लिए जीववैज्ञानिक बनना कठिन था तथा मेरे लिए, मेरे सामने मेरे पिता का उदाहरण रहते हुए, (जीववैज्ञानिक) न बनना कठिन था...यदि आपको किसी जीववैज्ञानिकीय कार्य हेतु कुछ हजार रुपयों की आवश्यकता हो, तब मैं वे दे सकूंगा।'

डारविन तथा वैलैस के जन्मशती समारोह मनाने के लिए, 1950 में सिंगापुर स्थित मलाया विश्वविद्यालय ने कांग्रेस का आयोजन किया था, इस समारोह में लिन्नीउस रचित 'सिस्तेमा नातुरी' के दराम संस्करण के प्रकाशन का द्विशताब्दी-उत्सव भी मनाया गया था। इसमें हाल्डेन को अध्यक्ष चुना गया था, और उन्होंने मुझे एक आलेख 'कुछ भारतीय बुनकर पक्षियों की प्रजनन जैविकी' (The Breeding Biology of some Indian Weaver Birds) प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी थी। अपने अध्यक्षीय भाषण 'आज के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत' ('On the Theory of Natural Selection Today') की दैदीप्यमान प्रतिभा द्वारा, उनके नितांत सादे भारतीय वेश—बिना प्रेस का कुरता, ढीला पैजामा तथा बिना मोजे के पठानी चप्पल—ने उनका लुक-छिपकर उपहास करने वाले-बने ठने पक्के विलायती श्रोताओं को भौंचक्का कर दिया था। किंतु उनकी आनंदित तथा स्तंभित करने वाली बौद्धिक जादूगरी उस समय दिखलाई दी जब वे 'जैवमापकी' सत्र की अध्यक्षता कर रहे थे। उसके एक वक्ता का परिचय देने के बाद वे मंच से उतरकर श्रोताओं के समान नीचे बैंच पर आकर बैठ गए। उस व्याख्यान में बहुत अधिक सांख्यिकीय तथा गणितीय आंकड़े थे। उन्हें सुनते हुए उन्होंने अपना बड़ा-सा मस्तक डैस्क पर रखे अपने

हाथों में रखा तथा अपनी आंखें बंद कर ली थीं। आलेख प्रस्तुतकर्ता ने दस मिनट तक लगातार आंकड़ों पर आंकड़े उंड़ेले। वह आलेख पाठन सचमुच में नींद लाने वाला लग रहा था। श्रोता हाल्डेन की ओर इंगित करते हुए, संभवतया सभी चुपचाप हंस रहे थे। अचानक सिंह उठा, व्याख्याता को यह बतलाने के लिए कि संभवतया उसने कहीं गलती की है। यदि उसका फलाना आंकड़ा यह था तथा ढिमका आंकड़ा वह था, तब परिणाम वह नहीं हो सकता जो उसने निकाला है। व्याख्याता तो घबरा गया, जल्दी-जल्दी उसने अपने आंकड़े जांचे तथा क्षमा याचना करते हुए स्वीकार किया कि हाल्डेन ठीक कह रहे हैं। जब कि श्रोतागण एक निद्राप्राप्त अध्यक्ष के तमाशे का आनंद ले रहे थे, हाल्डेन उन आंकड़ों की मन में ही विवेचना कर रहे थे। उनकी एकाग्रता, विवेचना के ऐसे अद्‍भुत प्रदर्शन से उनका उपहास करने वाले धराशायी हो गए।

जे.बी.एस. को वैज्ञानिक मसलों पर टालमटोल करना पाप सदृश अस्वीकार्य था। दो प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों को एक पक्षिवैज्ञानिकीय प्रायोजना के तहत 'क्षेत्र' में कार्य हेतु छोटा-सा अनुदान प्राप्त करने के लिए मैंने सी.एस.आई.आर. (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद) को आवेदन पत्र भेजा था। उसके प्रत्युत्तर में सी.एस.आई.आर. अनुचित रूप से अधिक विलंब लगा रहा था। जे.बी.एस. को जब यह पता लगा तब उन्होंने अपनी लाक्षणिक उदारतापूर्वक मुझे लिखा, "बैरैकपुर, 2 मई, 1962 यदि आप एक युवा वैज्ञानिक की सहायता हेतु 3000 रु. चाहते हैं, तब मेरे पास आवेदन क्यों नहीं भेजते ? यदि मैं 'ना' भी कहूंगा, तब भी मैं सी.एस.आई.आर. की अपेक्षा शीघ्रतर ही कहूंगा !"

रिचर्ड वाटकिंस बर्टन

लेफ्टिनेंट कर्नल आर. डब्ल्यू. बर्टन नौ भाइयों में छठवें थे, तथा, संभवतया आश्चर्य हो, सब के सब मिलिटरी सेवा में थे। इनमें से, अपने पिता जनरल ई. एफ बर्टन के पदचिह्नों पर चलने वाले, चार भारतीय थल सेना में थे। जनरल बर्टन अनुभवी बाघ शिकारी भी थे। रिचर्ड बर्टन अपने कनिष्ठतम सेना के दिनों से (1891) ही बी.एन.एच.एस. के सदस्य थे तथा साहसी शिकारी थे, जो अनुभव के साथ निर्भय 'बड़े शिकारी' बने। घायल या आदमखोर बाघों तथा तेंदुओं के साथ उन्होंने अनेक रोमांचित मुठभेड़ों का आनंद उठाया तथा एक घायल भालू द्वारा गंभीर क्षत-विक्षत होते हुए जीवित बचे। जैसा कि अनेक दीर्घानुभवी शिकारियों के साथ हुआ, रिचर्ड ने भी बाद के जीवन में शिकार से संरक्षण की ओर अंतरण किया तथा वही शिकार वाला उत्कट उत्साह बनाए रखा। 1947 में प्राप्त स्वतंत्रता पश्चात आग्नेय अस्त्रों

पर नियंत्रण ढीला होने के कारण तथा न्याय एवं व्यवस्था में भी ढीलापन आने के कारण, तथा संरक्षणनिष्ठ ब्रिटिश वन-अधिकारियों तथा प्रशासकीय अधिकारियों के देश छोड़ने के बाद, भारतीय वन्यजीवन के दुर्दिन आ गए। भारतीय वन सेवा के क्षीणीकृत संगठन की एक वैधानिक जिम्मेदारी थी वन्य जीवन की सुरक्षा। किंतु उस सेवा में इस विषय में रुचि रखने वाले या ज्ञान रखने वाले अधिकारियों की संख्या अपर्याप्त थी। राजस्व अर्जन करने वाली वानिकी के परिप्रेक्ष्य में, जिसे वन-अधिकारी प्रथम कर्तव्य मानते थे, वन्य जीवन संरक्षण को न्यूनतम महत्व मिला। यहां तक कि इस तरह के कार्य को कुछ अधिकारी अनावश्यक हस्तक्षेप मानते थे। वनों के भीतर तथा बाहर वन्य जीवन चिंताजनक तीव्रता से समाप्त हो रहा था, और अनेक जातियां विलोपन के कगार पर आ गई थीं।

ऐसे समय में कर्नल बर्टन थलसेना से सेवानिवृत्त हुए और उन्होंने बंगलौर को अपना निवास स्थान बनाया तथा वे सोसायटी की सलाहकार समिति के सदस्य बने। उसी समय बी.एन.एच.एस. का अवैतनिक सचिव पद चाहे-अनचाहे मेरे कंधों पर आया था। सोसायटी सरकार तथा जनता की दृष्टि में वन्य जीवन के संरक्षण कार्य को संकेंद्रित रखने का भरसक प्रयास कर रही थी। उस सत्प्रयास में कर्नल बर्टन ने अपने दीर्घ अनुभव की सारी शक्ति लगा दी। स्थानीय समाचारपत्रों में संबद्ध ज्ञान से परिपूर्ण लेखों का सतत प्रकाशन, शैक्षणिक पर्चों के प्रसार तथा संबद्ध मंत्रालयों एवं तत्संबंधी कार्यालयों से सीधे अनुरोध द्वारा जागृति बनाए रखना हमारी प्रमुख रणनीति थी। सारे देश में वन्यजीवों का जो निर्मम संहार हो रहा था, उसके प्रति जनता और सरकार की उदासीनता हटाना तथा उसके स्थान पर सरोकार पैदा करना हमारा उद्देश्य था। बी.एन.एच.एस. एम.डी. चतुर्वेदी (स्वतंत्र भारत के प्रथम इंस्पेक्टर जनरल और फॉरेस्ट्स), तथा एस.एल. होरा (प्राणिवैज्ञानिकीय सर्वेक्षण के निदेशक) तथा कुछ प्रकृति वैज्ञानिक एवं शिकारी, और कुछ महत्वपूर्ण शक्तिशाली समर्थक ब्रिटिश शिकारी जो भारत में रुक गए थे (जैसे कर्नल बर्टन, आर.सी. मौरिस तथा ई.पी.जी) और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के सशक्त समर्थन के फलस्वरूप वन्य जीवन संरक्षण की ओर अत्यंत महत्वपूर्ण तथा आधारभूत पहला कदम उठाया गया और 'भारतीय वन्य जीवन बोर्ड' की स्थापना हुई।

सोसायटी के क्यूरेटर श्री प्रेटर द्वारा 1933 में सोसायटी के स्वर्ण जयंती समारोह हुए, अप्रतिम उद्‍बोधन 'भारत के वन्य जंतु तथा उनके संरक्षण की समस्याएं' द्वारा वन्य जीवन संरक्षण आंदोलन को आशातीत बल मिला। जनता में वन्य जीवन के प्रति रुचि जागृत हुई तथा उसके संरक्षण हेतु उत्तरदायित्व की भावना तथा सरोकार का भी उदय हुआ। इससे प्रेरित होकर 1935 में भारत सरकार ने दिल्ली में उच्चस्तरीय अंतरप्रांतीय सम्मेलन का आयोजन किया, इसमें वन क्षेत्रों के बाहर तथा भीतर वन्य

जंतुओं के संरक्षण हेतु अनेक व्यावहारिक अनुशंसाएं उद्भूत हुईं। कुछ मुख्य अनुशंसाओं को मूर्तरूप होने में अधिक समय लगा, तथा स्वतंत्रता पश्चात कहीं 1953 में 'भारतीय वन्य जीवन बोर्ड' की स्थापना हो सकी। केंद्रीय सरकार को वन्य जीवन की धरोहर की सुरक्षा तथा संरक्षण हेतु अनुशंसाएं प्रस्तुत करना इस बोर्ड का उत्तरदायित्व है। कर्नल बर्टन ने सुविचारित सुअभिकल्पित पुस्तिका 'भारत में वन्य जीवन संरक्षण भारत की लुप्त होती संपदा' ('Wildlife preservation in India—India's Vanishing asset') तैयार की–जिसमें वैधानिक एवं व्यावहारिक उपायों द्वारा संरक्षण करने की अविलंब आवश्यकता तर्कसंगत शैली में प्रस्तुत की; इस पत्रिका का प्रभावशाली प्रचार हुआ; तथा बर्टन के अनेक बीजारोपण, समयोचित तथा प्रभावशाली योगदानों में से, जिनके प्रति वे समर्पित थे, यह एक कार्य था।

एडवर्ड प्रिचर्ड जी

असम के चाय बागानों में लंबी सेवा के बाद अवकाश लेने पर पक्के अविवाहित ई.पी.जी ने शिलांग में निवास बनाया। वहां उन्होंने स्वयं ही जंगलों से संग्रह कर असम में एक निजी सर्वोत्कृष्ट आर्किड बाग तैयार किया। युवावस्था में वे अत्यधिक उत्साही शिकारी-प्रकृति वैज्ञानिक तथा अभ्यस्त मछुआरे थे। असम के राज्यपाल सर अकबर हैदरी, कनिष्ठ के आमंत्रण पर काजीरंगा वन्य जीवन अभयारण्य में गैंडों के सर्वेक्षण पर मैं 1948 में गया था। मैं उस समय जी से मिला, तब तक उन्होंने शिकार छोड़ दिया था। तथा उतनी ही उत्कटता से वन्य जीवन फोटोग्राफी शुरू कर दी थी, जिसमें उन्होंने शीघ्र ही श्रेष्ठता प्राप्त कर ली थी। उन्होंने कर्नल बर्टन तथा आर.सी. मौरिस के साथ गठबंधन किया क्योंकि उन्होंने भी संरक्षण की तरफ संपूर्ण निष्ठा से अंतरण किया था। लोके ने उनसे भरतपुर में 1957 में मिलने के बाद अपनी डायरी में जी का वर्णन किया :

'भारी भरकम आदमी, गंजेपन की ओर अग्रसर, मोटा चश्मा; कवि ब्राउनिंग की चिड़ियों के समान प्रत्येक बोल दुहराते हैं, पहले के पश्चात दूसरा पद मानो स्वतः गिर पड़ता है, 'पीने को पानी है, पीने को पानी; वे तंग हो गए तंग हो गए, अतएव गोली मार ली, अतएव गोली मार ली'। जी को कम सुनाई देता है, अतएव इस कारण से वे पदों को दुहराते हैं। सालिम भी पर्याप्त बहरे हैं, अतएव जब वे तथा जी बात करते हैं, तब एक की उच्चतार में कर्ण भेदक आवाज तथा दूसरे की निम्न एक स्वर आवाज के कारण दुनिया को उन्हें सुनने के लिए अपने कानों पर जोर नहीं लगाना पड़ता !'

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय उन्होंने स्वेच्छा से सेना में सेवा की। चूंकि चाय बागानों में उन्हें बहुल श्रमिकों से काम कराने का अनुभव था, उन्हें 'पायोनिअर

कोर' में सड़क निर्माण का कार्य दिया गया था। वे विख्यात 'बर्मा रोड' का निर्माण कर रहे थे। दोनों के बिना जाने कुछ ऐसा हुआ कि, कुछ कि.मी. आगे उसी सड़क पर इसी नाम का एक अन्य व्यक्ति सड़क निर्माण का कार्य देख रहा था। इन दोनों जी के बीच वरिष्ठ अधिकारी अक्सर भ्रमित हो जाते थे। चूंकि हमारे जी बहुत बातूनी थे, उन्होंने इन्हें एक सटीक नाम दे दिया (चैटर-जी)!

1964 में, बी.एन.एच.एस. की पक्षिप्रवासन प्रायोजना के लिए मैं पूर्वी हिमालय के लिए उपयुक्त फंसाव स्थल खोज रहा था। जब एन.डी. जयाल ट्यूटिंग में (सियांग सीमांत प्रभाग), कुछ वर्ष पहले सहायक राजनैतिक अधिकारी थे, तब उन्होंने वहां से रिपोर्ट की थी कि वहां की गोव सी घाटी एशिया केंद्र तथा दूर से प्रवासन करने वाले पक्षियों के, अनुकूल ऋतु में, अध्ययन के लिए उपयुक्त थी। उस सर्वेक्षण हेतु मेरे साथ जाने के लिए जी ने सहर्ष स्वीकृति दी। ट्यूटिंग में युद्ध पूर्व 'छिद्रत इस्पाती चादर' बिछी हुई अवतरण पट्टिका (विमानों के लिए) नहीं थी। अतएव राजनैतिक मुख्यालय पासीघाट से, बीहड़ बनों तथा पर्वतों पर से उतरते-चढ़ते हुए पैदल जाने में 14 दिन लगते थे। किंतु अब आपूर्ति विमान के भीतर आटा, दाल, चावल आदि के बोरों पर बैठकर जाने में केवल चालीस मिनट ही लगे। उस विमान में हमारे अन्य सहयात्रियों में मिट्टी का तेल, पेट्रोल तथा तेल के अलावा बकरे (खुरों पर गोश्त) भी काफी मात्रा में थे। वयोवृद्ध श्रांत डैकोटा के दरवाजे खुले ही रखे जाते थे। उनमें से तूफानी हवा के झोंकों को खाते हुए, विशाल खिड़की से नीचे के पर्वतीय दृश्यों—बीहड़ वनों, रम्य घाटियों, एक के बाद दूसरी पर्वत श्रेणियों की श्रृंखला, उत्तुंग जलप्रपातों—को देखने की पुलक तो अद्‌भुत थी, किंतु हिमाच्छादित श्रेणियों से घिरी संकरी घाटियों में, कभी-कभी ऐसा डर लगता था कि कहीं डैकोटा के डैनों के छोर पहाड़ी को छू न लें। पतझड़ी प्रवासन देखने के लिए नवंबर का अंत पूर्णतया अनुपयुक्त था, फिर भी इस स्थल की दूरी तथा आपूर्ति एवं गमनागमन की कठिनाइयों के कारण बी.एन.एच.एस. के फंसाव कार्य हेतु यह स्थल अनुपयुक्त था। ट्यूटिंग में हमारे भ्रमण के कुछ सप्ताह बाद ही चीनी दैत्य ने हमारे प्रथम सीमा युद्ध में उस क्षेत्र को रौंद डाला।

उसी सर्वेक्षण के दौरान, यद्यपि नवंबर उपयुक्त माह नहीं था, प्रवासी पक्षियों के फंसाव हेतु अध्ययन करने के लिए, हम लोग जटिंगा भी गए थे। उत्तरी कछार की पहाड़ियों में स्थित जटिंगा एक छोटा-सा गांव है, किंतु समाचारपत्रों में छपी पक्षियों के बहुल-आत्मघात खबरों के कारण यह कुख्यात हो गया है। संवाददाताओं के काल्पनिक मनगढ़ंत सनसनीखेज समाचारों के अनुसार यह घटना वर्ष के कुछ नियत समयों पर घटती है। हम लोगों ने स्थानीय लोगों से जानकारी इकट्ठी की। तदनुसार दक्षिण-पश्चिम मानसून की अंधेरी रातों में जब आकाश बादलों से ढंका हो, हल्की फुहार हो, जमीन पर गहरी धुंध हो तथा घाटी में हवा उत्तर से दक्षिण

की ओर तेजी से बह रही हो अर्थात पक्षियों के पतझड़ प्रवासन की विपरीत दिशा में बह रही हो, तब गांव वालों द्वारा उन्हें आकर्षित करने हेतु लगाए गए प्रकाश स्रोतों से विभिन्न कुलों के पक्षी आकर्षित हो टकरा जाते हैं। तब उन भ्रमित पक्षियों का, घात में बैठे, गांव वाले अपने भोजन हेतु बहुल संख्या में संहार करते हैं। इस हेतु सर्वोत्तम समय रात सात से नौ तथा सुबह दो से चार होता है। जब रात को आकाश में तारे न दिख रहे हों, तब अंधेरी रातों में प्रकाश स्रोतों पर पक्षियों के आकर्षित होने में कुछ भी असामान्य नहीं है। जाने माने प्रवास पथों पर स्थापित प्रकाश-स्तंभों में ऐसी घटनाएं सुलभ हैं। परंतु मुझे इस जटिंगा-घटना में जो सचमुच रहस्यमय लगता है वह यह कि इन रात्रि दुर्घटनाग्रस्त पक्षियों में पन्नइ पंडुक[1], पहाड़ी तित्तिर[2], सितवक्षी कथ-किलकिला[3] जैसे दिनचर पक्षी तथा अन्य अनेक जो परंपरागत स्थानीय तथा अप्रवासी माने जाने वाले पक्षी भी होते हैं जिनका रात्रि में उड़ने का कोई काम नहीं होना चाहिए। किंतु सोवियत संघ तथा दक्षिण पूर्वी एशिया में इन तथाकथित निवासी पक्षियों की भारत में पुनःप्राप्ति यह दर्शाती है कि इन आवासी पक्षियों में प्रवासी पक्षी आकर मिल जाते हैं, यह भी कि संभवतया ये 'स्थानीय' पक्षी सच्चे सुदूर प्रवासन करने वाले पक्षियों-सा व्यवहार करते हैं। इस क्षेत्र के आवासी पक्षियों का फंसाव कर अध्ययन करने से इस व्यवहार पर उपयोगी जानकारी मिलेगी।

एडवर्ड पी.जी (संक्षेप में ई.पी.जी) उन चाय बागानियों में से हैं जो बाद में आए हैं तथा सुसंस्कृतं एवं सुशिक्षित हैं। जब उन्होंने राइफल से शूट करना छोड़कर कैमरे से शूट करना प्रारंभ किया तब उनका वन्य जीवन संरक्षण के प्रति समर्पण प्रस्फुटित हुआ, जो उनके सेवानिवृत्त होने के बाद गहन प्रेम में विकसित हुआ। उन्होंने विभिन्न राष्ट्रीय उपवनों तथा प्रमुख वन्य जीवन अभयारण्यों का स्वतः ही लगातार भ्रमण किया, स्थानीय परिस्थितियों को देखा तथा उनका समुचित अध्ययन एवं निरीक्षण कर प्रामाणिक रूप से विस्तृत लेखन किया जो बी.एन.एच.एस. के जर्नल में, ओरिक्स (Oryx) 'फौना एंड फ्लौरा प्रीजरवेशन सोसायटी' का पत्र, में तथा विभिन्न वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहता था। उन्होंने भारतीय दैनिकों के लिए भी बहुधा लिखा था कि संरक्षण का संदेश आम जनता तक पहुंच सके, तथा उन्होंने एतदर्थ स्वयं उत्कृष्ट वन्य जीवन फिल्में बनाईं, व्याख्यान तथा रेडियो वार्ताएं दीं, तथा यह सब पूर्ण समर्पण की भावना से किया। विवेकशील स्वतंत्र प्रकृति तथा भारतीय वन्य जीवन बोर्ड के गतिशील सदस्य के बतौर प्रशासनिक

1. पन्नइ पंडुक [(Emerald Dove) Chalcophas]
2. पहाड़ी तित्तिर [(Hill partridge) Arborophila]
3. सितवक्षी कथ-किलकिला [(Whitebreasted Kingfisher) Halcyon smyrnensis]

क्षेत्र में 'जी' की सम्मतियों तथा सुझावों का हमेशा आदर तथा प्रशंसा हुआ करती थी। 1964 में कौलिन्स द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तक 'भारत का वन्य जीवन'[1] जिसमें जवाहरलाल नेहरू ने आनंदप्रद प्राक्कथन लिखा था, भारत के वनों के बड़े जानवरों तथा उनकी दशा पर बहुत ही लोकप्रिय एवं जानकारी से भरी हुई, सामान्य व्यक्ति के लिए रुचिकर तथा बातचीत की शैली में लिखी तथा उनके द्वारा लिए चित्रों से सुसज्जित पुस्तक है।

'जी' मेरे लिए बहुत अच्छे तथा समझने वाले मित्र थे, तथा बी.एन.एच.एस. के लिए बहुमूल्य स्रोत थे। बी.एन.एच.एस. के कार्यकलापों के लिए जब भी आवश्यकता होती थी वे कोई भी मदद करने के लिए अक्सर कष्ट तथा खर्च उठाते हुए, हमेशा तैयार रहते थे। काश कि 'जी' की तरह सोसायटी में और अधिक सदस्य होते। यह तो भारतीय प्रकृति तथा वन्य जीवन संरक्षण की त्रासदी हुई, जैसी कि स्वयं 'जी' के लिए, कि उनकी दुखद मृत्यु तब हो गई जब वे उत्साह से भरे और पूरी तरह सक्रिय थे, जब कि उनके परिश्रम और आंदोलन, जिनके लिए उन्होंने इतनी निस्वार्थ भावना से कार्य किया, फलीभूत होने लगे थे।

हुमायूं अब्दुललि

मेरे बर्मा प्रवास से लौटने के बाद, मेरा सबसे अधिक होनहार चेला मेरा संभ्राता हुमायूं था, जो मेरे बहनोई हसन के बड़े भाई नजमुद्दीन अब्दुललि का पुत्र था। नजमुद्दीन ने जापान में सफल व्यवसाय कर समृद्धि पाने के बाद, अपना मुख्यालय मुंबई में अंतरण करने का निश्चय किया था। वे 'अंधेरी' में रहते थे, जो उन दिनों वनों से आच्छादित उपनगर था। वह अनेक सामान्य पक्षियों का अड्डा था, जिनमें से कुछ ने उसके जंगली अहाते में अपने घोंसले बनाए थे। ऐसी स्थिति में उसके बाल मन में प्रकृति विज्ञान के लिए रुझान पैदा हुआ तथा उसने चिड़ियों के अंडों, सांपों, छिपकलियों, मेंढकों तथा अन्य छोटे जंतुओं का संग्रहण प्रारंभ किया। नए पक्षियों के आगमन तथा उनके घोंसलों को देखने, जानने में उसे 'नितांत असामान्य' सेविका से सहायता मिली। यद्यपि वह पूरी अशिक्षित तथा अपढ़ थी, किंतु उसे पक्षियों में सहज ही रुचि थी और वह स्वयं उन्हें खोजने जाती थी।

हुमायूं जब तक शाला के पश्चात सैंट जैवियर्स कॉलेज में पहुंचा और उसने प्राणिविज्ञान विषय लिया तब तक वह उत्साही तथा सर्वतोमुखी जानकार प्रकृति वैज्ञानिक बन चुका था जिसकी पक्षियों में विशेष रुचि थी। उसने अपने कालेज के संग्रहालय के लिए बंबई के पास पड़ोस से समुचित अध्ययन योग्य पक्षिसंग्रह तैयार किया था। उसके इस संग्रह की सामग्री एवं मेरे द्वारा 1924 से 1929 के

1. 'भारत का वन्य जीवन' (Wildlife of India)

बीच संगृहीत सामग्री ने मिलकर हमारे संयुक्त आलेख 'बंबई तथा साल्सैट्ट के पक्षी' का आधार बनाया, जिसे बी.एन.एच.एस. के 1936-37 के जर्नल में प्रकाशित किया गया था। चौथे दशक के प्रारंभिक वर्षों में हुमायूं ने मेरे साथ हैदराबाद तथा त्रावणकोर पक्षिसर्वेक्षण में कालेज के तीन अवकाश बिताए थे। उनमें उसको व्यवस्थापूर्वक नमूनों के संग्रहण का तथा क्षेत्रकार्य का व्यावहारिक परिचय मिला था। उस शिक्षा का उसने बहुत उपयोगी विकास किया। उत्साही युवा संवेदनशील प्रकृति वैज्ञानिक जिसमें सूक्ष्म अवलोकन क्षमता तथा मौलिक एवं जिज्ञासु मस्तिष्क था बहुत उपयोगी क्षेत्र-सहायक सिद्ध हुआ। शिविर तथा शूटिंग हेतु भ्रमण में सुखद, जीवंत तथा मनोरंजक साथी था, पक्षियों तथा अन्य प्रकृति-वैज्ञानिक नमूनों के संग्रहण करते समय वह अथक परिश्रमी तथा विवेकशील संग्राहक था। हुमायूं 12-बोर का बढ़िया निशानेबाज था, वह शिविर के लिए बहुधा गोश्त इकट्ठा करने में हमेशा मदद करता था। बड़ी बात तो यह कि वह अदम्य साहसी था, सुपर्ण के घोंसले को देखने के लिए वह खड़ी चट्टान पर चढ़ जाता था, या गहरी गुफा में बतासी के जमीन से 100 फुट ऊंचाई पर बने घोंसले को देखने के लिए कच्ची रस्सी बांधकर उससे लटक जाता था, पक्षियों को खोजने के लिए इस तरह के अभियानों के खतरे की चिंता नहीं करता था।

हुमायूं 1950-62 तक सोसायटी सचिव एवं 'बंबई प्रदेश वन्य जीवन सलाहकार बोर्ड' में बी.एन.एच.एस. का प्रतिनिधि था। इस काल में, हुमायूं ने वन विभाग के साथ मिलकर 'बंबई वन्य पक्षी तथा वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1951' का प्रारूप बनाया था। इस हेतु विकसित पाश्चात्य देशों के इसी प्रकार के अधिनियमों का गहरा तथा विवेचनात्मक अध्ययन, उनका सारग्रहण तथा आवश्यक रूपांतरण किया गया था। बाद में इसी अधिनियम का उपयोग 'केंद्रीय वन्य जीवन (संरक्षण) अभिन्नियम 1972' की रचना में किया गया था, जिसे अभी तक भारत में बनाए गए वन्य जीवन अधिनियमों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। सोसायटी अपने कार्यों आदि के लिए एक स्वतंत्र इमारत स्थायी रूप में चाहती थी। जिसमें उसके कार्यालय, पुस्तकालय तथा अमूल्य प्राणिवैज्ञानिकीय संग्रह आदि स्थापित किए जा सकें। सोसायटी की तरफ से उसके सचिव के रूप में इस इमारत के लिए केंद्रीय सरकार से सारी बातचीत में हुमायूं ने पहल की तथा लगातार प्रयास किया, जिस सब का साक्षी है 'हॉर्नबिल हाउस' (धनेशगृह)। यह स्वयं उसके लिए तथा उन उदात्त उद्देश्यों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण था कि बाद के वर्षों में हुमायूं के साथ काम करना सरल नहीं रहा, इसके फलस्वरूप उसके पुराने साथियों, लंगोटिया यारों तथा प्रशंसकों के बीच भी उसकी छवि मलिन हुई। अन्यथा, उसकी प्रभावी योग्यता रचनात्मक कार्यों में और अधिक योगदान दे सकती थी।

20
पक्षिवैज्ञानिकी तथा शिकार

मेरे बाद के दिनों में, सामान्यतया लोग यह मानकर चलते हैं कि मेरे पक्षिप्रेम के कारण किसी अन्य के द्वारा किया गया पक्षिवध मुझे असह्य होगा तथा स्वयं मैं तो पक्षिवध का विचार भी मन में नहीं ला सकता। लोगों का ऐसा मानना सही नहीं है तथा ऐसी मान्यता, कभी-कभी मुझे उलझन में डाल देती है। यह तो सच है कि मुझे व्यर्थ की हत्या से घृणा है तथा मैं इसे विध्वंसात्मक कार्य समझता हूं, जिसकी तीव्रतम भर्त्सना की जानी चाहिए। किंतु मेरा पक्षिप्रेम शुद्ध भावुकता की कोटि में नहीं आता। मेरा पक्षिप्रेम सौंदर्यात्मक एवं वैज्ञानिक है, तथा कभी-कभी वह उपयोगितावादी भी हो सकता है। पक्षियों के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु उनमें से कुछ का बलिदान भी आवश्यक हो जाता है। मुझे हत्या करने में खुशी नहीं होती, वरन कभी-कभी मेरा अंतःकरण मुझे कोंचता भी है। किंतु मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि प्रारंभिक वर्षों में किए गए हजारों (!) पक्षियों के संग्रहण के बिना भारतीय पक्षियों के वर्गीकरण के हमारे ज्ञान का इतना विकास असंभव होता; यह सब क्षेत्रीय पक्षिसर्वेक्षणों के समय हुआ, तथा उनका भौगोलिक वितरण, पारिस्थितिकी तथा जैवमापिकी—यह सब भी असंभव होता। आज हम उस स्थिति में पहुंच गए (ऐसा मेरा विश्वास है) जहां, निर्मोचन तथा कुछ पक्षिवैज्ञानिकी से अछूते क्षेत्रों में विशेष अध्ययन के अपवाद सहित, भारतीय पक्षियों के नमूनों के संग्रहण के लिए संग्रहण की आवश्यकता नहीं रह गई है। हां, कुछ कम जानी हुई जातियां जिनके नमूने संग्रहालयों में नहीं हैं, उनके लिए भी संयमित संग्रहण किया जाना चाहिए। अधिकांश वर्गीकरण संबद्ध समस्याओं के हल करने के लिए पर्याप्त आनुसंधानिक सामग्री बी.एन.एच.एस., भारतीय प्राणिवैज्ञानिकीय सर्वेक्षण तथा विदेशों के विशाल प्राकृतिक-इतिहास संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। यहां तक कि तुलनात्मक अध्ययनों हेतु वैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक संस्थाओं के बीच अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आपसी समझ तथा सहयोग, एवं विमान सेवाओं के रहने से आवश्यक परिपूरक सामग्री के उधार मिल सकने की सुविधा अब बढ़ गई है। उस समय से अभी कुछ वर्षों पूर्व तक

जब पंछी निहारन को आलसी धनाढ्य लोगों का समय काटने का शौक समझकर हेय दृष्टि से देखा जाता था, तब आकारिकी एवं वर्गीकरण को ही 'वैज्ञानिक' पक्षिवैज्ञानिकी समझा जाता था, अपने पर्यावरण में जीवित पक्षी ही मेरे अध्ययन के प्रमुख केंद्र रहे हैं।

वर्गीकरण के सैद्धांतिक अध्ययन के अतिरिक्त मैंने इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। वर्गीकरण के पंडितों, पांडित्याभिमानियों तथा ढोंगियों के बीच वाग्युद्धों, जो कभी-कभी उग्र हो जाते थे, का मैंने पार्श्व से आवेगहीन आनंद उठाया है तथा कभी-कभी स्पष्ट रूप से विस्मयाभिभूत होकर देखा है। बहुधा इन सब प्रकार के पंडितों की विवादग्रस्त पक्षी से पहचान मात्र संग्रहालय के बासे नमूने के द्वारा ही रही थी। वर्गीकरण-खेल को कुछ लोग जिस वाक् चातुर्य तथा पूर्ण आश्वस्ति से खेलते हैं उसे देखकर मुझे उमर खय्याम की अमर रुबाई याद आ जाती है—

'इधर और उधर चलते हैं, मैथुन करते हैं, हत्या करते हैं
और एक के बाद एक, ताबूत में सो जाते हैं।'

और बहुधा इस सबका यही परिणाम होता है। अक्सर हम लोग पूरा चक्कर लगाने के बाद वहीं आ जाते हैं, जहां से चले थे। इस तरह की कसरत मुझे पुलकायमान नहीं करती : हमेशा ऐसा ही रहा है, मुझे भय है कि आगे भी ऐसा ही रहेगा। यह सुखद है कि वर्गीकरण की तुलना में जीवित पक्षी के क्षेत्र अध्ययन का महत्व बढ़ रहा है, विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से; इसे पारिस्थितिकी तथा व्यवहार की संज्ञा दी गई है। पिछले वर्षों पंछी निहारन ने जो प्रतिष्ठा तथा जनता में मान्यता प्राप्त की थी उसमें 1973 में जैवविज्ञान के नोबेल पुरस्कार ने एकदम बढ़ावा दिया है क्योंकि जिन दो (तीन के संयुक्त में से) को वह पुरस्कार मिला है—निकोलस टिनबर्जेन तथा कौन रैड लोरेन्ज—उन दोनों ने अपना व्यावसायिक जीवन (अव्यावसायिक) के रूप में शुरू किया था।

जिस काल में मैं बढ़ा, उसमें ब्रिटिश परंपरा के अनुसार उच्च मध्यम श्रेणी में 'खेल के लिए शिकार' या कम से कम उसके विषय में बात करना प्रतिष्ठा का प्रतीक था—प्रत्येक महत्वपूर्ण नवयुवक के लिए सीखना अनिवार्य-सा था। मैं अपने पितातुल्य मामाजी अमीरुद्दीन तैयबजी की प्रेरणा तथा संरक्षण में स्वभावतया उत्साही निशानेबाज बना। समाज के श्रेष्ठों में अमीरुद्दीन लोकप्रिय थे, तथा शिकारी नवाबों एवं राजाओं के अच्छे मिलने-जुलने वालों में से थे। उनका मीठा स्वभाव तथा शिकार की दिलेरी सब जानते थे, अतएव अक्सर उन्हें आखेट अभियानों में आमंत्रित किया जाता था। राजसी बाघ-आखेटों तथा 'बड़े शिकार' के साहस की जो कहानियां वे लाते थे, उसने मेरे चिरकालिक बड़े शिकारी बनने की सुप्त-महत्वाकांक्षाओं को जगा दिया था। मैं शीतकालीन अवकाशों की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा करता था। क्योंकि वही आखेट-ऋतुएं होती थीं। उनके लिए मैं अपने

किसी अंतःप्रदेशीय स्नेही संबंधी के यहां अपने को आमंत्रित कर लेता था। इनमें भी जिला अधिकारी आदि को मैं प्राथमिकता देता था क्योंकि उनके शीतकालीन दौरे में शिकार के अवसर स्वतः ही उनके तथा उनके अतिथियों के लिए उपलब्ध हो जाते थे। छुट्टियों में मेरे शिकार के बस्ते में अधिकांशतया छोटे शिकार ही हुआ करते थे यथा हंसक, स्नाइप, तित्तिर, बटेर तथा खरगोश जो प्रथम विश्वयुद्ध के पहले प्रचुरता में मिलते थे, तथा थोड़े कम होते हुए द्वितीय विश्वयुद्ध तक भी मिल जाते थे। इस थैले में कभी-कभी, देशकाल के अनुसार, चिंकारा, कृष्ण हरिण, प्रियक हरिण, कक्कड़ हरिण या सूअर भी आ जाते थे। इन शिकार-उत्सवों में अन्य क्रिसमस अतिथि भी होते थे, और मेरी आयु के अनेक स्कूली संभ्राता भी। हम किशोरों में मित्रवत होड़ भी हुआ करती थी—कौन कितने कारतूस में कितना शिकार करता है। चूंकि हम लोगों को सीमित संख्या में ही कारतूस मिला करते थे, स्वभावतया सभी उत्कृष्टता का प्रयास करते थे।

उस समय हमारे द्वितीय ज्येष्ठ भ्राता हामिद सिंध, उन दिनों बाम्बे-प्रेसिडेंसी का भाग, में सेवारत थे। वे स्कूली लड़कों के हमले के सर्वाधिक एवं नियमित 'शिकार' थे, यद्यपि उन्होंने इसकी कभी शिकायत नहीं की। कुछ समय के लिए हामिद भाई भू-अभिलेख अधीक्षक थे, तथा बाद में ऋणग्रस्त रियासतों के प्रबंधक। मेरे आखेट-अनुभवों तथा प्राकृतिक-इतिहास की दृष्टि से तथा अन्य संभ्राताओं और स्वयं हामिद भाई के लिए यह अवधि सर्वाधिक उपयोगी रही। उन दिनों उनपर कार्यभार कम था जिससे उनके पास आखेट के लिए पर्याप्त समय होता था। उनके शीतकालीन दौरे सारे प्रांत में होते थे, और अपने अतिथियों के आनंद हेतु वे 3-4 सप्ताह के यात्राक्रम में यथासंभव सभी उत्तम आखेट स्थलों को सम्मिलित कर लेते थे। हामिद भाई ने आई.सी.एस. बनने के बाद 1904 में सिंध में हुई अपनी नियुक्ति के बाद शिकार खेलना आरंभ किया। वहां उनके अधिकांश ब्रिटिश साथी भी अच्छे शिकारी थे। उन दिनों सिंध छोटे शिकार के लिए प्रसिद्ध था और सचमुच ही स्वर्ग था, जो वह विभाजन के दिनों तक बना रहा। वे शीघ्र ही बंदूक तथा राइफल चलाने में निपुण हो गए थे, और शायद ही कभी किसी किशोर ने उनसे अधिक अच्छा शिकार किया हो। उन्होंने हमें शिकार थैले को मात्र बड़ा करने से हमेशा निरुत्साहित किया। चूंकि वे स्वयं उत्साही प्रकृति वैज्ञानिक थे तथा पक्षि-अध्ययन में गहरी रुचि रखते थे अतः हम लोगों के थैले का निरीक्षण करते थे तथा इसके पहले कि कोई जाति रसोई में पहुंचे, उसकी सही पहचान करवाते थे। इस प्रारंभिक अभ्यास ने मुझे हमेशा लाभ पहुंचाया। हम लोगों ने कभी शिकार की अति नहीं की, तथापि प्रतिदिन हम लोगों के भोजन में, बहुधा प्रत्येक भोजन में कुछ न कुछ शिकार अवश्य होता था।

जिन्होंने कभी भी सुशिक्षित, जी हां सुशिक्षित सवारी वाले ऊंट पर सवारी

नहीं की है वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि रेतीले, अर्धमरुस्थल प्रदेश में वह कितना तीव्र तथा आरामदेह वाहन हो सकता है। हामिद भाई के अधिकारिक साधनों में दो सवारी वाले ऊंट भी थे, एक उनके लिए तथा दूसरा उनकी पत्नी शरीफा के लिए जिन पर वे अधिकांश शीतकालीन दौरे किया करते थे। जब कैंप में अतिथि होते थे तब उस दौरान हमेशा खुश करने की इच्छा रखने वाले जमींदार इन अतिरिक्त जानवरों की व्यवस्था करते थे। इनमें से कुछ जमींदार ऊंटों का संप्रजनन करते थे, वे नस्लदार ऊंटों के पारखी होते थे। हामिद भाई, हम लोगों के उठने के पहले ही अपने सुंदर बधिया लाल घोड़े पर या अपने प्रिय सवारी वाले ऊंट पर निकल जाते थे। वे अपने शासकीय कार्य करते, निरीक्षण करते, उनके साथ जमींदारों तथा स्थानीय सज्जनों की मिली जुली भीड़-सी रहती थी जो खच्चरों पर आराम से चलती थी, तथा वे हामिद भाई के ऊंट के बराबर चलने में कठिनाई अनुभव करते थे। उनके ऊंट का विश्वसनीय तथा दाढ़ीवाला ऊंटवान जान मोहम्मद शैतानी करता था तथा उसे अपने ऊंट की तेज चाल तथा करामात दिखाने में बड़ा मजा आता था, जब कि शेष दल साथ बनाए रखने के लिए संघर्ष करता नजर आता।

हर तीसरे चौथे दिन शिविर को एक से दूसरी जगह ले जाना एक जटिल कसरत थी किंतु जिस सरलता से वह किया जाता था, वह आज तक मेरे लिए विस्मय बना हुआ है। कितना सामान होता था—अनेक विशाल तथा भारी स्विस तंबू, फर्नीचर, दरियां, चारपाई, मुड़वां कुर्सी तथा टेबल—भोजन के लिए, प्रसाधन के लिए, आफिस, धोने तथा अन्य कार्यों के लिए फर्नीचर, कमोड, सीसई लौह स्नान टब, बाल्टियां, रसोई के बर्तन आदि। इसके साथ ही कांच का सामान, क्राकरी, बत्तियां, लालटेनें तथा अन्य नाजुक तथा टुटहा सामान विशेष रूप से निर्मित लकड़ी की अलमारियों में या मजबूत पेटियों में संभालकर भरा जाता था। ये पेटियां, अलमारियां भी ऊंटों की पीठ पर लादने के लिए उपयुक्त अवतल (concave) आकार में बनाई जाती थीं। ताकि वे जब दोनों तरफ थैलों में लटकाई जाएं तब पीठ पर ठीक से बैठ जाएं। सामान ढोने के लिए लगभग पंद्रह ऊंट होते थे, तथा रात में चलने के पहले एक की नाक अगले की पूंछ में बांधी जाती थी। यह ऊंटी ट्रेन सारी रात चलकर गंतव्य में बहुत सुबह पहुंच जाती थी, तथा पैकिंग इतनी अच्छी होती थी कि अड़ियल चाल के बावजूद, शायद ही कभी कोई चीज टूटती हो। जब तक साहब और उनके अतिथि अपने गंतव्य तक पहुंचते, लगभग देर सुबह तक, सब शिविर बाकायदा सुसज्जित मिलता था, आफिस, भोजन गृह, अतिथि गृह सब रहने के लिए तैयार मिलते थे। फर्नीचर, प्रसाधन टेबल अपनी जगह बिलकुल पिछले शिविर की तरह तैयार, यहां तक कि यदि कोई पिन भूल से कहीं रखी हुई थी, तब वह भी नए स्थान पर ठीक वहीं मिलती। अग्रिम रसोइयों की टोली भी भोजन समय पर तैयार करती थी। सब कुछ इतनी दक्षता से होता था कि आपको पता

ही नहीं लगता था कि शिविर बदला गया है। तंबू खलासी अपने कार्य में इतने कुशल तथा अपनी जिम्मेदारी इतनी निष्ठा से निभाते थे कि विशाल तथा भारी तंबू, फर्नीचर इत्यादि भी आश्चर्यजनक वेग से जमाए जाते थे। स्पष्ट तथा ऐसी दक्षता के लिए सभी मुख्य वस्तुएं दोहरी थीं ताकि एक शिविर उखाड़कर, एक गंतव्य को छोड़कर दूसरे गंतव्य पर पहले ही पहुंच जाए। आज परिस्थितियां बदल गई हैं, वो दिन नहीं रहे; अब तो भागम भाग मची रहती है, जीप तथा ट्रक दौड़ते हैं उनके लिए डामर पुती सड़कें हैं। डाकबंगले सुसज्जित रहते हैं, बिजली की बत्तियां हैं, टेलिफोन हैं जिन पर मंत्री, सचिव, सभी अधिकारी उपलब्ध हैं पर मुख्यालयों में टनों कागजी काम है जो पार्किन्सन के नियमानुसार कार्य करता है। जिला-अधिकारियों के दौरे अब वे पुराने मौज-मस्ती के दिन नहीं रहे। और शिकार की क्या बातें करें। अब तो जनता के सामने शिकार का वह पुराना रुतबा ही न रहा; ऊपर से शिकार के खर्चे, हांका वालों, सहायकों के और कारतूस के खर्चे हद से ज्यादा ही बढ़ गए हैं, और वास्तव में देखा जाए तो शिकार के लिए जानवर ही कहाँ बचे हैं, जब जंगल नहीं तो जानवर नहीं, न छोटे और न बड़े, इन सब हालात ने वैध शिकार को तो समाप्त ही कर दिया है। हम लोगों को जो बाहर खुली हवा में मौज उड़ाने के अवसर मिले, अब कोई भी विद्यालय का विद्यार्थी अपनी छुट्टियों में उनका आनंद लेने की आशा नहीं कर सकता।

'टिलूर' (Houbara Bustard) या 'नीलवक्षी तांबई सोहन' (Chalmydotis undulate macqueeni) से मेरी पहली मुलाकात कोई 1910 के आसपास सिंध में विद्यालय की छुट्टियों के दौरान शिकार के समय हुई थी। जानवरों के रंग कैसे उनकी रक्षा करते हैं और अपने शत्रुओं से बच निकलने में कैसी मदद करते हैं, इस सबके विषय में मैंने काफी अध्ययन किया था, परंतु जब तक मैंने रंगों की इस युक्ति का नीलवक्षी तांबई सोहन द्वारा दिया गया बचाव का व्यावहारिक प्रदर्शन नहीं देखा, मैं इस युक्ति की पूर्ण प्रभावशीलता पर विश्वास नहीं कर सकता था। सोहन खाने-पीने के शौकीन लोगों का अत्यंत प्रिय भोजन है और यह मानना पड़ेगा कि टेबल-पक्षी के रूप में इसका विशेष स्थान है। इसका शिकार जैसा कि सिंध में करते हैं, और जैसा कि इस बार हमारे लिए प्रबंध किया गया था, वह था ऊंट पर से इसका शिकार करना जो वास्तव में शिकार की दृष्टि से 'शुष्क' है—और अच्छी से अच्छी हालत में नकली शिकार ही कहलाएगा। इस अभियान के पहले मोर्चे में ऊंटवान को बहुत कौशल से तथा परखते हुए ऊंट का परिचालन करना पड़ता है। इन मरुस्थल में रहने वालों की आंखें गिद्ध के समान तीक्ष्ण होती हैं। अपनी प्राकृतिक रेतीली भूमि पर बैठे तांबई सोहन को अपनी आंखों से देखना असाधारण सामर्थ्य की मांग करता है क्योंकि आम नौसिखिया तो बाइनाक्युलर की मदद से भी शायद ही उसे देख पाए। जब शिकारी सोहन पक्षी को देख लेता

है तब उसके निकट पहुंचने की रणनीति यह होती है कि उसे केंद्र में रखते हुए, बड़े गोलाकार वृत्तों में उसके चारों ओर चक्कर लगाना। अर्थात उसकी तरफ सीधे कभी नहीं जाना। धीरे-धीरे इन वृत्तों की त्रिज्या को छोटे करते हुए—कुंडलीकार में—उसके इतने निकट पहुंच जाना कि बंदूक से गोली का निशाना उस पर दाग सकें। अपनी इस चाल में, एक बिंदु पर आपको सहसा यह लग सकता है कि आप जिसके लिए इतनी चालाकी से कुंडली कस रहे थे और जो आपकी चाल को समझते हुए धीरे धीरे आपसे दूर होते हुए जैसे अंतर्ध्यान हो गया है, वह तो वहां है ही नहीं। आपके पलक झपकने के अंतराल में वह एक छोटी-सी झाड़ी की छाया में एकदम पसरकर बैठ गया है, अपनी लंबी गर्दन भी उसने जमीन पर जैसे चिपका दी है। ऊंटवान ने ऊंट को रोक लिया है और आपको बेसब्री से इशारा कर रहा है कि आप उस पर गोली दागें, किंतु आपके लिए तो सोहन वहां है ही नहीं। हताश होकर ऊंटवान आपको उस झाड़ी के पास पड़े गोबर के सूखे कंडे पर ही गोली दागने के लिए कहता है। आप गोली दागते हैं, इसलिए नहीं कि आपको सोहन दिख गया है वरन् केवल ऊंटवान की हताशा को मिटाने के लिए आप गोली दाग देते हैं। वह तो गोली लगने से जब गोबर पलट जाता है तब आपको उसके फैले पंख दिखते हैं और आपको अपना शिकार पहचान में आता है ! मुझे अपना प्रथम टिलूर इसी तरह मिला था, और साथ ही जानवरों के जीवन के लिए उसके रंग का महत्व भी मैंने जाना था। अन्य स्थानों, जैसे कच्छ में सोहन का शिकार जमीन पर से ही किया जाता है तथा पक्षियों को बंदूक के ऊपर से उड़ने के लिए बाध्य किया जाता है। शिकार की इस पद्धति में 'खेलपन' कुछ अधिक है, तथा ठंडे एवं तेज हवा वाले दिन जब पक्षी भी तेज भागते हैं, शूटिंग कठिन तथा उत्तेजक हो सकती थी।

परंतु सोहन श्यैनिक[1] सर्वोपरि तथा सर्वोत्कृष्ट शिकार है। इसलिए क्या आश्चर्य कि खाड़ी (गल्फ) राज्यों के शेखों के अविचारित शिकार से सोहन का इसके अनेक मूल-स्थलों से लोप हो रहा है। ये शेख श्यैनिकी के पीछे पागल रहते हैं। 1967-68 की शीत ऋतु के चार सप्ताह के शिकार में मात्र एक उद्यमी शेख ने, पाकिस्तान में, 915 पक्षी मारे। ऐसा विध्वंस प्रतिवर्ष बढ़ रहा है।

1. सोहन श्यैनिक (falcons)

21
पुस्तकें जो मैने लिखीं

पक्षियों की क्षेत्र-टिप्पणियों में बहुत-सी जानकारी होती है—उनका (पक्षियों का) पाया जाना, घनत्व, वितरण, आदतें, व्यवहार, साहचर्य, उनकी पारिस्थतिकी के अन्य पहलू तथा जीवन-इतिहास आदि आदि। जब इन सब जानकारियों का एक लंबी अवधि तक अभिलेखन किया जा चुका हो, जैसा कि मेरे साथ हुआ है, तब यह सब निरर्थक हो जाती हैं, अधिक सही कहें तो उनका उपयोग बहुत कठिन हो जाता है। यदि उन्हें उपयोगी बनाए रखना है, कूड़ा-करकट नहीं बनने देना है, तब सुव्यवस्थित विधि से उनकी देखभाल करना तथा उन्हें सूचीबद्ध करना और निरपवाद अद्यतन रखना अत्यावश्यक हो जाता है। लघु कैसेट रिकार्डरों तथा इस तरह की उन युक्तियों के आने के पहले तथा उनके फैशन बनने के पूर्व, जैसा कि मेरा अधिकांश पंछी निहारन जीवन रहा है, क्षेत्र में कार्यरत रहते हुए विवरणात्मक नोट्स लिखना, तुलनात्मक रूप से, विलंबित तथा थकाने वाला रहा है। मैं अपनी जेब में लघु पुस्तिका तथा पैंसिल रखता था और रुचिकर जानकारी तुरंत ही उसमें लिख लेता था। देखें—पंछियों की सूची के साथ-साथ मैं उनका 'आंखों देखा हाल' लिखता रहता था—कोई भी रुचिकर लाक्षणिकता या बिरला अवलोकन, उनका सामान्य व्यवहार, बोल, गान, आहार, नीड़न, सामाजिक तथा अंतर्जातीय गतिविधियां, या इस तरह का कुछ भी मैं अपने ही 'शार्टहैंड', जिसमें मेरे अपने ही बीजाक्षर हुआ करते थे, में लिखा करता था। शिविर में लौटने पर यथाशीघ्र, इसके पहले ही बारीकियां भूल जाऊं, मैं शब्दाकुंचित (शब्दों को अक्षरों के लोप द्वारा छोटा किया हुआ रूप) टिप्पणियों को, उनमें प्रयुक्त कूटों को खोल लेता था, उनका उपयुक्त विस्तार करता था—और यह सब लिखने के लिए मैं विशेष मुक्त-पत्र-लिपिका[1] में, प्रत्येक जाति को उसके 'खाते' में (व्यावसायिक पद्धति के अनुरूप) लिखता था। प्रत्येक प्रविष्टि में, चाहे वह एक ही अवलोकन की क्यों न हो, दिनांक, स्थल, तुंगता (ऊंचाई)

1. मुक्त-पत्र-लिपिका (loose-leaf ledger)

आदि लिखी जाती थी। इस तरह से कुछ अवधि के बाद, उस मुक्त-पत्र-लिपिका का संबद्ध पृष्ठ खोलने पर, उस जाति पर मैंने जो भी अवलोकन किए हैं वे सबके सब सामने खुल जाते हैं। इस तरह रिपोर्ट अथवा पुस्तक लिखते समय, रचना का कार्य बहुत सरल तथा शीघ्र हो जाता है।

बी.एन.एच.एस. से 'सुलभ पक्षियों' पर एक लोकप्रिय पुस्तक लिखने पर लंबी चर्चा के बाद, सितंबर 1935 में उन्होंने यह कार्य मुझे औपचारिक रूप से सौंपा। इसमें देहात में सुलभ कोई 180 जातियों का गैर-तकनीकी भाषा में लगभग (प्रत्येक के लिए) 350 शब्दों में सघन वर्णन के साथ रंगीन चित्रों का रहना आवश्यक समझा गया था। लोकप्रियता की दृष्टि से भारत के अंग्रेजी माध्यम वाली माध्यमिक शालाओं में जो सोसायटी के पोस्टर लोकप्रिय हुए थे, उनमें से पक्षियों का चुनाव किया गया तथा एक 'प्लेट' पर एक ही पक्षी रखना ठीक समझा गया। वर्णन में क्षेत्र-पहचान, वितरण, आदतें, आहार, बोल तथा नीड़न आदि विषय तथा कुछ अध्यायों में प्रवासन, उड़ान, पंछी निहारन, पक्षियों की मनुष्य के लिए उपयोगिता आदि रखना थे। प्रचलित पुस्तकों में एक प्लेट में चार पक्षियों का रखना 1955 में, आर्थिक कारणों से किया गया था क्योंकि उसी समय पोस्टर के चतुष्वर्णी घिसे हुए 'ब्लाकों' के स्थान पर, नई 'प्लेटें' बननी थीं, तथा नई जातियों को भी जोड़ना था। मेरे मित्र तथा साथी एस.एस. प्रेटर (तत्कालीन सोसायटी के क्यूरेटर) ने मुझे यह सब काफी पहले अनौपचारिक रूप से सूचित कर दिया था। एतदर्थ मैंने 1930 की बेरोजगारी की अवधि में किहिम में पाठों का कच्चा प्रारूप बना लिया था।

किहिम में पाठों की तैयारी की बात से मुझे एक असाधारण अनुभव याद आ गया जिसे मैं बिना सुनाए रह नहीं सकता। किहिम की समुद्रतटीय कुटी में भूमितल पर एक छोटा-सा सर्वोद्देशीय कमरा था जिसके तीन तरफ काफी चौड़ा खुला वरांडा था, जिसमें हम लोगों का सारा दिन निकलता था। उसी में मेरी डैस्क थी जिसमें नोट, कागज तथा विभिन्न अध्यायों के कच्चे प्रारूप थे। मेरा और तैहमीना का शयनकक्ष छोटी-सी अटारी में था। एक सुबह नीचे आकर मैंने देखा कि सारे कागज क्षत-विक्षत बिखरे पड़े थे, अनेक फट गए थे और कुछ दूर बाग में भी पड़े थे। मेरी त्रस्तता भी देखने लायक थी। यह एक अबूझ पहेली थी। अगले दो-तीन दिन कुछ नहीं हुआ, मगर उस भूत ने फिर आक्रमण किया, और कागज नष्ट किए तथा पहेली और रहस्यमय हो गई। दूसरी रात यह दुष्कृत्य दुहराया गया, तब मैंने समझा कि यह मनुष्य या जंतु जो भी है उसे इस अजीब क्रूरता का व्यसन लग रहा है, और तय किया कि अब मुझे कुछ न कुछ करना होगा। अतएव मैंने डैस्क के चारों तरफ राख फैला दी ताकि उस दुष्ट के पदचिह्न तो देखने को मिलें। और वह दुष्ट एक कुत्ता निकला, लेकिन एक कुत्ते को मेरे नोट्स में इतनी गहरी रुचि क्यों है कि वह उन्हें बार-बार बिना किसी लाभ के चबा जाता है, बिखरा देता

है, ले जाता है, यह अभी भी समझ में नहीं आया था। यह पता करने का कि अगला आक्रमण किस रात को तथा किस उनींदी घड़ी में होगा, कोई तरीका नहीं था। मुझे एक रणनीति सोचनी पड़ी। कुटी से थोड़ी दूर, एक झोपड़ी में हमारा बूढ़ा तथा बहरा माली सोता था। मैंने उसके पैर के अंगूठे में एक धागा बांधा जिसका दूसरा छोर मेरे सिर पर टंगी घंटी से बंधा था और पास ही 20 बोर की शॉटगन रखी थी। जब वह दुष्ट अपनी क्रूरता का आनंद लूट रहा हो, तभी उसे बेखबर रखते हुए, मुझे खबर लग जाए, इस हेतु प्रायोजित संचार माध्यम में विशेष कूट का संयोजन किया गया। दो या तीन दिन बाद रात के तीन बजे घंटी बजी। मैं बिस्तर से फटाफट निकला, बंदूक संभाली और चरचर करने वाली सीढ़ी से चोरों की तरह उतरा। किंतु मेरी आहट पाते ही वह सड़क छाप बदमाश डैस्क से कूदा तथा शरम करते हुए, पूंछ टांगों में दबाए, अपराधी की तरह, आत्मप्रताड़ना करते हुए तथा तिरछी नजरों से चोरी से पीछे देखते हुए खिसकने लगा। यह निश्चित करने के लिए कि वह दुराचारी भविष्य में आपराधिक कुकृत्य न करे, बिना किसी दुख के, मैंने उसे बंदूक से मार दिया। किंतु मुझे उसके असाधारण पथभ्रष्ट आचरण पर आज तक अचरज होता है : उस अभागे नीच को बार-बार मेरी डैस्क पर आक्रमण कर, मेरे अपचनीय कागजों का विध्वंस करने में क्या आनंद आता था?

तैहमीना के ऊपर प्रारूपों को आजमाया गया। उन्होंने भाषा के सरलीकरण में अधिकतम सहायता की। उन्हें बोलचाल की गद्यभाषा (अंग्रेजी) की शैली की उल्लेखनीय समझ थी, उन्होंने शब्दाडंबर निकालकर भाषा को अधिक रोचक बनाया। 'भारतीय पक्षियों की पुस्तक'[1] तथा बाद की पुस्तकों के पठनीयता गुण की प्रशंसा अनेक समीक्षकों तथा पाठकों ने, विशेषरूप से की जिससे मुझे आत्मिक परितोष हुआ।

डब्ल्यू.एच. हड्सन तथा ई.एच. एटकैन (ई.एच.ए. के नाम से ख्यात) मेरे अतिप्रिय एवं सम्मानित प्रकृति वैज्ञानिक लेखक हैं। रेत-सी सूखी, नीरस तथ्यात्मक जानकारी को किस तरह, थोड़ा-सा अतिरिक्त ध्यान देकर सान पर चढ़ाकर धारदार तथा चमकदार बनाया जा सकता है, उनके लेखन इस शैली के प्रतिदर्श हैं, और ई.एच.ए. अपने लेखन को सरल, तथा प्रयासहीन रखने वाले निबंध बनाने के लिए यह अतिरिक्त ध्यान देने के लिए विख्यात थे। मैं पठनीयता को बहुत महत्व देता हूं, तथा इसे प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त समय तथा श्रम को मैं अत्यंत उपयोगी मानता हूं।

'क्षेत्र गाइड' रूप में (जो आज अत्यधिक लोकप्रिय है) भारतीय पक्षियों पर रंगीन सचित्र पुस्तकों में यह पुस्तक अग्रदूत थी, तथा देश में पक्षियों तथा पंछी

1. 'भारतीय पक्षियों की पुस्तक' (The Book of Indian BirDs$)

निहारन में रुचि पैदा करने और उसे बढ़ाने में यह प्रमुख रूप से उत्तरदायी मानी जाती है। अतएव इस पुस्तक में प्रकाशित आंकड़ों में पाठक को कुछ रुचि हो सकती है। इसका पहला संस्करण (3,000 प्रतियां) अगस्त 1941 में प्रकाशित हुआ, यह बंबई के टाइम्स ऑफ इंडिया प्रैस में पूरे आयातित कागज पर छपा था और इसका मूल्य चौदह रुपए था। इस पुस्तक में ग्रामीण क्षेत्र की 181 सुलभ जातियों का वर्णन तथा चित्र थे। प्रत्येक संस्करण के साथ पक्षियों (जातियों) की संख्या बढ़ती गई तथा दुर्भाग्य से कीमत भी। जुलाई 1980 में प्रकाशित अद्यतन संस्करण (ग्यारहवां) में 10,000 प्रतियां छपीं जिसमें 280 जातियां थीं तथा कीमत 60 रुपये थी। इसके ग्यारह संस्करणों में प्रकाशित कुल पुस्तकों की संख्या 46,000 है (प्रत्येक संस्करण का औसत 4,500 प्रतियां)।

उस समय जापान से युद्ध चल रहा था, ब्रिटिश एवं मित्र सैनिक भारी संख्या में बंबई से दक्षिण-पूर्व एशिया को आ-जा रहे थे, अतएव पुस्तक का सौभाग्य था कि इसका प्रारंभ ही पवनवेग से हुआ। इन सैनिकों में अनेक उत्साही पंछिनिहारक थे जिन्हें भूमध्यरैखिकीय जातियों के विषय में जानकारी की आवश्यकता थी, जो इस पुस्तक में उन्हें मिली। इस पुस्तक के प्रारंभ के अतिविशिष्ट पाठकों में जवाहरलाल नेहरू भी थे, जो स्वयं उत्साही प्रकृति प्रेमी थे। जब वे 1942 में देहरादून जेल में थे तब उन्होंने अपनी बेटी इंदिरा को भेजने हेतु मुझसे एक प्रति पर 'आटोग्राफ' करवाए थे। इंदिरा स्वयं उस समय नैनी जेल में थीं। श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह की बच्चों के लिए लिखी पुस्तक 'हमारे पक्षी' के प्राक्कथन में (प्रकाशन 1959) उन परिस्थितियों का स्मरण करते हुए इंदिरा गांधी ने लिखा, 'अधिकांश भारतीयों के समान मैंने भी पक्षियों पर अलग से ध्यान नहीं दिया था, जब मेरे पिता ने श्री सालिम अली की आनंदप्रद पुस्तक देहरादून जेल से मेरे लिए भेजी तब उसने एक नवीन विश्व के लिए मेरी आंखें खोल दीं और मुझे समझ में आया कि मैं कितने आनंद से वंचित थी।' बाद में भारत की प्रधानमंत्री तथा बी.एन.एच.एस. की संरक्षक श्रीमती गांधी ने सोसायटी की शती (15 सितंबर, 83) के उद्घाटन भाषण में पुनः उस घटना को उद्धृत करते हुए कहा, "मैंने हमेशा ही जीव-जंतुओं को प्यार किया है, किंतु पक्षियों के विषय में मुझे अधिक जानकारी नहीं थी। जब नैनी जेल में मुझे बंद कर दिया गया तब मैंने पहली बार उनके गाने पर ध्यान दिया। मैंने उन गानों को 'नोट' किया तथा छूटने के बाद डॉ. सालिम अली की पुस्तक की मदद से उनको पहचाना।"

मौलाना अबुल कलाम आजाद जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे तब 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' तथा गांधीजी के 'करो या मरो' आह्वान पर उन्हें आंदोलनकारी के रूप में अहमदनगर जेल में डाला गया था। वहां उन्होंने अपने पड़ोसी कैदी जवाहरलाल से यह पुस्तक उधार मांगकर पढ़ी थी। वे गौरैया के एक

जोड़े द्वारा उनके बिस्तर के ऊपर एक छेद में घोंसला बनाने के दुर्दमनीय प्रयास को समझना चाहते थे, एतदर्थ उन्होंने वह पुस्तक देखी थी।

टेवॉय की व्यावसायिक 'जे.ए.अली ब्रदर्स एंड कं.' के कारोबार का जब अंतिम हिसाब-किताब हुआ और दोनों सहभागियों में देनदारी बांटी गई थी, तब प्रारंभिक लागत तथा ऋण एवं उनके ब्याज जो मेरे हिस्से में आए थे उन्होंने मुझे चकरा दिया था। बंबई लौटने के अनेक वर्षों बाद तक बिना आय तथा जो भी संपत्ति मुझे उस कारोबार से मिली थी, उसके धीमी गति से ऋणमुक्त होने के कारण ब्याज खतरनाक गति से चढ़ रहा था। एक समय तो ऐसा लगा कि जिस संभव दर से मैं ऋण चुका रहा था, मेरी देनदारी कभी समाप्त नहीं होगी। यद्यपि मेरे कुछ देनदारों ने कृपापूर्वक ब्याज माफ कर दिया था तथा कुछ ने तो मूलधन भी कम कर दिया था, तब भी मेरी देनदारी रॉकेट की तरह ऊपर चढ़ रही थी। फलस्वरूप मेरी देनदारी का बोझ जब तब मेरी नींद खराब करता रहता था और मैं हताश होकर सोचने लगा था कि यह कर्ज का बोझ मेरे गले से कभी नहीं उतरेगा। ऐसे समय में 'भारतीय पक्षियों की पुस्तक' जैसे भगवान ने भेज दी थी। इसके पहले चार या पांच संस्करणों की रॉयल्टी के द्वारा मैंने जब सारी देनदारी चुका दी, तब मेरे मन को अनंत राहत मिली।

'भारतीय पक्षी' तथा 'कच्छ के पक्षी' (1945) की सफलताओं के बाद, मेरे ग्रीष्म अवकाशी मित्रों ने सलाह दी कि मैं हिमालय के लोकप्रिय पहाड़ी स्थलों तथा नीलगिरि एवं अन्य प्रायःद्वीपीय पहाड़ी स्थलों पर ऐसी ही रंगीन सचित्र गाइड पुस्तक लिखूं। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की भारतीय शाखा के महाप्रबंधक आर.ई. हॉकिन्स मुझसे 'कच्छ के पक्षी' प्रकाशित करने के बाद से परिचित थे। जी.एम. हैनरी, जो श्रीलंका के प्रसिद्ध पंछी चित्रकार हैं, ने रायल्टी में हिस्सेदारी के आधार पर चित्र बनाना स्वीकार कर लिया। अतएव आ.यू. प्रेस द्वारा उत्साह मिलने पर 'इंडियन हिल बर्ड्स'[1] तैयार की जिसकी 10,000 प्रतियां 1949 में ब्रिटेन में फोटो-ऑफसेट-प्रक्रिया द्वारा छपीं। हैनरी के रंगीन चित्र अति उत्तम थे। कुल मिलाकर भारतीय तथा विदेशी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रशंसात्मक समीक्षाएं निकलीं तथा भारतीय पाठकों ने इसे हृदय से सराहा। इसके बावजूद, प्रकाशक बिक्री की दर से निराश रहे। पहले संस्करण के बिकने में पचीस वर्ष लगे। इसके बाद पुस्तक पांच वर्षों तक अप्राप्य रही। किंतु इस बीच देश में पंछी निहारन में रुचि का संवर्धन हुआ, तथा विदेशी पर्यटकों के पक्षिवैज्ञानिकी एवं वन्य जीवन पर्यटन का प्रस्फुटन हुआ। परिणामस्वरूप पक्षियों पर पुस्तकों की मांग बढ़ी तथा आ.यू. प्रेस ने 1979 में 'भारतीय पहाड़ी पंछी' के मूल रूप में पुनर्मुद्रण हेतु प्रेरित होकर, दूसरा, तीसरा तथा चौथा संस्करण प्रकाशित

1. 'इंडियन हिल बर्ड्स 'Indian Hill Birds'

हुआ। सारे विश्व में व्याप्त मुद्रा स्फीति तथा चढ़ती कीमतों का प्रमाण, पुस्तक की बढ़ती कीमत से मिल जाता है। 1949 में मूल संस्करण की कीमत 20 रु. थी, जो 1984 के पुनर्मुद्रण में 140 रु. हो गई। परंतु अब भी मूल फिल्म से 'प्लेट' का नौ रंगों में मुद्रण होता है।

सन् 1950 के दशक में सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर त्रावणकोर रियासत के दीवान थे। वे संस्कृत के प्रकांड पंडित तथा मद्रास के सुप्रसिद्ध वकील भी थे। दीवान के पद के फलस्वरूप वे त्रिवेंद्रम (अब 'तिरुवनंतपुरम') विश्वविद्यालय के कुलपति भी थे। बी.एन.एच.एस. के 1935 से 1937 के जर्नलों में श्रृंखलावार प्रकाशित 'त्रावणकोर तथा कोचीन की पक्षिवैज्ञानिकी' रिपोर्टों से वे प्रभावित हुए थे। उन्होंने निश्चय किया कि प्राणिवैज्ञानिकी के विद्यार्थियों, वन-कर्मचारियों, पर्यटकों आदि के लाभार्थ उन रिपोर्टों को लोकप्रिय रंगीन चित्रों सहित पुस्तकाकार में प्रकाशित किया जाए। एतदर्थ उन्होंने आ.यू. प्रेस को अनुदान दिया। प्रखर एवं योग्य पंछिनिहारक तथा प्रसिद्ध पक्षिचित्रकार डी.वी. कोवैन (श्रीमती वी. गार्डनर लुइस) को चित्र बनाने का कार्य सौंपा गया था। कोवैन 'द बुक ऑफ इंडियन बर्ड्स' पुस्तक के चित्रकार के रूप में प्रसिद्धि पा चुकी थी। पहले संस्करण की एक हजार प्रतियों में से (प्रकाशित मूल्य 35 रुपये) 500 प्रतियां त्रावणकोर विश्वविद्यालय ने वितरण हेतु ले लीं। शेष 500 प्रतियां मांग की पूर्ति नहीं कर पाईं, यद्यपि शेष मांग इतनी नहीं थी कि एक व्यावसायिक संस्करण प्रकाशित किया जा सके। इस तरह 1969 तक यह पुस्तक अप्राप्य रही। उस समय भाषाओं के आधार पर हुए भारतीय राज्यों के पुनर्गठन में त्रावणकोर कोचीन में पड़ोस का मलयालम जिला मलाबार सम्मिलित हो गया तथा इस तरह नया प्रदेश 'केरल' बना। इस बीच इस पुस्तक के दूसरे संस्करण की मांग भी बढ़ गई थी। पुनः विश्वविद्यालय की आर्थिक सहायता से संवर्धित मलाबार क्षेत्र को सम्मिलित करते हुए एक संवर्धित संस्करण 'केरल के पक्षी' (Birds of Kerala) नाम से प्रकाशित हुआ, किंतु पुस्तक की कीमत वही पुरानी रखी गई थी। अतएव पैसों के लिए वह पुस्तक उत्तम मूल्य की थी, और पूर्वगामी संस्करण की तरह शीघ्र बिक गई। कुछ वर्षों शांत रहने के बाद इस पुस्तक का तीसरा संस्करण केरल वन विभाग की सहायता से, आ.यू. प्रेस ने, पैरियर अभयारण्य की स्वर्ण जयंती (मार्च 1985) की स्मृति में प्रकाशित किया।

उष्णकटिबंधीय वर्षा-वनों से मेरा पहला किंतु साधारण-सा, संपर्क टेवॉय-दिनों में टेनासैरिम में हुआ था। तब से मैं ऐसे अवसर के लिए आकुल था जिसमें ऐसे वनों को मैं निकटता से देख सकूं, इन सदाबहार वनों के पक्षियों तथा प्राकृतिक इतिहास की गहराई से गवेषणा कर सकूं। त्रावणकोर पक्षिसर्वेक्षण ने उस महत्वाकांक्षा को आंशिकरूप से संतुष्ट किया, तथा वास्तव में सभी पक्षिसर्वेक्षणों में, संभवतया सर्वाधिक आनंद देने वाला तथा प्रतिफल देने वाला सर्वेक्षण सिद्ध हुआ। उसकी

वैज्ञानिक रिपोर्ट लिखने में मुझे विशेष आनंद मिला क्योंकि उस सारी रिपोर्ट में मैंने, पारंपरिक पद्धति को त्यागकर, 'पारिस्थितिकी' पर बल दिया था। पारंपरिकता की लीक से हटी इस रिपोर्ट की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। साथ ही मैं इसे पक्षियों का अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों एवं पक्षिप्रेमी जनता के विस्तृत जगत को अधिक सुलभ पुस्तक के रूप में दे सका। यह सच है कि अनेक दृष्टियों से, 'केरल के पक्षी' ने मेरे अंतर्मन को अन्य पुस्तकों की तुलना में सर्वाधिक संतोष दिया, 'द बुक ऑफ इंडियन बर्ड्स' से कम नहीं।

लोके वान थो की सहायता से मैंने 1950 के दशक में सिक्किम में अनेक पक्षिसंग्रहण तथा क्षेत्र-अध्ययन अभियान किए। चोग्यल सरकार की आर्थिक सहायता से, आ.यू. प्रेस ने ('The Birds of Sikkim') 'सिक्किम के पंछी' का 1962 में प्रकाशन किया। इसमें विश्व प्रसिद्ध कलाकारों पोल बरुए[1] (फ्रांस), डेविड राइड हैनरी, (यू. के.), तथा रॉबर्ट श्कोल्ज़ (जर्मनी) के रंगीन चित्र थे और कीमत थी मात्र 30 रुपये। इसकी 2,000 प्रतियों में से 1,000 सिक्किम सरकार ने अतिथियों में वितरण करने के लिए लीं, शेष एक वर्ष के भीतर बिक गईं। तत्पश्चात यह पुस्तक अप्राप्य रही। इसके पुनर्मुद्रण पर विचार हो रहा था कि चोग्यल सरकार भारत संघ में आ गई, और बात आई गई हो गई। इस पुस्तक ने प्रकाश में आने के लिए अधिक समय लिया था, अतएव उसके अग्रिम प्रचार हेतु आ.यू. प्रेस ने 'सिक्किम के पंछियों की चित्र पुस्तिका' (Picture Book of Sikkim Birds) नाम से पूरे के पूरे सत्रह रंगीन चित्रों सहित किंतु पंछियों पर संक्षिप्त लेखकों के साथ पतली-सी पुस्तिका प्रकाशित की थी जिसकी कीमत थी मात्र पांच रुपये। यह पुस्तिका सिक्किम के विद्यार्थियों तथा पंछिनिहारक पर्यटकों में प्रिय हुई।

मेरे तथा डिल्लन रिप्ली द्वारा संयुक्त रूप से लिखी पुस्तिका 'भारत तथा पाकिस्तान के पक्षियों की पुस्तिका' (A Handbook of the Birds of India and Pakistan) की उत्पत्ति एवं इतिहास का रेखाचित्र, अन्यत्र दिया गया है। प्रकाशक तथा प्रकाशनों की रणनीतियों पर आह्लादक हल्का प्रकाश, जैसा मुझे उस पुस्तक के संभावी प्रकाश की खोज करते समय अनुभव हुआ था, रुचिकर होगा। मैंने वह पुस्तक, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस को दी क्योंकि उन्होंने मेरी अधिकांश पुस्तकें प्रकाशित की थीं। वे स्पष्टतया पुस्तक को प्रकाशित करना चाहते थे। एक सौ रंगीन चित्रों से सुसज्जित दस खंडों वाली ग्रंथिकाएं असाधारण भारी संपादकीय कार्य तथा आर्थिक लागत की मांग करती थीं तथा सामान्य से अधिक व्यावसायिक खतरा प्रस्तुत कर रही थीं। इसलिए प्रकाशन निर्णय लेने में उन्हें हिचक हो रही थी। चूंकि भारत से पाकिस्तान के निर्यात पर प्रतिबंध था, अतएव पुस्तक की सारी

1. पोल बरुए Paul Barruel

बिक्री भारत में ही होनी थी, तथा भारत में इतने पक्षी प्रेमी नहीं थे कि पुस्तक का सारा खर्च निकल सके। ऐसी भी संभावना थी कि पुस्तक के नाम के अनुरूप इसकी अंतर्राष्ट्रीय मांग बहुत कम हो, अतः उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता था। इन सारी अनिश्चितताओं के बीच, ब्रिटेन के प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थान के प्रमुख श्री विलियम कौलिन्स का फोन आया, जो उसी सुबह ब्रिटेन से आए थे। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं उनसे ताजमहल होटल में आकर मिल सकता हूं। उनके गुप्तचरों ने पता लगाया था कि मैं कोई ऐसी पुस्तक पर कार्य कर रहा हूं तथा वे जानना चाहते थे क्या यह सच है, और क्या मुझे एतदर्थ कोई प्रकाशक मिल गया है। मैंने उन्हें बतलाया कि मेरे प्रमुख प्रकाशक ओ.यू.पी. इसमें रुचि रखते हैं किंतु भारी तथा संशयात्मक लाभ वाली लागत के कारण डगमगा रहे हैं। कौलिन्स ने कहा, 'मैं यह बताना चाहता हूं कि यदि ओ.यू.पी. उसे प्रकाशित न करना चाहे तब हम उस पुस्तक का प्रकाशन करने में निश्चित रूप से रुचि रखते हैं। यह समाचार ओ.यू.पी. तक पहुंचाया गया। उन्होंने अनुकरणीय तत्परता बरती तथा अनुबंध तुरंत हो गया। श्री हॉकिन्स ने यह साहसी कार्य किया था, किंतु मुझे खुशी है कि प्रकाशकों को अपने निर्णय पर पश्चाताप करने का कोई कारण नहीं मिला। वास्तव में व्यावसायिक दृष्टि से तथा प्रकाशनिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से यह बहुत लाभकारी निकला। प्रत्येक खंड का दूसरा संस्करण शनैः-शनैः प्रकाशित हो रहा है। दसों खंडों को एक में समाहित करने वाला कल्पनाशील चिंतन द्वारा सुगठित संस्करण 1983 में प्रकाशित हुआ। मैं यह कैसे भूल सकता हूं कि श्री कौलिन्स के अति समायानुकूल फोन से ही डगमगाता काम बना।

सितंबर 1976 में पुस्तिका के प्रकाशन के कुछ वर्षों बाद, नवनीत हिंदी डाइजेस्ट, बंबई के संपादक श्री नारायण दत्त मेरा जीवनी संबंधी लेख तैयार कर रहे थे। उन्होंने मुझे एक प्रश्नावली भेजी। उनका एक प्रश्न था, 'इस ग्रंथ लेखन में आपने प्रतिदिन कितने घंटे कार्य किया ? क्या आपने यह स्वयं हाथ से लिखा अथवा 'किसी से लिखवाया ?' चूंकि बहुत से जिज्ञासुओं ने यह समय-समय पर पूछा है, मेरा श्रीदत्त के लिए उत्तर उन सभी के लिए भी है। मैंने उत्तर दिया,

> 'मैंने साधारतया प्रतिदिन 10-12 घंटे (कभी कभी 14-15) कार्य किया जिसमें भोजन आदि के संक्षिप्त अवकाश रहते थे। पुस्तकालय संबंधी तथा संग्रहालय-अनुसंधान संबंधी कार्य तो मैंने 1953 में शुरू कर दिए थे, उन कार्यों को पूरा करने के बाद ग्रंथिकाओं के लिखने में मुझे दस वर्ष लगे।...सारे पहले प्रारूप मैंने अपने हाथ से लिखे (कोई डिक्टेशन नहीं), उनकी कांट-छांट करने, शब्दों तथा गद्यांशों को बदलने में तथा वाक्यों को यथासंभव संघनित करने तथा उद्देश्य बनाए रखने में बहुत समय लगाया। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि पाठक को तथ्यात्मक

> वैज्ञानिक जानकारी देने के साथ, विवरण को आनंदप्रद बनाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।...उस क्षत-विक्षत प्रारूप को मैंने दो पंक्तियों के बीच तिगुने स्थान को छोड़कर टंकित करवाया, तथा उसका सूक्ष्म परीक्षण किया। पुनरीक्षित और परिष्कृत करके, अक्सर उसे दुबारा टंकण करवाने के बाद पुनः संतोषजनक स्थिति में लाकर मुद्रण योग्य करवाता था। इस तरह यह लंबी तथा समय लेने लंबी प्रक्रिया थी–किंतु मैंने यह देखा है कि परितोष देती है।'

फ्रैंक लुडलो और जार्ज शेरिफ ने 1933 और 1934 में भूटान में प्राकृतिक-इतिहास संबद्ध गवेषणा की थी। सिक्किम में पक्षिसर्वेक्षण करने के बाद मुझे लगा कि भूटान के लिए भी 1933 में किए गए सर्वेक्षण से अधिक गहरे सर्वेक्षण की आवश्यकता है। उस समय कारों के योग्य सड़कें नहीं थीं, तीव्रगामी जलधाराओं पर पुल नहीं थे तथा भयंकर गहरे संकरे दर्रे और जमीन बीहड़ तथा ऊबड़खाबड़ थी, परिणामस्वरूप सारा परिवहन टट्टुओं तथा कुलियों तक सीमित था। इस सबने उनके अभियान को सच्ची साहसिकता की छवि दे दी थी, जो वास्तविकता भी थी। इन सबका मनोहारी वर्णन 1937 की 'आइबिस'[1] पत्रिका में उपलब्ध है। 1960 के लगभग मुझे भूटान के राजा 'हिज़ मैजेस्टी द्रुक ग्यालपो जिग्मे दोर्जी वांगचुक' ने भूटान के पंछियों के अध्ययन हेतु आमंत्रित किया। वे स्वयं विवेकी शिकारी-प्रकृति प्रेमी थे तथा वन्य जीवन संरक्षण के लिए व्यग्र थे। वे स्वयं 'सिक्किम के पंछी' जैसी पुस्तक भूटान के लिए चाहते थे। मैं इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान हेतु तैयार हो गया। उन्होंने परिवहन, शिविर तथा रसद के सारे साधन सीमा सड़क संगठन द्वारा उपलब्ध कराए थे। भारत सरकार का यह अर्ध सैन्य इंजीनियरी बल, उस समय भूटान में उसके उत्तरी अंतर्राष्ट्रीय सीमा तक तथा उस धमनी-सम सड़कों के निर्माण में भूटान की मदद कर रहा था। उन कठोर, ऊबड़-खाबड़, असंभव से खड़े ढाल वाले पर्वतों पर इस संगठन ने सफलतापूर्वक तीखे चिमटा-मोड़ों, उन खड़ी ढालों वाली चट्टानों की कगार पर, जिसके एक पार्श्व में सैकड़ों मीटर खड़े गह्वर भय पैदा करते हैं, मानो डगमगाती सड़कों के निर्माण की अनोखी तथा प्रशंसनीय उपलब्धि प्राप्त की थी। इस सड़क के निर्माण काल में उन खड़ी चट्टानों के पार्श्व स्थित जलधारा युक्त भयानकतम गह्वरों में बहुत-से वाहन समा गए थे किंतु उन सैनिकों तथा श्रमिकों को भयाक्रांत नहीं कर पाए थे। इन सड़कों ने मुझे एक इसी तरह की पहाड़ी सड़क के किनारे लगी सूचना का स्मरण करा दिया था : 'प्रवेश वर्जित। सड़क खतरनाक है। जीवित बचे यात्रियों पर मुकदमा चलाया जाएगा।' उधर भूटान में भी मुकदमों से बचने के लिए हमने इस नियम का पालन किया था!

---

1. आइबिस' (The Ibis)

ये सड़कें इंजीनियरी कौशल तथा मार्ग-रेखा-निर्धारण के उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। बहुधा इन्हें ठोस ऊर्ध्वाधर चट्टानों में सुरंग लगाकर बनाया गया है, तथापि इनकी ढलान कभी भी इतनी अधिक नहीं रही कि भारी लदे-फदे ट्रक और मिलिटरी विशाल वाहन उन पर 'अपार' कठिनाई का अनुभव करें। 1962 में सैनिक जब आक्रमण कर, सीमांत की बॉमडिला वाली एकमात्र 'पहुंच' पर अधिकार कर नेफा (अब अरुणाचल प्रदेश) पर छा गए थे, तब कोई और रास्ता नहीं बचा था, जिससे जाकर उनके आक्रमण को रोका जा सके; उस समय मित्र देश भूटान से होती हुई तिब्बती सीमा तक अपनी सुरक्षा के लिए सड़कों के अभाव का अनुभव हुआ था।

चार से आठ सप्ताहों की अवधि वाले, भूटान के पूर्वी, केंद्रीय तथा पश्चिमी क्षेत्रों की पूर्ण रूप से छानबीन करने वाले छह अलग अलग अभियानों का संचालन 1966 से 1973 के बीच किया गया। इनमें से कुछ डा. तथा श्रीमती रिप्ली के साथ, तथा कुछ भारतीय प्राणिवैज्ञानिक सर्वेक्षण के विख्यात पक्षिवैज्ञानिक डॉ. विश्वमय विश्वास के साथ संयुक्त रूप से किए गए थे। जैसी कि अपेक्षा थी भूटान के पक्षिजीवन पर एक विस्तृत पुस्तक के होते हुए भूटान पर एक अलग पुस्तक का निर्माण अनावश्यक लगा। अतएव मैंने भूटान के राजा को सुझाव दिया कि प्रस्तावित पुस्तक की रूपरेखा को इस तरह बदला जाए कि वह बजाय भूटान के समस्त पूर्वी हिमालय क्षेत्र की 'क्षेत्र-गाइड' बन जाए। पूर्वी हिमालय नेपाल के पूर्वी केंद्र से प्रारंभ होकर पूर्वतम अरुणाचल प्रदेश तक का क्षेत्र माना जाएगा तथा यह क्षेत्र एक विशिष्ट जैव-प्राकृतिक क्षेत्र बनकर एक विस्तृत दृश्य बनाता है। अपनी लाक्षणिक विवेक संगति से राजा तत्परता से सहमत हो गए। द्रुक ग्याल्पो ने चित्रकारी के अधिकांश खर्च का वहन किया, तथा 'फील्ड गाइड टु द बर्ड्स ऑफ द ईस्टर्न हिमालयाज़'[1] की 500 प्रतियां खरीदने का वचन भी दिया था जिससे कि ओ.यू.पी. एक तरह से प्रकाशन की व्यावसायिकता की तरफ से आश्वस्त हो जाएगा; द्रुक ग्यालपो की मृत्यु के पश्चात, अनुवर्ती सरकार ने इस क्रय से अशोभनीय नाहीं कर दी क्योंकि पुस्तक के नाम में भूटान का नाम अलग से नहीं था। इस अप्रत्याशित प्रतिकूलता के बावजूद, इस क्षेत्र-गाइड के प्रकाशन (1977) का समीक्षकों तथा पाठकों ने समान रूप से जो स्वागत किया वह परितोषनीय था। 1983 तक, इस पुस्तक की कीमत 130 रुपये तक चढ़ जाने के बावजूद, इस पुस्तक के तीन पुनर्मुद्रण हो चुके हैं तथा यह अभी भी खूब चल रही है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू की पहल पर भारत सरकार ने 1957 में नेशनल बुक ट्रस्ट की स्थापना की थी। यह संस्था 'स्वायत्त' है तथा इसका उद्देश्य एक आंदोलन खड़ा करना है जिससे जनता पुस्तकों के प्रति आकर्षित हो। यह ट्रस्ट हिंदी, अंग्रेजी तथा अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में अच्छी कोटि के साहित्य का

1. Field Guide to the Brirds of the Eastern Himalayas–पूर्वी हिमालय के पक्षियों की क्षेत्र गाइड

प्रकाशन कर, उसे जनता को सस्ती कीमतों पर उपलब्ध कराता है। इसके द्वारा प्रकाशित एक शृंखला का नाम है 'भारत–देश और लोग'[1], इस शृंखला की पुस्तकें उनके विषय के मान्य अधिकृत विद्वानों द्वारा लिखवाई जाती हैं, इनकी भाषा गैरतकनीकी रखी जाती है ताकि वे सामान्य पाठक तक पहुंचकर उसे जानकारी दे सकें। इन पुस्तकों का मुद्रण उत्तम तथा प्रस्तुति सुंदर होती है और कीमत इतनी कम कि सामान्यजन उसे सरलतापूर्वक खरीद सकें। 1965 के आसपास ट्रस्ट के अध्यक्ष डा. बी.वी. केसकर ने मुझसे अनुरोध किया कि अपनी सफल पुस्तक 'बुक ऑफ इंडियन बर्ड्स' की तरह एक पुस्तक सुलभ पक्षियों पर लिखूं, क्योंकि मूल पुस्तक ने यद्यपि पक्षियों तथा पंछी निहारन के प्रति जनता की रुचि जगाई थी, तथापि वह कीमत के कारण अधिकांश जनता की पहुंच के बाहर थी। उन्होंने बतलाया कि मेरी इस पुस्तक का भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित किया जाएगा ताकि उसका संदेश विस्तृततम क्षेत्रों तक पहुंच सके। उस समय मैं विशाल ग्रंथिका शृंखला कार्य में पूर्ण व्यस्त था, किंतु ट्रस्ट का तर्क मेरी समझ में आ रहा था, उस पुस्तक की आवश्यकता तथा उसे पूरा करने का अवसर भी मुझे दिख रहा था, अतएव मैं मना भी नहीं करना चाहता था। इसलिए मैंने उस पुस्तक को योग्य सह लेखक के साथ संयुक्त रूप से लिखने का प्रस्ताव दिया। मेरी भतीजी लाईक़ (श्रीमती ज़फ़र फ़तेह अली) अपने प्रारंभिक वर्षों में पंछी निहारन खेल के मेरे किशोर चेलाओं की अंतरंग मंडली की सदस्य थी तथा पर्याप्त निपुण बन गई थी। अब वह प्रखर प्रकृति प्रेमी है तथा अंग्रेजी की कल्पनाशील स्वतंत्र लेखिका है जिनकी शैली मनोरम तथा प्रवाहमयी है। इसके बाद लाईक को इस निर्दिष्ट कार्य हेतु फुसलाया गया। उन्होंने मुझसे न्यूनतम तकनीकी सहायता तथा वैज्ञानिक मार्गप्रदर्शन लिया तथा शीघ्र ही उत्तम पठनीय पुस्तक प्रस्तुत की जिसने एन.बी.टी. के सारे उद्देश्यों को पूरा किया। वास्तव में 'भारत–देश और लोग' शृंखला की पुस्तकों में, 'कॉमन बर्ड्स' पुस्तक, यदि सर्वाधिक लोकप्रिय नहीं तो उनमें से एक निकली। इसकी लोकप्रियता का सीधा सरल प्रमाण है कि उसके अंग्रेजी संस्करण के वर्ष 1967 तथा 68 में, चार पुनर्मुद्रण निकले। इसके बाद नए प्रारूप में, नई चित्र प्लेटों के साथ, जिसमें एक-एक प्लेट में अनेक जातियों के रंगीन चित्र रहते हैं, बिलकुल नया अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित हुआ। इसके चित्र राजकोट के उदीयमान पक्षिचित्रकार के.पी. जादव ने विशेष रूप से बनाए थे। इसका अनुवाद हिंदी तथा भारत की सभी प्रमुख भाषाओं–मराठी, गुजराती, पंजाबी, ओड़िया, मलयालम, तमिल, तेलुगु, बांग्ला तथा असमिया में हुआ है, जिनमें से अधिकांश में इसके दो या तीन पुनर्मुद्रण हो चुके हैं। 'हमारे परिचित पक्षी' (Common Birds) सभी क्षेत्रीय भाषाओं में उतनी ही लोकप्रिय है जितनी अंग्रेजी में।

1. 'भारत–देश और लोग' ('India—The Land and the People')

22
पुरस्कार

जब मैं छोटा था, वरन अभी कुछ वर्षो पूर्व तक, भारत में प्राणिविज्ञान का मुख्यतया अर्थ होता था शरीर रचना विज्ञान[1], शारीरिकी[2] तथा वर्गिकी[3] जिसे कक्षाओं तथा प्रयोगशालाओं में पढ़ाया जाता था। जानवरों के उनके प्राकृतिक परिवेश में, जीवन-इतिहास के अध्ययन की कोई बात ही नहीं करता था; पारिस्थितिकी तथा मानव-प्रकृति विज्ञान जो आज फैशन में प्रचलित शब्द हैं, तथा सभी उच्चाकांक्षियों की जिह्वा पर हैं, उन दिनों बहुत कम सुनने में आते थे। कक्षेतर कार्यक्रम में मुख्यतया वर्गीकरण, चीरफाड़ तथा वर्णन करने के लिए प्राणिवैज्ञानिक नमूनों का संग्रहण तथा परिरक्षण ही क्षेत्रकार्य के नाम पर होता था। कुछ समय बाद, एक सम्माननीय अपवाद आए थे सुंदरलाल होरा जो कि प्रसिद्ध मत्स्य वैज्ञानिक थे और जो प्राणिवैज्ञानिक सर्वेक्षण के निदेशक हुए। भारतीय मीठे जल की मछलियों की जैववैज्ञानिकी तथा पारिस्थितिकी, उनका विशेष जैविक परिस्थितियों के साथ अनुकूलन तथा भारत-मलायी (मत्स्य) जातियों का विचित्र खंडित भौगोलिक वितरण आदि विषयों पर उनके अनुसंधान ताजगी लिए हुए परंपरा से भिन्न थे। अपने अनुसंधान पर उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली।

पक्षियों के अध्ययन में मेरी रुचि, हमेशा से, जीवित पक्षियों के अध्ययन में रही है अर्थात उनकी पारिस्थितिकी तथा जैव भूगोल में। चाहे वैज्ञानिक आलेख हों या पुस्तकें, मेरा प्रमुख ध्यान पारिस्थितिकी पर ही रहा है, इस 'छूत की बीमारी' का संवर्धन एवं दिशा-निर्देश मुझे जर्मनी के अग्रतर पक्षिवैज्ञानिक अर्विन स्ट्रैसैमान तथा ऑस्कर हाइनरॉथ के संस्पर्श से लगा। मेरी वैज्ञानिक क्षेत्र सर्वेक्षणों की रिपोर्टों की प्रस्तुति में इस नवीन पारिस्थितिकी की उन्मुखता को समझने वाले तथा प्रशंसा करने वाले बिरले भारतीय जैववैज्ञानिकों में से एक, स्वभावतया, डा. होरा स्वयं थे।

1. शरीर रचना विज्ञान (anatomy)
2. शारीरिकी (physiology)
3. वर्गिकी (Taxonomy)

तथा यह मेरी कार्य शैली का उनके द्वारा मूल्यांकन ही था कि 'एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल' ने मुझे अपना स्पृहणीय 1953 का 'जॅय गोबिंद लॉ स्वर्ण पदक' प्रदान किया था; इस समय होरा इस सोसायटी के अध्यक्ष थे, तथा प्रशस्तिवाचन में लिखा था, 'फॉर रिसर्चेज़ इन एशियाटिक जुऑलॉजी' ('एशियाई प्राणिविज्ञान में अनुसंधान करने के लिए')। ऐसी अनेक मान्यताएं या सम्मान जो मुझे इसके बाद मिले, यह पदक उनमें प्रथम था। जबकि अंतर्राष्ट्रीय तथा वैज्ञानिक संदर्भ में कुछ पुरस्कारों की प्रतिष्ठा इससे कहीं अधिक है, जैसे 1967 का 'ब्रिटिश ऑर्निथालॉजिस्ट्स यूनियन' का स्वर्ण पदक जिसे प्राप्त करने वाला मैं प्रथम अ-ब्रितानी था, किंतु एशियाटिक सोसायटी के पदक का मेरे हृदय में गहरा और अधिक भावनात्मक मूल्य है क्योंकि पक्षिवैज्ञानिकी में वह सम्मान प्रथम बार एक भारतीय को मिला है। तथा इसलिए भी कि मेरी समझ में, प्रथम सम्मान हमेशा स्वतंत्र एवं योग्यता के अधिक सूक्ष्म मूल्यांकन के बाद मिलता है, तथा बहुधा यह (प्रथम सम्मान) बाद के अन्य पुरस्कारों के लिए एक सीढ़ी का कार्य करता है। इसी तर्क के आधार पर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा मुझे प्रदत्त विज्ञान डाक्टरेट (Honoris Causa) का मेरे हृदय में अधिक भावनात्मक मूल्य है; क्योंकि यह भी मेरे कार्य के प्रथम सूक्ष्म मूल्यांकन के आधार पर दी गई थी। तब भी यह कहना उचित होगा कि इसके बाद जो ऑनरेरी डॉक्टरेट दी गई, यथा 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा तथा 1978 में आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा उनके लिए मेरे मन में उतना ही आदर है क्योंकि इनके मूल्यांकन भी स्वतंत्र एवं सूक्ष्म हो सकते हैं।

बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी के साथ मेरी नियति, किसी न किसी तरह बंधी हुई है, विशेषकर 1923 में बर्मा से 'पलायन' के बाद और भी अधिक। बी.एन. एच.एस. भारत में वन्य जीवन संरक्षण के आंदोलन में अग्रगामी रही है, तथा भारत में, अपने शतवर्षीय अस्तित्व में, व्यावहारिक रूप से सभी शिकार संबंधी कानून, वन्य पक्षी तथा जानवर संबंधी विधेयकों के पारित होने के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वह उत्तरदायी रही है। मैं बाल्यावस्था से ही उत्कट शिकारी रहा हूं, किंतु हमारे बनों एवं वन्य जीवों के तेजी तथा नाटकीय ढंग से लोप होने, विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात, के कारण मेरी चिंता क्रमशः बढ़ती ही गई है। ब्रिटिश वन विभाग के अधिकारियों के स्वदेश लौटने के बाद, कानून व्यवस्था के ढीली होने पर, तथा रियासतों के विलयन के पश्चात यह लोपन और तेज हुआ है। रियासतें वन्य जीवन परिरक्षण हेतु अत्यंत प्रभावी रूप से सक्रिय थीं। मैंने सोसायटी के अवैतनिक सचिव के पद से तथा जर्नल के संपादक के बतौर, जो प्रकृति संरक्षण की समय-समादरित परंपरा उत्तराधिकार में पाई थी उसे उन परिस्थितियों में यथासंभव, यथाशक्ति बनाए रखने का तथा उस श्रेष्ठ कार्य को आगे बढ़ाने का तथा प्रसारित करने का यथासंभव पद्धतियों द्वारा भरसक प्रयत्न किया।

1961 में ब्रिटेन, यूरोप तथा यू.एस.ए. के प्रतिष्ठित प्रकृति संरक्षकों के प्रयास तथा पहल द्वारा विश्व प्रकृति निधि[1] की स्थापना हुई थी। इस निधि का उद्देश्य था आई.यू.सी.एन. (प्रकृति एवं प्राकृतिक स्रोतों के संरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय संघ) की प्रकृति संरक्षण परियोजनाओं के लिए अंतर्राष्ट्रीय अभ्यर्थनाओं द्वारा आवश्यक वित्त का प्रबंध करना। विश्व प्रकृति निधि परम धनवान अमेरिकी तैल-समृद्ध श्री जे. पोल जैट्टी को एक $50,000 की 'पोल जेट्टी वन्य जीवन संरक्षण पुरस्कार' का प्रतिष्ठापन करने की प्रेरणा देने में सफल हुई। प्रतिष्ठा में यह पुरस्कार अन्य अनुशासनों वाले नोबेल पुरस्कार के समतुल्य माना जाता है। कुछ समय बाद मेरे पास 1974 वर्ष के लिए शृंखला के प्रथम पुरस्कार हेतु किसी व्यक्ति अथवा संस्था का नामांकन भेजने के लिए अनुरोध आया। इसका निर्णय विश्व स्तर के तेरह सर्वश्रेष्ठ संरक्षकों की अंतर्राष्ट्रीय 'ज्यूरी' करती है। बी.एन.एच.एस. की वन्य जीवन संरक्षण तथा प्रकृति संरक्षण शिक्षण संबंधी भारत में जो उपलब्धियां हैं, दुर्भाग्य से तथा (इस विषय में बी.एन.एच.एस. की) उदासीनता से विदेशों में उनके विषय में कम ज्ञान है। अतएव इस अवसर को पाकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि इस बहाने मैं बी.एन.एच.एस. की स्वर्णिम उपलब्धियों का प्रचार कर सकूंगा। उस वर्ष मेरे द्वारा प्रदत्त नामांकन असफल हुआ जिससे मुझे निराशा तो हुई किंतु फिर भी मैं खुश था कि अंतर्राष्ट्रीय ज्यूरी के सम्मुख सोसायटी के कार्यों को रख सका था। बात आई गई हो गई। घोर संकटग्रस्त दक्षिण अमेरिकी विक्यूना के सफल संरक्षण करने के लिए 1974 का पुरस्कार पेरू के श्री फेलिप्पे बेनाविडेस[2] को प्रदान किया गया। जनवरी 1976 की एक सुहानी सुबह को टेलिफ़ोन बजा। टेलीफोन पर बांद्रा उप-डाकघर का पोस्टमास्टर था। उसने पूछा कि वाशिंगटन से सद्यःप्राप्त टेलीग्राम लेने के लिए क्या मैं कृपा कर डाकघर आ सकता हूं। पूछने पर कि वह उसे सामान्य तरीके से मेरे घर क्यों नहीं भेज सकता, उसने कहा कि वह उस टेलीग्राम को अपनी बधाइयों के साथ अपने हाथों से मुझे देना चाहता है क्योंकि उसमें मेरे लिए एक पुरस्कार की घोषणा है। मुझे बहुत हैरानी हुई क्योंकि मैं किसी भी पुरस्कार की प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। अतः मैंने सोचा कि निश्चित ही कहीं कुछ गड़बड़ है। पोस्टमास्टर ने जब खुशी से चमकते हुए टेलीग्राम दिया तब देखा कि उसमें पता तो मेरा ही था। उसमें लिखा था : कृपया इसे गोपनीय रखें, आप 1976 के जे-पोल जैट्टी वन्य जीवन संरक्षण पुरस्कार के प्राप्तकर्ता हैं। कुछ दिनों में विवरण पहुंचेंगे।—टामस लवजाय (पुरस्कार ज्यूरी के संयोजक) विश्व प्रकृति निधि, यू.एस.। मुझे तब भी लगा कि यह भ्रमित अभिज्ञान की बात है, बी.एन.एच.एस. के स्थान पर सालिम

1. विश्व प्रकृति निधि (WWF)
2. फेलिप्पे बेनाविडेस (Felippe Benavides)

अली का भ्रम। क्योंकि यदि किसी ने मेरा नामांकन किया होता तो मुझे अवश्य पहले से पता होता। यह सब पता करने में कुछ समय लगा। हुआ यह था कि मेरा नामांकन मैरिलैंड अमेरिकी सीनेट सदस्य श्री चार्ल्स मैकसी. मैथियास कनिष्ठ ने किया था। बी.एन.एच.एस. की गतिविधियों से तथा उससे मेरे संबंध से भी पूर्ण परिचित तथा हम दोनों के पारस्परिक मित्र तथा निरंतर सहायक एवं शुभेच्छु की प्रेरणा से (ऐसा मेरा ख्याल है) यह हुआ था। पुरस्कार के साथ आनंदप्रद प्रशस्तिवाचन भी था, वह भी उसी स्रोत के द्वारा प्रेरित लग रहा था!

जब मुझे अपने 'धर्मपिता' (गॉड फादर) का पता लग गया तब मैंने सिनैटर मैथियास को उनकी विनयशील सद्भावना के लिए धन्यवाद देने तथा पुरस्कार मिलने पर अपना निपट आश्चर्य तथा हार्दिक आनंद अभिव्यक्त करने के लिए पत्र लिखा। उनका 8 मार्च, 76 का मनोहर उत्तर था, "द्वितीय जे.पोल जैट्टी वन्य जीवन संरक्षण पुरस्कार हेतु मैं आपका नामांकन कर सका यह मेरे लिए गौरव की बात है। मैं आपको पुरस्कार जीतने के लिए धन्यवाद देना चाहता हूं क्योंकि उसका अर्थ है कि मेरे निर्णय को प्रतिष्ठित अंतर्राष्ट्रीय ज्यूरी ने पुष्ट किया, उचित समझा। आप उस सम्मान के पूर्ण योग्य हैं, और मैं खुश हूं कि वह आपको मिला।... ... बधाई!" जब मुझे बाद में पता चला कि ज्यूरी का निर्णय लगभग सर्वसम्मति से लिया गया था, तब मुझे दुहरी प्रसन्नता हुई। यू.एस. सीनेट के 25 मार्च, 1976 को सिनैटर मैथियास ने राष्ट्रपति को जो संबोधन किया था वह अभिलेखित है :

> श्रीमान राष्ट्रपति, कई वर्ष पूर्व जब मैं भारत भ्रमण पर था, प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं भारतीय पक्षिवैज्ञानिक सालिम अली से मिल चुका हूं। जब मैंने उत्तर दिया कि मैं नहीं मिला हूं, तब उन्होंने तुरंत ही उसका प्रबंध करवा दिया था जिसके फलस्वरूप उन्होंने, जहां तक मुझे स्मरण है, सर्वाधिक आनंद वाले तथा मनोरम अनुभवों में से एक का द्वार खोल दिया था। मैंने एक दिन सालिम अली के साथ बंबई के राष्ट्रीय उद्यान में बिताया। मेरा विशेष आदर केवल यह नहीं था कि जंगल की प्रकृति के सौंदर्य के प्रति उन्होंने मेरी आंखें खोल दीं वरन इतिहास के एक नाटकीय काल में भारतीय जीवन के सभी फलकों में जो उन्होंने देखा था, अनुभव किया था, उसका उन्होंने मुझे भागीदार भी बनाया था। उस दिन मैंने भारतीय पक्षियों के विषय में कुछ सीखा था, किंतु उससे भी अधिक मानव प्रकृति के उन गुणों को भी जाना जो सब जगहों की मानव जाति में मिलते हैं। जब विश्व प्रकृति निधि ने जे. पोल जैट्टी संरक्षण पुरस्कार के लिए नामांकनों का अनुरोध किया था, तब मुझे सालिम अली के नाम का प्रस्ताव करने में बहुत हर्ष हुआ था। जब उपराष्ट्रपति रॉक

फैलर ने घोषणा की कि 50,000 डालर के पुरस्कार हेतु सालिम अली का चुनाव किया गया है, जो कि विश्व में संरक्षण हेतु विशालतम पुरस्कार है, मुझे निश्चित ही अत्यधिक खुशी हुई थी... ...'भारत में संरक्षण हेतु पर्यावरण की रचना' का श्रेय सालिम अली को दिया गया है।

बंबई के दैनिक समाचारपत्रों में ज्योंही यह समाचार प्रकाशित हुआ था, बैंकों, पूंजी निवेश दलालों और इसी जाति के विभिन्न सदस्यों के टेलीफोनों की बाढ़ आ गई थी। सभी अधिकतम लाभ हेतु निवेश की उत्तमोत्तम विधियां निःशुल्क समझा रहे थे, और कि इस हेतु उनकी उत्कृष्ट संस्थाओं से श्रेयस्कर और कौन हो सकती है ! और अनेक तेज नाक वाले स्वार्थी लोग यह जानने के लिए उत्सुक थे कि इतने सारे पैसों से मैं क्या करूंगा। इन सभी के लिए मेरे पास एक ही छोटा तथा मीठा उत्तर था कि मैं सारा पैसा स्वयं खा जाऊंगा; किंतु तब मैंने देखा कि बहुत से लोगों की नजर उस पर है ! वास्तव में 'सिंह राशि' बी.एन.एच.एस. को गई, एक दीर्घकालीन प्रिय स्वप्न साकार हुआ। बी.एन.एच.एस. ने 'सालिम अली नेचर कंज़रवेशन फंड' (सालिम अली प्रकृति संरक्षण निधि) के केंद्रक का निर्माण किया, जिसका बाद में सोसायटी के प्रति, लोके वान थो के, आदर तथा प्रशंसा की स्मृति में सिंगापुर के लोके परिवार के अत्युदार दान ने भव्य संवर्धन किया।

फरवरी, 1976 में न्यूयार्क में मनाए गए पुरस्कार समारोह में जैट्टी पुरस्कार लेने के लिए सूचना की न्यूनावधि के कारण मैं स्वयं नहीं जा पाया था। उसे मेरे निमित्त हमारे राजदूत श्री टी.एन. कौल ने ग्रहण किया था तथा उसके उपलक्ष्य में आनंदप्रद भाषण दिया था जिसका करतल ध्वनि से देर तक स्वागत किया गया था। कुछ समय उपरांत उसी वर्ष एक अन्य विश्व प्रकृति निधि कार्यक्रम हेतु मैं सनफ्रांसिस्को गया था। मुझे प्रथम जैट्टी पुरस्कार विजेता फेलिप्पे बेनाविडेस से मेरी भेंट याद है, जिसे उन्होंने विनोद में 'एक लाख डालर मिलन' कहा था !

अभिलेख ठीक रखने के लिए, तथा संशयात्माओं के संशयनिवारण हेतु कि पंछी निहारन सरीखा दृष्ट्या निरर्थक धंधा भी पुरस्कारों के लिए नितांत अनुर्वर नहीं है, यदि उसका अध्यवसाय तथा निष्ठापूर्वक अनुसरण किया जाए (ऐसे संशयात्माओं में कुछ मेरे दिवंगत वरिष्ठ संबंधी भी हैं) इस अध्याय का समापन विगत वर्षों में मेरे द्वारा प्राप्त पुरस्कारों एवं सम्मानों की 'जांच सूची' से करना चाहता हूं।

1953 एशियाई प्राणिविज्ञान में अनुसंधानों के लिए, एशियाटिक सोसायटी का 'जॅय गोबिन्द लॉ मैडल' (जॅय गोबिन्द नियम पदक)।

1958 भारतीय पक्षिवैज्ञानिकी हेतु विशिष्ट सेवाओं के लिए भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्म भूषण'।

1958 अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय द्वारा 'डाक्टर ऑफ साइंस' (मानद)।

1967 ब्रिटिश पक्षिवैज्ञानिक संघ का 'संघ स्वर्ण पदक'।

1969 अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण में विशिष्ट सेवाओं के लिए 'प्रकृति एवं प्राकृतिक स्रोतों के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ' द्वारा 'जानॅ सी फिलिप्स मैमोरियल पदक'।

1970 भारतीय पक्षिवैज्ञानिकी में सर्वोत्तम योगदान के लिए भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी द्वारा 'सुंदरलाल होरा मैमोरियल पदक'।

1973 दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा 'डाक्टर ऑफ साइंस' (मानद)।

1973 सोवियत संघ आयुर्विज्ञान अकादमी द्वारा 'पावलोव्सकी शती मैमोरियल पदक'।

1973 नैदरलैंड्स के एच.आर.एच. प्रिंस बर्नहार्ड द्वारा 'इंसिग्निया ऑफ ऑफिसर इन द ऑर्डर ऑफ गोल्ड आर्क'।

1976 वन्य जीवन संरक्षण के लिए 'जे.पोल जैट्टी अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार'।

1976 पक्षिवैज्ञानिकी में लगातार विशिष्टता के लिए भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्म विभूषण'।

1978 आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा 'डाक्टर ऑफ साइंस' (मानद)।

1979 भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी द्वारा 'सी.वी. रमन पदक'।

1981 भारतीय उपमहाद्वीप की पक्षिवैज्ञानिकी में विशिष्ट योगदान के लिए 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बांग्लादेश स्वर्ण पदक'।

1981 एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता द्वारा 'रवीन्द्रनाथ टैगोर (फलक) प्लाक'।

1982 भारत सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय अनुसंधान प्रोफेसर पद'।

1983 नेशनल वाइल्डलाइफ फेडरेशन, यू.एस.ए. द्वारा 'अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण पुरस्कार'।

1983 भारत सरकार द्वारा वन्य जीवन संरक्षण के लिए 'राष्ट्रीय पुरस्कार' (स्वर्ण पदक)।

23

पंछी निहारन का रोमांच

एक मानक-सा प्रश्न जिसका मुझे हमेशा सामना करना पड़ता है यह है कि जीवन भर की पक्षिगवेषणाओं में मेरी रोमांचकारी साहसिकताएं क्या क्या रही हैं। मेरे मानक उत्तर से उन्हें अवश्य निराशा मिलती होगी जो किन्हीं दुस्साहसों की अपेक्षा करते हैं। अभिरुचि, व्यवसाय या प्रोत्साहन इसे चाहे जो माना जाए, साहसिकताओं, पारितोषकों एवं निराशाओं से परिपूर्ण, पक्षिवैज्ञानिकी, अपनी प्रकृति के अनुरूप खुली हवा (प्रयोगशाला) का अत्यंत शांतिप्रद अनुसंधान है। इसमें उत्तेजनाओं तथा रोमांचों की कमी नहीं है, किंतु यह उनसे भिन्न हो सकती हैं जिनकी अपेक्षा कुछ सामान्य जिज्ञासु करते हैं किन्हीं तथ्यों, व्यवहारों, नियमों या सिद्धांतों के विषय में जो कभी-कभी संशय या अंतःप्रेरणा होती है उन्हें खोजने, पुष्ट, सिद्ध या असिद्ध करने के लिए जासूसों की तरह सुराग खोजने और तत्पश्चात उन पर बिंदु प्रति बिंदु चिंतन, मनन, परीक्षण करने में जो रोमांच है वही मुझे पक्षिवैज्ञानिकी का अनुसरण करने में मिलती है। 1930 में लतीफ परिवार की समुद्रतटीय किहिम की कुटी में जब मैं 'बेकाम' (आजीविकाहीन) रह रहा था तब मुझे जीवन के एक अधिकतम परितोषप्रद रोमांच का अनुभव उस समय हुआ था जब बया (बुनकर) पक्षियों की असाधारण प्रजनन जैववैज्ञानिकी की प्रथम सही व्याख्या मेरे मस्तिष्क में सौभाग्यवश कौंधी थी।

बया का नीड़न व्यवहार जो प्रकाशित साहित्य में, पुस्तक प्रति पुस्तक मिलता था, उसी पारंपरिक वर्णन को पढ़कर ही मैं बड़ा हुआ था। ये सब निपुण पक्षिफोटोग्राफरों द्वारा फोटोग्राफ लेने के लिए पर्याप्त उपयोगी थे, जैसा कि मैं भी था। एक सीढ़ी पर, दस फुट ऊंचे कैनवस 'हाइड' में, घोंसलों से मात्र दो-चार फुट दूर बैठा उन्हें देख रहा था तब मैंने परंपरा-विरुद्ध कुछ देखा और मुझे स्पष्ट लगा कि उस कॉलोनी के निवासियों ने पाठ्यपुस्तकें नहीं पढ़ी थीं। इस हाइड में प्रतिदिन कुछ घंटे बैठने से तथा कॉलोनी में घट रही गतिविधियों के विपुल नोट्स एवं रेखाचित्रों ने मुझे समझाया कि आखिर कॉलोनी में हो क्या रहा था। कुछ सप्ताहों बाद बया की प्रजनन जैववैज्ञानिकी का सामान्य व्यवहार क्रम मैं भी बुन सका था जो मुझे विश्वसनीय

लग रहा था। तत्पश्चात मेरी नई व्याख्या अनेक बार जांची गई है तथा मेरे एवं अन्य अनुसंधानकर्ताओं द्वारा पुष्ट की गई है। तथा वह अब कुछ परिष्कारों सहित 'प्रमाणित व्याख्या' मानी जाने लगी है।

संक्षेप में निष्कर्ष यह है कि नर बया चतुर बहुपत्नीक है ! गौरैया के समान छोटा पंछी है, किंतु प्रजनन ऋतु में नर बया आकर्षक स्वर्णिम परिधान पहन लेता है। उसकी दो से चार, और कभी-कभी पांच पत्नियां हो सकती हैं–किंतु 'हरम' शैली में सब एक साथ नहीं, वरन उन्हें घर (नीड़) बुनकर देने की क्षमता के अनुरूप क्रमशः एक के बाद एक के साथ रहता है। नीड़ बुनने के लिए केवल नर जिम्मेदार होता है, मादा बुनने का कोई कार्य नहीं करती। नर दल कोई बबूल या ताड़ का वृक्ष अपनी कॉलोनी बसाने के लिए चुनते हैं, जिस पर वे 'बीन' के आकार के बुने हुए घोंसले लटकाते हैं। एक कॉलोनी में 100 तक घोंसले हो सकते हैं। निर्माण की एक स्थिति में जब घोंसले लगभग आधे बने होते हैं, तब अचानक एक मनोरम सुबह मादाओं का एक समूह सुंदर तथा मजबूत घरों की खोज में आ टपकता है। वे सभी एक समूह वृंद में नरों द्वारा उत्तेजना तथा गान के साथ किए जा रहे स्वागत में प्रवेश करती हैं। तथा वे एक घोंसले के बाद दूसरे घोंसले का, उनके शिल्प तथा सौंदर्य की दृष्टि से स्पष्टतः निरीक्षण करती हैं। कुछ घोंसले स्वीकार कर लिए जाते हैं तथा कुछ अस्वीकार। जब निरीक्षण प्रक्रिया गतिमान होती है तब शिल्पी नर घोंसले की बाहरी सतह पर ही उसे आमंत्रण की मुद्राओं में नृत्य (पंखों का कंपायमान) करता हुआ मादा के निर्णय की आकुलतापूर्वक प्रतीक्षा करता है। यदि मादा उस निर्मिति से संतुष्ट होती है तब वह उस पर अधिकार कर लेती है तथा नर के आकुल प्रणय को स्वीकार करती है। उस अर्धनिर्मित नीड़ जो आकार में 'हैलमैट' से काफी मिलता-जुलता है, के झूले (चिन स्ट्रैप) पर बैठकर त्वरित मैथुन होता है तथा वे गठबंधन में बंध जाते हैं। तत्पश्चात नर अपना बुनने का निर्माण कार्य पुनः प्रारंभ कर, उसे शीघ्र ही पूरा कर देता है। नीड़ के अंतःपुर में मादा अंडे देती है, सेती है तथा शावकों का लालन-पालन करती है। इसकी पूरी जिम्मेदारी केवल मादा की होती है, और अपवादस्वरूप, जब नर की निर्माण-वृत्ति पूर्ण संतुष्ट होती है तब वह नीड़ शावकों के आहार खोजने का कार्य कर सकता है। इस नीड़ को संतोषजनक रूप से पूरा करने के बाद, नर थोड़ी-सी दूर (कुछ फुट) तुरंत ही दूसरा नीड़ निर्माण प्रारंभ कर देता है। उपयुक्त अर्धनिर्माण की स्थिति में, कोई अन्य घर की खोज करती मादा उसका निरीक्षण कर उसका अधिकार ले सकती है तथा सारी प्रक्रिया उसी तरह दुहराई जाती है। इस तरह, नर बया, व्यावहारिक रूप में लगभग एक ही काल में अनेक पत्नियों का सुखी पति तथा अनेक परिवारों का गौरवशाली पिता हो सकता है। ऐसा कभी-कभी होता है कि कुछ नारीगत दोषों के कारण, एक के बाद दूसरी मादा उस घोंसले को स्वीकार करने में सफल नहीं

होती, तब नर बिना निराश हुए उस अर्धनिर्मित त्यक्त घोंसले को छोड़कर तत्काल दूसरा बनाना प्रारंभ कर देता है। सभी बया कॉलोनियों में ऐसे अनेक अर्धनिर्मित त्यक्त घोंसले देखे जा सकते हैं। बया के नीड़न-प्रजनन व्यवहार का यह शुष्क गद्यात्मक वर्णन है, तथा दुर्भाग्य से लोकप्रिय गीतात्मक वर्णन नहीं जिसमें लटकते हुए झूले के समान घोंसले पर नर झूला झूलते हुए अपनी अंडे सेती हुई पत्नी के लिए प्रेमगीत गाता रहता है।

भारत में पक्षियों का वैविध्य है, समृद्धता है। कोई भी पंछिनिहारक पर्याप्त उत्साह तथा अध्यवसाय से इस तरह की उत्तेजनापूर्ण खोजें, जो अभी अज्ञात हैं, कर सकता है। यद्यपि अभी तक इसके भक्तों की संख्या सीमित है, यह जानकर प्रसन्नता होती है कि अन्य खुली हवा के सभ्य अनुसरणों के साथ पंछी निहारन की अभिरुचि तेजी से लोकप्रियता में बदल रही है।

पक्षियों का क्षेत्र-अध्ययन, जिसे लोग पंछी निहारन कहते हैं, पर्याप्त शांतिपूर्ण गतिविधि है, तब भी ऐसा नहीं कि इसमें कभी रोमांचकारी या जोखिमपूर्ण घटनाएं घटती ही न हों। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत के हस्तीवासी वनों में, मैंने अपने आपको अक्सर कष्टप्रद तथा चिंताजनक स्थितियों में पाया है। 'एक जंगली हाथी का अचानक बहुत निकट आ जाना'—कर्नाटक तथा केरल में अनहोनी नहीं है—होश बिगाड़ सकता है, तथा यह घटना लगभग हमेशा (हाथी के लिए) अशोभनीय दृश्य में परिणित हो सकती है, जिसमें पक्षिवैज्ञानिक विरुद्ध दिशा में पूरे वेग से पलायन करता दृष्टिगोचर होता है। यथार्थ में वन्य हाथी से, यदि वह पागल या बछड़े के साथ मादा नहीं है, न के बराबर खतरा है। किंतु 'निकट स्थितियों' में विशेषकर जब हवा गत दिशा में हो, एकमात्र विवेकपूर्ण कार्य करने के पहले इस सिद्धांत के सिद्ध होने तक प्रतीक्षा करना 'गलत कूटनीति' है। क्योंकि ऊंची घास (हाथी घास) वाले क्षेत्र में भयातुर झुंड की नितांत भोली भगदड़ में उस पक्षिवैज्ञानिक के अनियत दुर्घटना के शिकार होने की संभावना तो हो सकती है। ऐसी स्थितियों में बहादुरी नहीं विवेक की आवश्यकता होती है।

छोटी कोचीन वन ट्राम सेवा, अपने समय में, गर्व के साथ भारत में (या विश्व में?) सबसे सस्ती रेलसेवा कहलाती थी। मैं तो दोनों में से किसी में भी अच्छे से विश्वास कर सकता हूं। उसके 'गार्ड' का वेतन, दस वर्ष की संतोषजनक सेवा पश्चात 25 रूपये था; हां उसकी (एक समय पर) धवल यूनिफार्म, विनियमित (एक समय पर) धवल सोला टोपी तथा सीटी एवं झंडी शानदार होती थी। तथा उसका (2 फुट गेज) इंजन, निकटस्थ वनों की काटी हुई लकड़ी पर चलता था। वह चलकुडि से लगभग 75 कि.मी. दूर परम्बिकुलम के बीच चला करती थी। उसके पक्ष में भव्य दृश्यावलियां थीं, बांस और नम-पतझड़ी मिश्रित घने वनों से छाए हुए पर्वतीय दृश्य, तथा घाटी में एवं जलधाराओं के किनारे यहां-वहां बिखरे

आर्द्र सदाबहार वनों की शोभा निराली थी। इस ट्राम सेवा का निर्माण कोचिन वन प्रशासन ने भीतरी वनों से टिम्बर लट्ठों के परिवहन हेतु किया था। यह इस्पाती रस्सियों, कैप्स्टन पुली, भार तथा प्रतिभारों के मिले-जुले सिस्टम से चलती थी। समतल पर ट्रेन को इंजन खींचता था, तथा उतारों पर गुरुत्वाकर्षण, यद्यपि कुछ उतार भयानक रूप से ढलवां थे। नीचे उतरनेवाले लदे डब्बे, नीचे से खाली डब्बों को रस्सी तथा पुली से ऊपर खींचते थे, इनका नियमन ब्रेकड्रमों से होता था जो प्रत्येक ढलान के शीर्ष पर होते थे जो संख्या में, जहां तक मुझे याद है सात या नौ थे। सामान्यतया इस ट्रेन में यात्री नहीं चलते थे, किंतु जब कार्यवश कोई वन अधिकारी या वी.आई.पी. को यात्रा करना होती थी तब घोड़े ढोने वाले लोहे की 'वैगन' लगाई जाती थी, तथा वैगन के अंदर कुर्सियां रखी जाती थीं।

1933 में हमारे सर्वेक्षण दल ने कुरियर्कुट्टी तक इसी तरह यात्रा की थी, जहां पर रेलपथ के बाजू में ही सरकारी 'शिविर-ओसारा' था। ट्रेन को शिविर के पास रोककर सामान उतारा गया था तथा बंगले में पहुंचाया गया था। उन पहाड़ियों पर रेल द्वारा खींचे जाने में बड़ा मजा आता था क्योंकि जब से ट्राम सेवा की स्थापना हुई थी, अर्थात लगभग बीस वर्षों में इस्पाती रस्सियां बदली नहीं गई थीं। फलस्वरूप इसमें साहसिकता का पुट आ जाता था जो ढाल की तेजी पर निर्भर करता था। मुझे याद है, इंजन से जब-तब कालिख तथा लकड़ी के धुएं के साथ जलते अंगारे उड़कर हमारे कपड़ों तथा सामानों पर गिरा करते थे। यात्रा के अंत तक मेरी कमीज तथा तैहमीना की साड़ी में अंगारों से अनेक छेद हो गए थे। 65 किलोमीटर की यात्रा आठ घंटों में हुई थी जो सुखद रूप से तेज थी। कुरियर्कुट्टी से आठ कि.मी. आगे अगला स्टेशन परम्बिकुलम ट्राम सेवा का टर्मिनस था जिसमें वन काष्ठागार तथा टिम्बर गोदाम थे जहां पर लट्ठे नीचे चलकुडि ले जाने के लिए इकट्ठे किए जाते थे।

मेरी अगली कोचीन वन ट्राम सेवा से रोमानी यात्रा फरवरी 1946 में हुई। अफसोस कि उसे थोड़े ही समय बाद, परम्बिकुलम जल विद्युत परियोजना के लिए, उखाड़ा जाने वाला था। इस परियोजना के तहत एक विशाल बांध तथा जलाशय बना जिसने परम्बिकुलम तथा आसपास के मनोरम वनक्षेत्र को निमग्न कर दिया है। पूछने पर पता लगा कि हमें तेरह वर्ष पूर्व जिन पुरानी इस्पाती रस्सियों ने खींचा था, वे ही अब भी खींच रही हैं, इस ज्ञान ने यात्रा को निश्चित रूप से अधिक साहसिकता से भर दिया। जब हम परम्बिकुलम पहुंचे तब अंधेरा घिर ही रहा था। वन-बंगले के वरांडे में स्थानीय आदिवासियों (कादर) का बड़ा समूह पालथी मारे बैठा था। वहीं एक विक्टोरियाई लंबी आराम कुर्सी थी। उस समूह के बीच एक नंगे पैर, ऊपर आधा भाग वस्त्रहीन यूरोपी पुरुष खाली हाफपैंट पहने उस कुर्सी पर पसरा था तथा उसके पैर कुर्सी के उन दो लंबे हाथों पर फैले हुए पड़े थे।

हम लोगों ने एक-दूसरे का परिचय किया। उसका नाम बैरॉन ओमार रॉल्फ एहरैनफैल्स[1] था। वह आस्ट्रियाई था और नृशास्त्री था। उसने कुछ समय पहले इस्लाम धर्म स्वीकारा था (सुविधार्थ?)। हिटलर द्वारा आस्ट्रिया को हथियाने के थोड़े समय पहले ही भागकर वह भारत आ गया था और यहां आदिवासियों का अध्ययन कर रहा था। उसका कहना था कि पक्षिवैज्ञानिकी उसका दूसरा प्रेम था। दूसरे दिन सुबह मेरे साथ पक्षिसंग्रहण हेतु चलने के लिए उसने उत्कट अभिलाषा व्यक्त की। वन-गारद आगे, मैं अपनी 0.410 संग्रह बंदूक तथा कारतूस लिए तथा ओमार मेरे पीछे, एक कतार में, घनी ऊंची घास (पांच फुट) के बीच जानवर-पथ पर चुपके-चुपके चले जा रहे थे। ऐसा जंगल 'ब्रोड टेल्ड ग्रास वार्बलर' (चौड़ पुच्छ घास कूजिनी, Schoenicola Platyura) पंछी के लिए उत्तम आवास स्थल है, जिसके दर्शन हेतु मैं बहुत उत्सुक था और मेरे विचार उसी पर केंद्रित थे। उस पथ पर एक मोड़ लेने के बाद वन-गारद एकदम नीचे झुक गया और सीधे सामने की तरफ इशारा किया। मुझे सामने की तरफ से लंबे डग भरकर अपनी तरफ आते हुए एक छत्ती हाथी की एक झलक ही दिखी और मैं यथाशक्ति तीव्रतम वेग से भागने के लिए पीछे की ओर मुड़ा तथा साथ ही ओमार को, जो मुझसे दस मीटर पीछे था, भी भागने के लिए इशारा किया। मुझे मालूम नहीं कि उसने मेरे इशारे को क्या समझा किंतु मैंने किसी अन्य को इतने वेग से प्रतिक्रिया करते कभी नहीं देखा। बिल्ली की सी चपलता के साथ वह घूमा और उसके लंबे पैर जितने वेग से उसे ले जा सकते थे, वह सरपट दौड़ गया, न तो उसने बाएं देखा और न दाएं। थोड़ी ही देर में बैरॉन मुझसे 100 मीटर आगे था और मुझे लगा कि वह कभी रुकेगा ही नहीं और 100 मीटर जाने के बाद वह रुका और जब मैं उसके पास हांफते हुए पसीने से तर पहुंचा, तब उसने थके किंतु दबे स्वरों में पूछा, 'क्या था?' जब भी मैं वन्य हाथी को अपनी तरफ देखते हुए देखता हूं मुझे इस मजेदार घटना की, साथ ही बैरॉन के वेग तथा दम की, याद आ जाती है। इस घटना में, शायद बेचारे हाथी ने हम लोगों का आभास भी न पाया हो। मोड़ पर पहुंचने के पहले ही वह घास में कहीं घुस गया और फिर दिखाई नहीं दिया।

कभी-कभी पक्षिवैज्ञानिकी में एक अन्य प्रकार का खतरा हो सकता है। मुझे एक रोंगटे खड़े करनेवाली घटना याद आ रही है। मई 1945 में मैं अल्मोड़ा से हिमालय पार कैलाश मानसरोवर जा रहा था (ड्रैगन द्वारा तिब्बत को गुटकने के कुछ वर्ष ही पहले)। अल्मोड़ा से लिपु लेख पास जाते समय, वह पगडंडी बहुत ही संकरी थी, एक तरफ 1,000 फुट खड़ी चट्टान थी तथा दूसरी तरफ सीधे 300 फुट नीचे काली नदी गुर्रा रही थी। मैं हमेशा की तरह, जब कुली लोग शिविर

1. बैरॉन ओमार रॉल्फ एहरैनफैल्स (Baron Omar Rolf Ehrenfels)

उखाड़ रहे थे, सबसे आगे अकेला निकल पड़ा था। उसी समय एक छोटा-सा पंछी—मुझे वह सोनघाटा युहीना[1] कितनी अच्छी तरह से याद है—एक झाड़ी के ऊपर जा बैठा, वह झाड़ी कुछ मीटर आगे चट्टान की ओर थी। जैसे ही मैंने अपनी दूरबीन में उसे संकेंद्रित किया, वह फुदककर थोड़ा आगे आई, इसलिए ठीक से देखने के लिए मैंने भी एक कदम पीछे रखा, आंखें मेरी दूरबीन से चिपकी उस पंछी पर लगी थीं, और मैं भूल गया था कि मेरे पीछे काली गरज रही है। जैसे मैंने वह कदम पीछे रखा था, मुझे लगा कि एक छोटा-सा पत्थर मेरी एड़ी से खिसका और मैंने उसके गिरने की लगातार हल्की कड़कड़ जैसी आवाज सुनी। अभी भी मुझे किसी खतरे का अंदेशा नहीं था लेकिन फिर भी मैंने, यूं ही अपने कंधे के पीछे देखा कि वह क्या आवाज थी। जो मैंने देखा, उससे सचमुच मेरे रोंगटे खड़े हो गए ! पलक झपकते ही मैं समझ गया कि मैं स्वर्ग के एकदम कगार पर खड़ा था, दो इंच और पीछे जाता कि मैं भी उसी पत्थर की तरह लुढ़कता-पुढ़कता नीचे काली में समा जाता ! मैंने जो बड़ी छलांग आगे लगाई वैसी तो माओ की क्रांति के लिए भी प्रशंसनीय होती। मुझे आज तक अचरज होता है कि उस दिन शाम को जब कुली शिविर पहुंचते तब मेरी रहस्यमय अनुपस्थिति का क्या करते, क्योंकि उस लुप्त पक्षिवैज्ञानिक का उस चट्टानी संकरी खोह में जहां नीचे कोलाहल करती नदी बह रही थी, कोई भी चिह्न मिलना 'विशुद्ध संयोग' ही होता।

जब मैं छोटा ही था, तब कक्षा में प्रारंभिक भूमिति[2] के बेतुके सवालों को हल करने के बजाय मुझे आनंददायक स्थानों में पंछियों के पीछे भागना-दौड़ना अधिक आनंद देता था। तब से, अर्धशताब्दी से भी अधिक अवधि में मैंने मुख्यतया आनंद तथा मानसोल्लास के लिए पंछी निहारन किया है। पंछी निहारन के बहाने मैं, इस यांत्रिक भागती-दौड़ती अविश्वसनीय सभ्यता के अप्राकृतिक हल्ले-गुल्ले से दूर, पर्वतों पर, गहन वनों में जहां प्रत्येक दृश्य मुझे आनंद देता था, भाग जाता था। हो सकता है कि आप इसे पलायन समझें, किंतु इसके न्यायोचित ठहराने की बिलकुल आवश्यकता नहीं है।

1. सोनघाटा युहीना (Yellownaped Yuhina)
2. प्रारंभिक भूमिति (elementary mensuration)

उपसंहार

सैम्युअल बटलर ने ठीक ही कहा था, 'अपनी प्रशंसा, स्वयं ही करने का लाभ यह है कि उसे जितनी चाहे अधिक, और वह भी बिल्कुल उचित स्थानों पर किया जा सकता है।' अपनी आत्मकथा लेखन मे मैंने यह सूत्र सदा स्वयं के समक्ष स्थापित रखा ताकि बिलकुल उचित स्थानों पर भी 'अधिक' के लोभ से बचा रहूं—किंतु इसमें मुझे कितनी सफलता मिली मैं नहीं बतला सकता। मेरा अधिकांश पत्राचार, विशेषतया क्षेत्रों से, अधिकतर हस्तलिखित ही था, तथा प्रतिलिपियां, शायद ही रखी गईं, अतएव उन विषयों के लेखन में मैं स्मृति पर निर्भर करने के लिए बाध्य था। किंतु मैंने स्मृति को एकतरफा यातायात के पत्राचार से कुरेदने का तथा उस पर आधारित बाह्य आकलन करने का सतत प्रयास किया है। वह एकतरफा यातायात वाला पत्राचार भी सारा सुरक्षित नहीं रह पाया है, पर यथार्थ के अधिक निकट रहने के लिए यथासंभव क्षेत्र-पुस्तिकाओं तथा नमूनार्थ बनाए गए रजिस्टरों के अक्षरलोप[1] शीघ्र लिखित (इतने पुराने कि) कभी-कभी विवर्ण, गिचपिची लेखन का उपयोग किया गया है। मैंने नियमित रूप से वर्णनात्मक डायरी भी नहीं रखी, किंतु, यथासंभव, समय-समय पर अभियानों में साथ गए अधिक परिश्रमी एवं डायरी लेखक मित्रों के लेखन में से सारसंग्रही उदारता के साथ उद्धरणों का उपयोग किया है। इन सबने वास्तव में प्रमुख शब्द ही अधिक दिए हैं, परंतु अनेक रोचक, स्मरणीय घटनाएं, अनुभव तथा व्यक्तित्व, निश्चित रूप से छूट गए हैं। अस्सी वर्षों के अंतराल के वर्णन में ऐसा होना अपरिहार्य है। ग्रहणशील साक्षात्कारियों ने प्राकृतिक इतिहास संबंधी विषयों के अतिरिक्त, बहुधा मेरे जीवन के व्यवसाय से भिन्न पहलुओं को गहराई से जांचने-परखने में उत्सुकता दिखाई है; मेरे विभिन्न दृष्टिकोण, मेरी रुचियां एवं अभिरुचियां, विभिन्न दैनंदिन विषयों पर मेरे मत तथा मेरी परमात्मा विषयक विश्वास एवं आस्थाएं इन उपर्युक्त उत्सुकताओं की खोज में सम्मिलित रही हैं।

1. अक्षरलोप (syncopated)

वे प्रश्न जो अतिलौकिक (आध्यात्मिक) की सीमा को स्पर्श करते हैं, उन पर मेरे उत्तरों को मेरी मान्यताएं या मेरे विश्वास समझा जा सकता है।

प्रश्न : यदि आप अंग्रेजी-भाषी नहीं होते, तब आप वे सालिम अली नहीं होते जो विज्ञानविश्व जानता है। ऐसा कहा गया है कि 'बिना अंग्रेजी भाषा के भारत राष्ट्रों का ऐसा द्वीप समूह होगा जिसके सागर में नौचालन नहीं किया जा सकता।' क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि भारत में अंग्रेजी भाषा का सस्नेह पालन-पोषण किया जाए ताकि वह भारत की संपर्क भाषा बन सके? समय तथा योजनाबद्ध विकास से क्या अंग्रेजी ऐसा अखिल भारतीय वातावरण नहीं पैदा कर सकती जिसमें कोई क्षेत्रीय रोष नहीं होगा तथा हम विचारों व विकास में आधुनिक हो सकेंगे?

उत्तर : आज हम जिस राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय परिवेश में हैं, उसे ध्यान में रखते हुए, मेरा पूर्ण विश्वास है कि सोच, अभिधारणाओं, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी आदि में आधुनिकता की कगार पर रहने के लिए न केवल यह वांछनीय है वरन अनिवार्य है कि हम भारत में अंग्रेजी का पालन-पोषण करें ताकि वह भारत की संपर्क भाषा बन सके। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि साथ-साथ हिंदी सहित सभी क्षेत्रीय भाषाओं को यथासंभव प्रोत्साहन न दिया जाए, किंतु कैसी हिंदी, वैसी जैसी सरल तथा बोलचाल वाली हिंदुस्तानी को गांधी जी चाहते थे कि जिससे वह जनसाधारण की संपर्क भाषा बने, जो वह बनी और बिना किसी विशेष प्रयत्न के बनी। अन्य भी कई लोगों की तरह मैं सोचता हूं कि वास्तव में, अंग्रेज जो वसीयत हमारे लिए छोड़ गए हैं उनमें, संभवतया, सर्वोत्तम अंग्रेजी भाषा है। और जैसी भी एकता हम आपस में कर पाए हैं उसमें तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हम जो भी स्थान अर्जित कर पाए हैं अंग्रेजी मुख्य कारक रही है। सचमुच यह मुझे आश्चर्यजनक लगता है कि हम जिन व्यक्तियों को वैसे, बुद्धिमान तथा विवेकशील मानते हैं तथा अपना नेता मानते हैं, वे इतने अदूरदर्शी तथा पूर्वाग्रही होते हैं कि जो हम छोटे व्यक्तियों को दिन के प्रकाश की तरह स्पष्ट दिखता है, उन्हें दिखता ही नहीं !

प्रश्न : क्या आपके पालन-पोषण में धर्म का महत्व था, और क्या आपके जीवन में वह अब भी महत्वपूर्ण है? क्या सूफी परंपरा ने आपको प्रभावित किया है?

उत्तर : जब मैं बच्चा था उस समय के सभी मुस्लिम बच्चों की तरह, और आज भी बहुत-से मुस्लिम परिवारों की तरह, हमको बहुत छोटी उम्र से कुरान पढ़ना तथा स्मृति से सस्वर वाचन करना सिखाया जाता था। उसकी भाषा अरबी का एक भी शब्द समझे बिना, तोतों की तरह रटाया जाता था। साथ में नमाज के घुटनों को मोड़ने वाले सभी क्रियाकलापों को करवाया जाता था। मुझे यह खेद सहित

स्वीकार करना पड़ता है कि न केवल यह मेरे अध्यात्म को जगाने में असफल रहा वरन सारे जीवन के लिए उसने मुझे औपचारिक प्रार्थना से, उन्हें निरर्थक तथा यहां तक कि पाखंडी समझते हुए, विमुख कर दिया है। बाद के वर्षों में, मेरे कुछ आत्म-प्रशंसक एवं धर्माभिमानी गुरुजनों के धार्मिक विचारों तथा व्यवहारों के क्रांतिक अवलोकनों ने मेरे अभिमतों को बदलने में सहायता नहीं की है।

प्रश्न : क्या आपका अमानवी-जीवों की जाति (पक्षियों) के अध्ययन का साहचर्य (या प्रभाव), आपको शेष प्रकृति से मानव के अलगाव का खंडन करने की प्रेरणा देता है? या आप उसे शेष प्रकृति से विशिष्ट मानते हैं जो आहार, प्रजनन एवं स्व-संरक्षण की जन्मजात वृत्तियों के अतिरिक्त संतुष्टियां प्राप्त करता है?

उत्तर : मैं यह स्वीकार करता हूं कि मैं शुद्ध भौतिकवादी हूं, तथा अतींद्रिय अथवा तंत्र की जिसमें गंध भी आती हो उसमें मेरा विश्वास नहीं है। इसलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य अन्य जानवरों से भिन्न नहीं है, जानवरों के ही समान उसमें वही सहज वृत्तियां हैं, आवेग हैं तथा व्यवहार-शैलियां हैं—केवल अधिक विकसित मस्तिष्क के साथ, जिसकी सहायता से वह तार्किक ढंग से सोच तथा कार्य कर सकता है, तथा साथ ही साथ अन्य निम्न जीवों पर 'दैवी अधिकार' के रूप में उन पर अपनी संदेहास्पद श्रेष्ठता को धृष्टतापूर्वक मान्यता देता है। उत्कृष्ट कालजयी फिल्म 'कपि श्रेष्ठ कपि' (Ape Super Ape) सुंदर चित्रात्मक शैली में दृष्टांत प्रस्तुत करती है कि किस तरह मानव की सहज वृत्तियां, भावनाएं तथा व्यवहार मूल रूप से निम्न जानवरों के ही समान हैं, केवल कुछ परिष्कृत हैं, वह भी हमारी दृष्टि में। जहां तक 'दर्शन' का संबंध है, मैं वन में शिशु के समान हूं, तथा किसी पर्वत की चोटी पर पद्मासन में बैठकर किसी केंद्र बिंदु पर ध्यान लगाने को, या परलोक की चिंता करने को या उन अभिधारणाओं, जिन पर विश्वास या अविश्वास करने का कोई तार्किक आधार नहीं हो, पर चिंतन करना व्यर्थ समझता हूं। दार्शनिक जॉर्ज सैंटायन के साथ मैं विश्वास करता हूं कि 'जन्म तथा मृत्यु का कोई उपचार नहीं है, सिवाय इसके कि उस अंतराल का आनंद उठाया जाए।' मैं यह बहुत गहराई से समझता हूं कि केवल अपने इस वर्तमान जीवन में ही हम सारथी के स्थान पर हैं जब हमारे पास यह शक्ति है कि हम अपने कार्यों का सचेत नियमन या नियंत्रण कर सकते हैं। तथा, मेरी समझ में जिनके लिए हमारे (कम से कम मेरे) पास कोई भी संतोषजनक आधार नहीं हैं, उन दुर्जेय अनुमानों तथा अमूर्तों के चिंतन पर जीवन को नष्ट करना, उस संभावना का भयंकर दुरुपयोग है। संक्षिप्त में, मैं कट्टर भौतिकवादी हूं, किंतु दुष्ट नहीं ! मैंने जो भी वैज्ञानिक प्रमाण समझे हैं, मुझे यह विश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं है कि डार्विन द्वारा प्रतिपादित तथा अन्य अनुवर्ती वैज्ञानिक खोजों द्वारा परिष्कृत प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के द्वारा मानव का विकास निम्न जीवों से हुआ है, तथा वह मूलतः 'श्रेष्ठकपि' है।

प्रश्न : क्या आप यह नहीं मानेंगे कि मनुष्य में एक पदार्थेतर कारक भी है जो उसे शेष से (अलग) विशिष्ट करता है? आप मानव की सौंदर्यात्मक एवं नैतिक शक्ति के विषय में क्या सोचते हैं? क्या आप यह कहेंगे कि वे उसके उच्चविकसित मस्तिष्क से उपजी हैं?

उत्तर : मेरी प्रवृत्ति दार्शनिकता की नहीं है, इसलिए यह मैं स्वीकार करता हूं कि मनुष्य की सौंदर्य एवं नैतिक जैसी उदात्त शक्तियां मस्तिष्क से उपजी हैं या नहीं, इस पर मैंने विशेष मनन नहीं किया है। यद्यपि मैं यह मानता हूं कि मस्तिष्क समस्त प्रत्यक्ष ज्ञान एवं संवेदनशीलता का प्रमुख केंद्र है, वह हमारी समस्त मानसिक शक्तियों का मूल कारण है जो उसके द्वारा ढलती भी हैं—यद्यपि मैं यह नहीं मानता कि केवल यही एक उत्प्रेरक शक्ति है। ऐसा मुझे लगता है कि अंतःकरण (या आत्मा की आवाज—जैसा गांधीजी कहा करते थे) सरीखी की कोई शक्ति अवश्य है, जिसके उद्गम के विषय में न तो तार्किक व्याख्या मेरे पास है और न देने की धृष्टता करूंगा। यदि हम लोग बहुत भ्रमित नहीं हैं, तब जानवरों में भी सौंदर्य एवं नैतिक बोध के समान शक्तियां हैं, जो आदमियों द्वारा तब तक नहीं देखी जातीं जब तक कि जानवरों में उनकी व्यवहार के रूप में अभिव्यक्ति नहीं होती। उदाहरणार्थ, आस्ट्रेलियाई क्षेत्र का बौवर[1] पक्षी है। इस उदाहरण में नर बौवर नीड़ के लिए एक स्थान की सावधानीपूर्वक सफाई करता है, इसके ऊपर टहनियों से बौवर (नीड़) बनाता है, फिर अंतःपुर को जानबूझकर, चुनी गई चमकदार रंगीन वस्तुओं से सजाता है, बहुधा इन्हें ढूंढते हुए वह बहुत दूर तक जाता है—स्पष्ट है कि वह अंतःपुर को मादा के लिए सजाता है। या अपनी 'कलकंठी बुनकर बया' का उदाहरण लें : नीड़ निर्माण की एक निश्चित स्थिति में (नीड़ निर्माण केवल नर करता है), जब मादा अनेक प्रतियोगी नीड़ों में से अपने लिए एक नीड़ का चयन करती है, तब नर घोंसले पर थोड़ी-सी गीली मिट्टी लगाकर भड़कीले पुष्पों की पंखुड़ी लगाता है, स्पष्टतया यह प्रत्याशी मादा के सौंदर्यबोध के भरोसे, उसे नीड़ में आकर्षित करने का प्रयत्न है।

प्रश्न : नेहरूजी की टिप्पणी पर ध्यान दें : 'इच्छा स्वातंत्र्य तथा नियतवाद में कोई विरोध नहीं है। जीवन दोनों हैं। जीवन ताश के खेल सरीखा है। आपको जो पत्ते बंटे, उन पर आपका कोई नियंत्रण नहीं है। यह बंटना नियतवाद का उदाहरण है। जिस ढंग से आप खेल खेलते हैं, वह इच्छा स्वातंत्र्य का उदाहरण है।' क्या आप 'ताश के पत्तों के बंटने' को विश्वास से अलग रखेंगे?

उत्तर : 'ताश के पत्ते बांटने वाला' कथन मेरे सिर के तनिक ऊपर से जा रहा है। मेरा विश्वास है कि आनुवंशिक रूप से मिले वंशाणु प्रत्येक को ताश के

1. (बौवर का एक अर्थ होता है अंतःपुर—अनु.)।

पत्तों के समान प्राप्त होते हैं, तथा मैं मानता हूं कि उस पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है तथा सुविधा के लिए उसे हम नियति या किस्मत बोलते हैं। परंतु इच्छा स्वातंत्र्य इस नियति को एक सीमा तक, किंतु महत्वपूर्ण परिमाण में, दिशा प्रदान करता है, दूसरे शब्दों में (पुनः ताश के रूपक के संदर्भ में) ताश के खेल को खेलने के द्वारा हम एक-दूसरे से भिन्न होते हैं।

जब मैंने लगभग यही प्रश्न एक समान सोच-विचार वाले मित्र साहेबज़ादा महमूद उज़ ज़फ़र खान से किया, तब उन्होंने जो अर्थगर्भित उत्तर दिया उसकी भावनाएं लगता है जैसे मेरी ही हों, वह है :

> जीवन न केवल विषय-वासनामय है और न केवल वैराग्यमय, परंतु बहुवर्णी एवं क्षणभंगुर। इसका आनंद लेने के लिए योग्य शरीर चाहिए; समझने के लिए सामान्य बोध। धर्म तथा दर्शन, अतएव, न तो आवश्यक हैं और न व्यावहारिक : तथापि विरोधाभास ही है कि, वे जमे हुए हैं।

एक और प्रश्न जिसका मुझे बहुधा सामना करना पड़ता है वह यह कि डंके की चोट पर चलने वाला मेरा वन्य जीवन संरक्षण तथा खेल हेतु वन्य जीवों के शिकार के मेरे समर्थन के बीच मैं कैसे समन्वय करता हूं। जिन्होंने कभी खेल के लिए शिकार नहीं किया उन्हें इसमें विरोध दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। जैसा कि मैंने पहले लिखा है कि मैं अपने समय में उत्कट शिकारी रहा हूं और बाद में मैंने उसका त्याग कर दिया, इसलिए नहीं कि मुझे पश्चाताप हुआ हो वरन इसलिए कि देश में वन्य जीवन की चिंताजनक दशा को देखा, जिसमें अनेक वन्य जातियों को विलोपन की कगार पर ढकेल दिया गया है, और लगा कि शिकार अव्यावहारिक हो गया है। खेल के लिए शूट करने में तथा इतने कि.ग्रा. मांस के लिए येनकेन प्रकारेण मारने में अंतर स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। 'खेल' शिकार में परंपरा समादरित नैतिकता का कड़ाई से पालन होता है, यथा, निषिद्ध ऋतु (प्रजनन ऋतु) में कोई शूटिंग नहीं होती, मादाओं तथा शावकों को शूट न करना, निर्धारित संख्या में शिकार करना, चकाचौंध करने वाली बत्तियों की सहायता से जीप में बैठकर शिकार नहीं करना, जल स्रोतों पर जहां जानवर पानी पीते आते हैं वहां शिकार नहीं करना, आदि-आदि। और चोर शिकारियों की शिकार की यही विधियां हैं। चोर शिकारियों के घृणास्पद कार्यकलापों से, न कि नियंत्रित तथा राष्ट्रीय उद्यानों को छोड़कर (जहां कि विशेष सुरक्षा कर्मचारी होते हैं या होने चाहिए) वनों में वैध शिकारियों की उपस्थिति चोर शिकारियों के रास्ते में प्रभावी अवरोध हो सकती है। और यह पद्धति सारे विश्व में मान्य है, सब प्रकार की शूटिंग पर विधिक प्रतिबंध उचित समाधान नहीं है। जब चोर शिकारी को मालूम होता है कि उसे खेल शिकारी नहीं मिलेंगे, तब उसे अपने दुष्कृत्यों के लिए खुली छूट मिल जाती

है। विगत दस वर्षों में बाघ अभयारण्यों ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि वन के पारिस्थितिकी तंत्र के परिरक्षण से न केवल बाघ को लाभ होता है, वरन समस्त प्राकृतिकवास को लाभ होता है, जिसमें बाघ के शिकार हिरण, सूअर आदि जानवरों की संख्या भी अनुपात में बढ़ती है और प्राकृतिक संतुलन बना रहता है। यदि किसी क्षेत्र में नियंत्रण करने वाले शिकारी-जानवर नहीं हैं, तब खुर वाले जानवरों की संख्या इतनी बढ़ जाएगी जितनी कि उस क्षेत्र के प्राकृतिक वास की क्षमता नहीं है। और यदि उनकी संख्या उचित तरीके से कम नहीं की गई (शिकारी कर सकते हैं), अतिरिक्त जानवर निश्चित रूप से मरेंगे भूख से, कुपोषण से, रोगों से। और साथ ही लगातार मिल सकने वाला प्रोटीन-समृद्ध आहार स्रोत व्यर्थ ही नष्ट होगा। मेरे लिए वन्य जीवन संरक्षण नितांत व्यावहारिक तथा उपयोगितावादी है अर्थात वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सौंदर्यशास्त्रीय, मनोरंजन तथा आर्थिक कारणों से है जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य हैं; इसमें भावुकता का स्थान नहीं है। इसलिए आज केवल अहिंसा के सिद्धांत पर, जो पावन गोरक्षा से मिलता-जुलता है, किशोरों को जो प्रकृति संरक्षण की शिक्षा दी जा रही है, मेरी समझ में दुर्भाग्यपूर्ण है तथा सही नहीं है। मूलधन के ब्याज का उपयोग अवश्य करना चाहिए, मूलधन को नहीं छूना चाहिए। वन्य जीवन संरक्षण की यह मेरी व्याख्या है, तथा मेरा विश्वास है कि वन्य जीवन से भविष्य की संततियों को वही आनंद लेना चाहिए जो मैंने लिया है।

परिशिष्ट-1

पक्षिसर्वेक्षण के लिए ह्यू व्हिसलर के सुझाव : 1931

'हाल ही में किए गए कुछ पक्षिसर्वेक्षण, विशेषकर अमेरिकी तथा जर्मन सर्वेक्षणों ने यह दर्शाया है कि 'कैसे नहीं करना चाहिए'। वे संग्राहक को एक क्षेत्र में भेजते हैं मुख्यतया नमूनों को विपुल संख्या में संग्रहण करने के लिए ताकि वे नई जातियों का संग्रहण कर सकें तथा अतिरिक्त नमूनों का विनिमय कर सकें। सामान्य जैववैज्ञानिकीय उपयोगी जानकारियों को प्राप्त करने का वे कोई प्रयास नहीं करते हैं, वे हमें कुछ भी नहीं सिखाते, तथा उनकी रिपोर्ट पक्षिचर्म पर सूक्ष्म टिप्पणी मात्र रहती हैं। अतः वे (रिपोर्ट) निंदनीय रही हैं। मैं चाहता हूं कि आप अधिक विस्तृत तथा उपयोगी दृष्टि से कार्य करें, तथा मुझे मालूम है कि ऐसा करना आपकी सोच के अनुकूल है। आप एक जैववैज्ञानिक हैं और बंद कमरे वाले नीरस कर्मचारी नहीं हैं, इसलिए मुझे भरोसा है कि इस विषय में हम लोगों की दृष्टि एक ही है।

सर्वप्रथम हमें वास्तविक नमूने चाहिए (1) ताकि हम प्रदेश में पाई जाने वाली जातियों आदि की पहचान कर सकें, (2) आपकी क्षेत्रीय टिप्पणियां साक्ष्य के आधार पर पुष्ट हों, (3) अन्य क्षेत्रों के नमूनों के साथ तुलना हेतु तथा अभिलेख हेतु और (4) पक्षतियों[1] तथा निर्मोचन के अध्ययन के लिए। चर्मसंस्कार करने के कोल्हू सदृश शारीरिक श्रम साध्य से आप बचेंगे क्योंकि हैनरिक्स सरीखा चर्मसंस्कारक आपके साथ है तथा आपका मूल्यवान समय भी बचेगा। मुझे अपने दौरों में चर्मसंस्कार करने में समय लगाना पड़ता है जिसके फलस्वरूप अधिक महत्वपूर्ण काम करने के लिए मेरे पास समय कम पड़ जाता है। इससे आप मुक्त होंगे।

सुबह, शिविर के आसपास, आधे घंटे की शूटिंग सुलभ पक्षियों की शृंखला हेतु हैनरिक्स के लिए पर्याप्त कार्य दे सकेगी। कोई भी व्यक्ति जो बंदूक चला सकता है, आराम से तब तक के लिए उसे छह-सात पक्षी दे सकता है, जब तक कि अन्य महत्वपूर्ण कार्य न आएं। तत्पश्चात आप सारे क्षेत्र के सर्वेक्षण के लिए

1. पक्षतियों (plumages)

निश्चिंत होकर कार्य कर सकेंगे ताकि कोई भी जाति आप से छूट न जाए। लद्दाख में मैं बहुत सुबह निकल जाता था तथा दोपहर तक शिविर में लौटता था और सामान्यतया संध्या समय भी एक छोटा-सा चक्कर लगा लेता था। यदि कोई सहायक सामान्य जातियों को इकट्ठा कर सकता है, तब आप अधिक महत्वपूर्ण कार्य में अपना ध्यान लगा सकते हैं। यदि आप आठ-नौ कि.मी. का चक्कर लगा रहे हैं तब सतभाई या बुलबुल संग्रह करने में, जो कि शिविर के पास भी मिल सकती हैं, आप सुअवसर गंवा रहे हैं।

शिविर में पहुंचने पर उस क्षेत्र के बृहद् पैमाने के नक्शे का सावधानीपूर्वक अध्ययन आवश्यक होता है, भूखंडों की भिन्नता का जानना उपयोगी होता है। उनमें पक्षियों की सुलभता के लिए कुछ भूखंड अधिक उपयोगी हो सकते हैं कुछ कम। यदि आप अध्ययन नहीं करेंगे तो संभव है कि आप उसी प्रकार के खंडों में अधिक घूम रहे हैं और परिणामस्वरूप आप से कुछ प्रकार के नमूने छूट सकते हैं। नक्शा आपको बतला सकता है, उदाहरणार्थ, कि एक दिशा में नीची चट्टानी पहाड़ियां हैं, तथा दूसरी दिशा में खुला विस्तृत नदी तल है, और उसके दो-तीन कि.मी. आगे एक विशाल झील है, और एक अन्य क्षेत्र में आरक्षित वन तथा खुली कृषिभूमि है। इस तरह के प्रत्येक भूखंड में, सर्वसुलभ पक्षी तो होंगे ही जो उस समस्त क्षेत्र में फलते-फूलते हैं, साथ-साथ प्रत्येक भूखंड में अपने-अपने विशिष्ट पक्षी भी होंगे। इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक शिविर के लिए आप यह खोज करें कि (1) कौन-सी जातियां उस समस्त क्षेत्र में व्याप्त हैं, (2) कौन-सी विशेष भूखंडों तक सीमित हैं। उस स्थिति में आप जातियों के वितरण की भिन्नता के लिए जैववैज्ञानिकी कारकों को समझने की स्थिति में हो सकेंगे। उदाहरणार्थ यह सभी जानते हैं कि 'स्नाइप' झील के आसपास ही मिलती है, इसी तरह आहार, सुरक्षा, विशिष्ट अनुकूलन, प्रजनन आदि की असंख्य आवश्यकताएं हैं, जो विभिन्न जातियों के वितरण का नियंत्रण करती हैं। प्रत्येक प्रकार के भूखंड का गहन अध्ययन आवश्यक है ताकि आप उसके आवासियों (प्रवासियों) के विषय में समुचित जानकारी प्राप्त कर सकें। निहारन तथा चिंतन उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितना 'शूटिंग'। मैं अगले पत्र में जाति प्रति जाति पर मनन करने के लिए कुछ सुझाव देना चाहता हूं। इस समय मैं सामान्यीकरण कर रहा हूं अतएव, बजाय भूखंडों के विषय में और लिखने के केवल 'भरत' का उदाहरण दे रहा हूं। अपने शिविर के चारों तरफ, आठ कि.मी. के वृत्त में आपको संभवतया भरत के चार प्रकार, अनियत वितरण में मिलेंगे। उनके अनियत वितरण के लिए अवश्य कोई कारण होंगे, व्याख्याएं होंगी। उनका मूल आधार संभवतया आहार होता है, किंतु आहार की भिन्नता का कारण गोचर हो सकता है, एक भरत काली कपासी मिट्टी तक सीमित है; अन्य को साल वृक्ष के नीचे का खुला मैदान चाहिए; तीसरा यहां-वहां बिखरा हो सकता है, अवश्य

ही पारिस्थितिकीय कारणों से वह अपेक्षाकृत दुर्लभ है, अतएव पर्याप्त संख्या में उनके सदस्य उस क्षेत्र को आबाद करने के लिए उपलब्ध नहीं हैं। अतएव अमेरिकी प्रारूपों के अनुसार हमें ऐसी रिपोर्ट नहीं चाहिए :

मिराफ्रा कांतिलान्स *(Mirafra cantillans)* (भारतीय भरत) प्रचुर, 75 नमूने, शिविर ए.बी.सी.डी.

मिराफ्रा असमिका *(Mirafra. assamica)* (असमी भरत) बहुत दुर्लभ, 1 नमूना, शिविर बी

अलौदा अर्वेन्सिस *(Alauda arvensis)* (यूरेशियन भरत) 21 नमूने, शिविर ए तथा बी।

वे कारक जिनके फलस्वरूप इनकी तुलनात्मक बहुलता में तथा वितरण में अंतर आया है, उनके विषय में कुछ सुराग, कुछ संकेत आवश्यक हैं। पक्षिवैज्ञानिकी के आधार में यह होना चाहिए, तथा सही नामों को गंतव्य के लिए माध्यम मात्र होना चाहिए।

मैं समझता हूं कि उपलब्ध अवधि में आप इन सारे कारकों को पूरी तरह न समझ पाएं, किंतु हमें आपके विचार तथा अवलोकन चाहिए—समस्याओं को समझने के लिए तथा अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले अन्य कार्मिकों को प्रेरणा देने के लिए ताकि वे आपके सुझावों तथा टिप्पणियों की पुष्टि अथवा खंडन कर सकें।

आप लगातार यह प्रश्न पूछते रहें—क्यों? वितरण बिखरा हुआ क्यों है? पक्षी पड़ोस के खेतों में न होकर नदी के सूखे रेतीले पाट में क्यों है? वह जंगल में न होकर, मार्ग किनारे वृक्षावली में क्यों है ? इसके रूप में यह विशिष्टता क्यों है ? किसी भी पक्षी की कोई भी रूपविशिष्टता, *Pomatorhinus* (खंग सतभाई) की तलवारी चोंच, *Dissemurus* (पताका भुजंगा) की पताका पूंछ, तथा *Pyrrhulauda* की भारी चोंच से आपको उनके कुल के अन्य वंशों या जातियों से उन्हें विशिष्ट बनाने वाले इन उपकरणों के कारण जानने की उत्सुकता की प्रेरणा मिलनी चाहिए। जैसे-जैसे सर्वेक्षण का कार्य आगे बढ़ेगा, इस तरह की जिज्ञासाएं आपके मन में स्वभावतः जागेंगी।

अपनी नोट पुस्तिका को उतना ही महत्वपूर्ण मानो जितनी बंदूक। मैं सुझाव देना चाहता हूं कि आप अनेक नोट पुस्तिकाएं रखें। जिस तरह ह्यूम ने अपने सिंध भ्रमण में (स्ट्रे फैदर्स, अंक 1) तथा स्कली ने पूर्वी तुर्किस्तान (स्ट्रे फैदर्स, अंक 4) के भ्रमण में बड़ी सामान्य डायरियां रखी थीं, जिनमें उन्होंने दिन प्रतिदिन की गतिविधियां लिखी थीं, उसी तरह आप भी रखें। इनमें संबद्ध स्थलों, भूमिखंडों, प्रमुख दिखे हुए (पक्षियों के) प्रकार, विशेष रोचक विवरणों के साथ लिखे जा सकते हैं। सर्वेक्षण के पश्चात, उसे सर्वेक्षण रिपोर्ट की प्रस्तावना के रूप में सरलतापूर्वक

संगठित किया जा सकता है।

मैं, व्यक्तिगत रूप से, एक और नोट पुस्तिका रखता हूं—जातियों के लिए जिसमें मैं प्रत्येक दिन जो जातियां मिलती हैं उनके नाम, स्थल तथा तारीख और संबंधित रोचक तथ्य लिखता हूं। प्रत्येक नई जाति के लिए अलग स्थान दिया जाता है जिसमें उसका शीर्षक भी लिखा जाता है। उन पृष्ठों को रोज देखने से वे टिप्पणियां या नोट्स याद हो जाते हैं। उससे वितरण भी स्पष्ट हो जाता है। पूर्वी घाट में कई शिविरों में अनेक सुलभ पक्षियों का संग्रहण नहीं किया गया था क्योंकि अन्य शिविरों में वे पर्याप्त मात्रा में संग्रहीत किए जा चुके थे। परंतु रोज की डायरी में उनके अवलोकन या निहारन के विवरण भी नहीं लिखे गए थे, अतएव वे फलां शिविर में दिखे थे या नहीं यह पूर्वी घाट की सर्वेक्षण रिपोर्ट में पता ही नहीं लगता था और इससे बहुत रोष होता था। इन जातियों के शीर्षकों के तहत जो संख्याएं लिखी गईं थीं उनमें बहुत विभिन्नता थी। उदाहरणार्थ, 'जंगल सतभाई (जंगल बैबलर) पर टिप्पणी 'मई 2-31, शिविर-हाइलाकंडी, सुलभ तथा सभी भूखंडों में सामान्य'। प्रवासी या अनियत वितरित जातियों के लिए पूरे विवरण के साथ अभिलेख प्रत्येक दिन लिखे गए थे। मेरे पास पंजाब प्रदेश से आने-जाने वाले प्रवासी पक्षियों के बहुत वर्षों के प्रतिदिन के अभिलेख हैं, जिनसे उनके पारण या पाथेय—आवर्तकाल (passage periods) की घटाबढ़ी दिखती है।

नमूने के नरम हिस्सों के लिए मैं एक लघु नोट पुस्तिका रखना चाहता हूं। नरम हिस्सों के रंगों के नाम लेबल पर नहीं लिखने चाहिए। प्रत्येक नई जाति के लिए नया पृष्ठ होना चाहिए : प्रथम नमूने के नरम हिस्सों के नाम बड़ी सावधानी से, चर्म की क्रम संख्या के साथ लिखने चाहिए। प्रत्येक अगले नमूने की तुलना इस 'प्रविष्टि' से की जाएगी, तथा उनकी समानताएं एवं असमानताएं उसी की क्रम संख्या में लिखी जाएंगी। ऐसा करने से वर्णन की एकरूपता बनी रहेगी, तथा जब चर्मसंस्कार होंगे तब हम देख सकेंगे कि नरम उपांगों (हिस्सों) के अंतरों में तथा लिंग, उम्र तथा ऋतु के अंतरों में कोई अंतर्संबंध है अथवा नहीं। लेबल प्रति लेबल लिखने की अति सामान्य प्रचलित विधि समय बहुत लेती है किंतु फल बहुत कम देती है—नमूने बंट जाते हैं, परिणामों की संबद्धता सरलता से नहीं दिखती, और यदि दो लेबलों पर भिन्न रंग लिखे हैं तब यह समझ में नहीं आता कि कहीं वे विभिन्न रंग एक ही रंग के दो अलग दिनों में देखे गए वर्णन हैं या और कुछ। इसका तात्पर्य यह है कि दिन के नमूने लाने के बाद, सबसे पहले आप उनको चर्मों के 'आनुक्रमिक रजिस्टर' में, चर्मसंस्कार पूर्व लिखें, क्रम संख्या दें, ताकि प्रत्येक पक्षी-नमूने की पहचान सुनिश्चित हो जाए। उसके नरम (हिस्सों) उपांगों को आप शीघ्रातिशीघ्र 'नोट' कर लेंगे। यह छोटा रजिस्टर, आपके झोले में आपके साथ बाहर जा सकता है। मुंह के भीतर के रंगों को लिखना न भूलें, जो कि अक्सर छोड़

दिए जाते हैं, किंतु वे बहुत कुछ बतला सकते हैं।

पक्षियों का मांस सहित वजन लेने का कष्ट न करें, हां बड़े प्रकार के पक्षियों का वजन लेना उपयोगी होता है।

आपको लेबल पर निम्नलिखित जानकारी देनी चाहिए (1) अंगों की स्थिति (2) कपाल की स्थिति (3) वसा (4) निर्मोचन।

नमूनों के लिंग निर्धारण को नमूने तैयार करते समय सर्वाधिक महत्व दें। गोली (छर्रे) के निशान, गर्मी, कैशोर्य, अप्रजनन ऋतु आदि किन्हीं नमूनों के लिंग निर्धारण को लगभग असंभव बना देंगे, हैनरिक्स सभी नमूनों का लिंग निर्धारण नहीं कर पाएगा। किंतु मेरे लिए यह जानना अत्यावश्यक है कि जब आप 'नर' का लिंग निर्धारण करते हैं तब आपने उसे 'चीरने' के बाद नितांत निश्ंचित होने के बाद ही लिखा है। पक्षतियों से अनुमान न लगाएं—मैं तो कर सकता हूं, परंतु इस निर्धारण में आप जितनी अपेक्षा करते हैं, पक्षतियां उससे कहीं कम विश्वसनीय हैं। क्योंकि लोगों ने सौ वर्षों से लिंग का निर्धारण काफी गलत किया है। इसलिए पक्षतियों के विषय में सही तथा पूरी जानकारी हमें नहीं मिली। जैसा लेबल पर लिखा है, उपांगों का वर्णन तदनुसार ही करें—डिंब ग्रंथियों तथा वृषण ग्रंथियों का, जहां संभव हो माप के लिए रेखाचित्र दें। यदि आप अनिश्चित हैं तब आप लिखें—'अंग अस्पष्ट किंतु दृष्ट्या।' आप इस जानकारी को जितना अधिक महत्व देंगे, मैं उस चर्म से उतनी ही अधिक जानकारी विश्वसनीय रूप से निकाल पाऊंगा। सेने के स्थल (उद्‌भवन स्थल) को चिह्नित करें। यदि घोंसले में ही मारा है, तब लिखें, हम नहीं जानते कि कौन से लिंग अंडों का उद्‌भवन[1] करते हैं।

जहां तक 'कपाल' के शिशु अथवा वयस्क के निर्धारण करने का प्रश्न है, अनुभवी चर्मसंस्कार—कपाल में अस्थीकरण की मात्रा को देखकर (एक सीमा तक) कर सकता है। शावक का कपाल बहुत नरम होता है, लगभग नरमास्थि रूप में, पूर्ण अस्थि बनने के लिए 3-4 माह लगते हैं। वह कपाल के आधार में मेरुदंड के प्रवेश से, तथा आंखों के पीछे से आरंभ होता है। अस्थीकरण के दोनों क्षेत्र बढ़ते हुए मिल जाते हैं। 'शावक-उत्तर' निर्मोचन अवस्था के बाद भी कपाल के केंद्र में खिड़की के समान एक हिस्से का अस्थीकरण होना रह जाता है, और धीरे-धीरे विकास के साथ वह खिड़की बंद हो जाती है। अनुभवी चर्मसंस्कारक शीघ्र ही यह जानकारी समझ लेता है, यदि कपाल के प्रजनन ऋतु एवं नवंबर (तत्पश्चात कोई लाभ नहीं) के बीच की अस्थीकरण की अवस्था पर टिप्पणियां लिखी जाएं, तब पक्षतियों के अध्ययन में भारी सहायता मिलती है क्योंकि पक्षतियों के प्रकार की चिंता किए बिना, अपूर्ण अस्थीकरण एकदम घोषित कर देता है कि पक्षी शावक अवस्था में है।

1. उद्‌भवन (Incubation)

पक्षी में वसा का अत्यधिक मात्रा में होना यह दर्शाता है कि वह प्रजनन अवस्था में नहीं था, और संभवतया वह प्रवास में था। निर्मोचन की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति पक्षति के अध्ययन में सहायता करती है अतएव इसे भी लिखना चाहिए। विवरणों की आवश्यकता नहीं है।

मैं चाहता हूं कि आप आहार पर विशेष ध्यान दें (घिसे पिटे वर्णनों—'कीट', 'बीज'—द्वारा नहीं) क्योंकि किन्हीं जातियों द्वारा स्पष्टतया पसंदीदा विशेष आहार, उनके वितरण की व्याख्या करने में मदद कर सकता है। यह उचित है कि आप अपने साथ छोटी परखनलियां अच्छी संख्या में ले जाएं, तथा पक्षियों के पेट तथा पोटे की वस्तुओं को परखनलियों में हल्की स्पिरिट में, यथासमय पहचानार्थ रख लें।

छोटी परखनलियों में लघु शावक भी परिरक्षित कर रखे जा सकते हैं। जिन पक्षियों के घोंसले मिल सकते हैं उनके एक या दो लघु शावकों का परिरक्षण करना चाहिए ताकि उनके कोमल रोमों का अध्ययन किया जा सके। लघु शावकों को अंडों से अधिक मूल्यवान समझिए। रोमिल नीड़ त्यागी शावकों तथा बड़े शावकों की पहचान करने में अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता है।

इतनी अधिक खिचड़ी पढ़ते समय आप सोचेंगे कि इसमें नवीन कुछ नहीं है, तथा समस्त निर्देश तो सामान्य बोध की बातें हैं। मैं आपसे सहमत हूं, किंतु मेरा अनुभव है कि इन नवीन तथा सामान्य बोध वाले निर्देशों के पालन के अभाव में दस में से नौ संग्रहण अभियान तथा उनसे प्राप्त संग्रह अपना अधिकांश मूल्य खो देते हैं। आप उनका पालन करें, तब हम हैदराबाद रियासत के पक्षियों पर उत्तम रिपोर्ट लिख सकेंगे जिसका महत्व 'स्थानीय' से कहीं अधिक होगा।

परिशिष्ट-2

गुदड़ी के लाल

कुछ बचे हुए पत्रों में से चुनी हुई मणियां
(वर्गाकार कोष्ठक की टिप्पणियां मेरी हैं)

1. ह्यू व्हिसलर से सा.अ. को : 'बैटल, 13 सितंबर, 1938। मुझे यह जानकारी बहुत रोचक लगी कि आप पुराविद हैं। मैं भी हूं, ससैक्स पुरातत्वीय संस्था की समिति में हूं, मेरे पितामह जिसके उपाध्यक्ष थे। किंतु इस दिशा में मैं अपनी गतिविधियों पर नियंत्रण रखता हूं ताकि पक्षियों को नुकसान न हो।'

2. रिचर्ड मैनहर्ट्ज़न से सा.अ. को : 'लंदन, 16 दिसंबर, 1938...जब आप आशा करते हैं कि हिटलर तथा मुसोलिनी को जो चाहिए, वह उन्हें मिलेगा, तब क्या आपका अभिप्राय युद्ध से है ? यदि हां तब, ऐसा प्रतीत होता है कि आपकी आशाएं निकट भविष्य में साकार हो जाएंगी। मैंने इतना पागलपन शायद ही कभी देखा हो। ऐसे उन्मादियों के लिए युद्धमात्र ही उपचार है। वे 'बल' से परे कुछ समझते ही नहीं। किंतु इस बार पूरे टुकड़े-टुकड़े होंगे, बिना 'स्वास्थ्य लाभ' के खतरे के। इस तरह के गंभीर आघात हम इतने जल्दी-जल्दी नहीं सह सकते। एक शताब्दी में एक उठा-पटक तो मैं सह सकता हूं, किंतु प्रत्येक दशाब्दि में यह घृणित है, तथा पक्षिवैज्ञानिकी एवं मेरे तदर्थ कार्य में गंभीर बाधा उत्पन्न करती है। इस पतझड़ में स्ट्रैसैमान यहां आए थे। वे बहुत अच्छे साथी हैं किंतु [हिटलर तथा नात्सी राजनीति के विषय में] आवश्यकता से अधिक बातें करते हैं जिसके फलस्वरूप वे कठिनाई में पड़ सकते हैं। वे हिटलर से असहमति व्यक्त करते हैं किंतु किसी विकल्प का सुझाव नहीं दे सकते। घोर विपदाओं से ग्रस्त यहूदी भयंकर यंत्रणाओं से गुजर रहे हैं, और यहां सभी यथाशक्ति सहायता कर रहे हैं, किंतु यह करना अत्यंत कठिन है क्योंकि जर्मन यहूदी अत्यंत अप्रिय लोग हैं। उनसे तभी तक प्रेम किया जा सकता है, सहानुभूति की जा सकती है जब तक कि उनके व्यक्तिगत संपर्क में न आएं। उन्होंने, एक प्रकार से अपने आपको यूरोपीय-अछूत बना लिया है और अब यूरोपीय गांधी की आवश्यकता है जो उनके लिए संघर्ष करे।' [बैज़ल में 1954

में हो रही अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिकीय कांग्रेस में मैं (सा.अ.) विश्वविद्यालय के छात्रावास में अपने मित्र, उत्कृष्ट पक्षिवैज्ञानिक हर्बर्ट फ्रीडमान के साथ एक ही कमरे में था—जो स्वयं एक यहूदी हैं तथा बहुत प्रिय अमेरिकी हैं। युद्ध के दौरान जर्मन यहूदियों की दुर्दशा पर चर्चा चल पड़ी, उस समय उन्होंने एक जोरदार टिप्पणी की जो मुझे याद है, 'यदि जर्मनी के समस्त यहूदी, अमेरिकी यहूदियों के समान हैं तब मुझे हिटलर के साथ पूरी सहानुभूति है'—अपने आप में उचित तथा वाग्विदग्ध !]

3. अर्विन स्ट्रैसैमान से सा.अ. को : म्युन्शैन (म्यूनिख) तुष्टिकरण तथा विश्वयुद्ध विस्फोट के बीच की अवधि में हमारे परस्पर मित्र कर्नल मैनहर्ट्ज़न के साथ लंदन में रहकर लौटने के बाद बर्लिन, 1 जनवरी 1939; यह नववर्ष तथा संभवतया निर्णायक वर्ष का प्रथम दिन है। आज रविवार है, चौथे तल से छोटे से फ्लैट के सामने के छप्परों पर पड़ी बर्फ पर सूरज की उष्ण किरणें चमक रही हैं—और ऐसे शांतिमय प्रभात में मैं आपको पत्र लिख रहा हूं जो पिछले एक लंबे वर्ष से लगातार मेरे मन में था, जब से तैहमीना और आपकी 1938 की क्रिसमस का मनमोहक विस्तृत समाचार पढ़ा था!। यह आशाओं, उपलब्धियों तथा निराशाओं से भरी विक्षुब्ध तथा सक्रिय अवधि का सिंहावलोकन होगा। मैं, दुर्भाग्यवश पूरे विवरण नहीं लिख सकता, यद्यपि स्थिति को पूरा समझने में वह सहायता करेगा, परंतु मैं सोचता हूं कि वह चित्र जो अपने पहले ही बनाया [हिटलर, नात्सी तथा शिकार-यहूदियों का] है, उसमें वह कुछ विशेष नहीं जोड़ पाएगा। ''रुएं अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिकीय कांग्रेस अधिवेशन' पश्चात, मैंने कर्नल मैनहर्ट्ज़न के आमंत्रण पर, अपनी बहन (हेलमुट बेयर की मां) के साथ, एक आनंददायक पखवारा बिताया, जिस बीच ब्रिटिश म्यूजियम में कुछ कार्य भी किया किंतु मुख्यतया आनंदप्रद वातावरण में जीवन का आनंद लूटा।...यदि आप भारत के मरुस्थल जाएं, आप—मैनहर्ट्ज़न की शैली के अनुसार पर्यावरण के साथ पक्षियों के रंगों का अनुकूलन दर्शाने के लिए भूमिवासी पक्षियों के संग्रहण में रेत भी अवश्य इकट्ठी करना चाहेंगे। दक्षिण पश्चिमी अफ्रीका में, जहां मैंने इस पद्धति का सुझाव डा. नियेठम्मेर को दिया था, वहां इसने बहुत अच्छा काम किया। भिन्न रंग वाली जमीन—लाल, काली आदि की तरफ हमेशा ध्यान दें। नील नदी की घाटी के शिखी भरतों के विषय में सोचें...मुझे लग रहा है कि, श्री व्हिसलर की अनुशंसा की सहायता से, आपने जो त्रावणकोर के पक्षियों का अच्छी संख्या में तथा कुछ दुर्लभ जातियों का स्वागत योग्य उपहार देकर हमारे भारतीय संग्रह का संवर्धन किया है, उसके लिए मैंने आपको धन्यवाद नहीं दिया है। मैंने निश्चित ही उसकी अत्यंत आभारपूर्वक प्रशंसा की थी। उसकी 'लेबलिंग' कितनी उत्कृष्ट थी !''

4. ह्यू व्हिसलर से सा.अ. को : बैटल, 6 अप्रैल, 1939, हिटलर का नाश हो ! माह के अंत में मैंने पुनः पूर्वी पोलैंड जाने का कार्यक्रम बनाया था। अब कहीं

युद्ध न शुरू हो जाए, इसलिए मैं इंग्लैंड नहीं छोड़ सकता। जीवन तो वैसे ही छोटा है, और उधर वह जघन्य उन्मादी, मात्र अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के लिए, सिकंदर, नेपोलियन तथा और जो भी हों उन सभी को पीछे छोड़ने के लिए, सारे विश्व में खलबली मचा रहा है। यदि कभी कहीं भी कोई राजनैतिक हत्या उचित ठहराई जा सकती है !—इस भावना को रोका नहीं जा सकता—एक जीवन करोड़ों जीवन बचा सकता है। यदि अप्रैल बच भी गया तब भी संकट अल्पकाल के लिए, फसल पकने तक, टलेगा—और मेरा विचार है कि वह तब मुझे अल्जीरिया जाने से रोकेगा। क्या दुनिया है !'

5. ह्यू ह्विसलर से सा.अ. को : (9 जुलाई, 1939 को तैहमीना की मृत्यु का समाचार 3 अगस्त को पाने के बाद) बैटल, 3 अगस्त, 1939; हमारे पत्राचार में अवरोध आने से मुझे कुछ आशंका हो रही थी कि कहीं कुछ अनिष्ट तो नहीं है कि आज आपके 26 जुलाई के पत्र ने अत्यंत दुखद समाचार दिया। आपके लिए मैं कितना दुखी हूं तथा कितनी सहानुभूति से भरा हुआ हूं, मैं व्यक्त नहीं कर सकता। यह मेरा सौभाग्य नहीं था कि आपकी पत्नी से यथार्थ में मिलता और उनके साथ मिलकर हर्षित होता, परंतु यह असंभव था कि आपके साथ वर्षों तक हुए लगातार पत्राचार से मुझे यह समझ में न आए कि आप निष्ठावान दंपत्ति हैं तथा वे आपकी ऐसी दुर्लभ संगिनी थीं जो बहुत कम व्यक्तियों के सौभाग्य में होती हैं। अतएव आपके हृदय में जो संताप तथा दुख है उसका तनिक-सा आभास मुझे हो सकता है, और कि आप इस स्थिति में विधाता के दुर्जेय विधान पर विश्वास नहीं कर सकते। मेरा कोई भी शब्द आपकी सहायता नहीं कर सकता। आपको अकेले ही यह दुख भोगना है तथा अकेले ही उसे जीतना है, तथा आप उसे अवश्य जीतेंगे क्योंकि आप जानते हैं कि उनकी भी यही इच्छा होती। किंतु जब आप अपना युद्ध लड़ रहे हैं, आपको इस अनुभूति से कि आपके मित्र आपके लिए दुखी हैं तथा सहानुभूति कर रहे हैं, जो भी तनिक सी सहायता तथा सांत्वना की कणिकाएं मिल सकती हैं, उन्हें अवश्य स्वीकारें। मैं कितना कितना दुखी हूं। समस्त आदर सहित।'

6. ह्यू ह्विसलर से सा.अ. को : 'बैटल, 20 सितंबर, 1939, मुझे लगता है कि यह युद्ध लंबा नहीं चलेगा, और यदि मैं यहां फंस गया हूं तब कार्य हेतु पार्सल (सर्वेक्षण पक्षिचर्म) का आना विशेष भगवत्कृपा होगी। कार्य हेतु, प्रतीक्षारत भारतीय पक्षियों के पार्सल के हर्ष तथा पूर्ण अज्ञात रोमांच के आनंद को आप नहीं जानते !'

7. ह्यू ह्विसलर से सा.अ. को : (मैसूर सर्वेक्षण की तैयारी के समय) 'बैटल, 26 सितंबर, 1939। मैसूर रिसायत में जो पक्षी आपको मिल सकते हैं, उनकी सूची तथा वर्गीकरण दृष्टि से मैं क्या चाहूंगा, संलग्न है। आपको क्षेत्र-टिप्पणियों पर ध्यान देना आवश्यक होगा—हमारी नवीन ग्रंथिका (हैंडबुक) की तैयारी ने यह दर्शा दिया है कि अधिकांश पक्षियों पर, सुलभ पक्षियों पर भी, क्षेत्र-टिप्पणियों के

विषय में कितनी कम जानकारी है। सामान्य दृष्टि से मैं पूर्वी तथा पश्चिमी घाट की आवासी जातियों के भीतरी क्षेत्रों के विवरण चाहता हूं। उस रियासत के आर्द्र तथा शुष्क खंडों पर भी आपको कार्य करना होगा। बैट्स के कुर्ग-नोट्स दर्शाते हैं कि ये खंड कितने स्थानीय हो सकते हैं।'

8. ह्यू ह्विसलर से एस.एच. प्रेटर को (क्यूरेटर बी.एन.एच.एस., मैसूर सर्वेक्षण पर टिप्पणी करते हुए) : 'बैटल, 5 फरवरी, 1940। हम लोग अंततः भारतीय पक्षियों के वितरण की उपयुक्त गवेषणा कर पा रहे हैं—और यह सब आपके उत्साह तथा इन सर्वेक्षणों को पूरा करने के लिए आपके दृढ़ संकल्प के कारण हो रहा है! पक्षिवैज्ञानिकों को आपका आभार मानने की आवश्यकता है।'

9. ह्यू ह्विसलर से सा.आ. को : (संदर्भ—मैंने ह्विसलर से कुछ मैसूर सर्वेक्षण के पक्षिचर्मों को स्ट्रैसैमान को मेरी तरफ से उपहार स्वरूप भेजने के लिए अनुरोध किया था) 'बैटल, 26 अप्रैल, 1940। लगभग एक दर्जन स्ट्रैसैमान के लिए अंकित थे, किंतु सचमुच उन्हें उन तक भेजना असंभव है (युद्ध हो रहा है)—समाचारपत्रों में छपे वारसा संग्रह के बलात्कार से ही उन्हें, अभी, संतोष करना पड़ेगा !'

10, ह्यू ह्विसलर से सा.अ. को : (एक उग्र राजनैतिक भाषण पर प्रतिक्रिया स्वरूप) 'बैटल, 29 अगस्त, 1941। इतना तो निश्चित है कि दोनों भारतीय तथा ब्रिटिश दृष्टिकोणों में कुछ गलत है कुछ सही है, तथा यह दोनों पक्षों के लिए बेहतर होगा कि वे दूसरे पक्ष के दृष्टिकोण को थोड़ा और समझने का प्रयत्न करें। अतएव मैं इसे यहीं छोड़ देता हूं। आप अंग्रेजों से कितनी भी घृणा करें, उनकी कितनी भी निंदा करें, मैं आशा करता हूं आप एक पक्षिवैज्ञानिक एच.डब्ल्यू. से उसके घृणित जाति के होने पर भी, मित्रता का भाव रख सकते हैं। मैं, अपनी तरफ से यह अनुभूति करता हूं कि सालिम अली जो एक उत्कृष्ट पक्षिवैज्ञानिक हैं, मेरे अच्छे मित्र हैं; उनके लिए अति आदर सहित।'

11. ह्यू ह्विसलर से सा.अ. को : (टाइसहर्स्ट की मृत्यु उपरांत) 'बैटल, 5 अक्तूबर, 1941। यह खेद की बात है कि आपके और उनके संबंध मैत्रीपूर्ण नहीं थे। किंतु, रोष करने के लिए अब बहुत विलंब हो चुका है।...मैं सभी भरतों तथा उनसे संबंधित मिट्टी के नमूनों को निकाल रहा हूं और यह बड़ा रोचक सिद्ध हो रहा है। कुछ जातियों में, जैसे 'कल भरत' उनके रंग तथा मिट्टी के रंगों में कोई संबंध नहीं है। तथा कुछ अन्य में यथा—कालनट्रैला, अमनोमानेस, गलेरिदा में बहुत निकट का संबंध है : उदाहरणार्थ गलेरिदा थेक्ली, (नील नदी की घाटी आदि का)। पुर्तगाल के काले से लेकर सहारा के चमकदार लाल रंग के भरतों की छह जातियों का उनकी मिट्टी के साथ संग्रहण किया है—प्रत्येक जाति अपनी मिट्टी के रंग का परिशुद्ध प्रतिबिंब है।'

12. ई.एच.एन. लाउथर से सा.अ. को : इलाहाबाद, 2 अगस्त, 1942। [भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस के 'भारत छोड़ो आंदोलन' प्रस्ताव के पारित होने के एक सप्ताह पहले] आप 7 अप्रैल के अपने पत्र में लगभग राजनैतिक बन गए ! सर स्टैफर्ड क्रिप्स के अपने अभियान में असफल होने का मुझे दुख है, और यद्यपि मैं भारत को प्यार करता हूं तथा भारत में मेरे अनेक बहुत प्रिय मित्र है, मेरे विचार में गांधीजी का यूरोपियों के प्रति जो ढंग है, उससे इस अत्यंत कठिन समस्या का हल कभी नहीं निकलेगा। पहले तो हिंदुओं तथा मुसलमानों में, सभी वर्गों तथा यूरोपियों में आपसी समझ होनी चाहिए। और यह बाद वाली, मेरे विचार में, तब तक नहीं आएगी जब तक कि ऊंचे वर्गों के भारतीय तथा यूरोपीय, आपस में खुलकर एक-दूसरे से विवाह नहीं करते। दोनों ही पक्षों को बेहतर समझ की आवश्यकता है। इसका अर्थ है कि यह (सुझाव) समस्या के लिए एक नवीन पहुंच है, परंतु आप मेरी बात पकड़ लें, रंगभेद को समाप्त होना पड़ेगा—और जब शांति होगी तब यह लोप होने वाली चीजों में से एक होगा और यह क्यों न जाए? यूरोपीय को क्या अधिकार है कि वह अपने को भारतीय से ऊंचा समझे? वह नहीं है, और वह यह जानता है। तथा उसे मिश्र विवाहों से उत्पन्न बच्चों के लिए "छोटे काले दोगले" सोचना बंद करना पड़ेगा, जैसा कि वह अभी बहुधा सोचता है।

13. माननीय (श्रीमती) जोन व्हिसलर से सा.अ. को : बैटल, 9 अगस्त, 1943 [कैंसर से 7 जुलाई 43 को, एच.डब्ल्यू. की मृत्यु पर मेरी संवेदना की अभिव्यक्ति पर] मैं आपको यह बतलाना चाहती हूं कि वे आपका और आपके सारे ज्ञान का कितना अधिक सम्मान करते थे, और आपकी मित्रता की कितनी अधिक प्रशंसा करते थे—और आपके अद्भुत पत्रों ने उन्हें कितना अधिक आनंद दिया। उन्हें आपकी पुस्तक (भारत के पक्षी) तथा उसकी प्रस्तावना में आपने जो उनके प्रति सद्भावना पूर्ण शब्द कहे थे, से अधिक परितोष मिला था। मुझे मालूम है कि आप दोनों के मध्य कभी भी कोई भी प्रतियोगिता अथवा बैर की भावना नहीं रही—आपकी मित्रता को मलिन करने वाली कुछ भी नहीं, और इसीलिए मैं आपसे सलाह लेना चाहती हूं। [एच.डब्ल्यू. की पुस्तक 'पापुलर हैंडबुक ऑफ इंडियन बर्ड्स' के चौथे संस्करण के विषय में जिसका प्रकाशन 1949 में हुआ। एच.डब्ल्यू. का तथा एच. डब्ल्यू. वैट का कोई 26,000 चर्मों वाला संग्रह तथा उनके सारे सूक्ष्म पक्षिनोट्स अब ब्रिटिश म्यूजियम (प्राकृतिक इतिहास) में हैं।]

14. 1968 में जब मैं कुछ समय क्षेत्र-कार्य के लिए बंबई से बाहर गया था, मेरे साथी पक्षिवैज्ञानिक तथा मित्र डा. ए.आई. इवानोव का एक संवेदना पत्र 'मेरे प्रिय मित्र सालिम अली की दुखद मृत्यु पर' सोसायटी आया था। डा. इवानोव प्राणिवैज्ञानिकीय संस्था, लेनिनग्राड में कार्य करते थे, तथा उनके कथनानुसार उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सिंह (?) ने उन्हें यह दुखद समाचार दिया था। वह पत्र ऐसे सद्गुणों के अतिशयोक्तिपूर्ण गुणगान से भरा था जो बहुधा मरणोपरांत

ही खोजे जाते हैं ! ऐसे व्यक्ति बिरले हैं जिन्हें जीवित अवस्था में यह जानने का संतोष प्राप्त होता है कि वे कितने उत्कृष्ट थे तथा कितने अपरिहार्य थे, और सौभाग्य से मुझे यह सुअवसर एक बार नहीं, वरन दो भिन्न मृतोत्थानों (रिज़रेक्शंस) में मिला था। बंबई लौटने पर मुझे डा. इवानोव का पत्र दिखलाया गया और मैंने बिना एक क्षण गंवाए उन्हें समझाया कि उनकी जानकारी नितांत गलत थी।

(क) डॉ. इवानोव से सा. अ. को : लेनिन ग्राड, 9 जुलाई, 1968। जब मैंने आपका पत्र पढ़ा और मुझे मालूम हुआ कि जो सूचना मेरे पास थी वह नितांत गलत थी, तब मुझे जो हर्ष हुआ मैं उसे अभिव्यक्त नहीं कर सकता ! रूसी 'शकुन-विचार' के अनुसार (एवमेव) आपको अब उतना जीवित रहना है जितना कि अधिक से अधिक एक मानव के लिए संभव है। मेरे मित्र भी शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए।'

जब तक मैं रूसी शकुन-विचार के अनुसार जी रहा था, सब बढ़िया चल रहा था जो कि अगस्त 1974 तक था, उसी समय कैनवरा (आस्ट्रेलिया) में 'अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिकीय कांग्रेस' तथा पक्षिपरिरक्षण हेतु अंतर्राष्ट्रीय परिषद के अधिवेशन हुए जिनमें भाग लेने की मैं अपेक्षा कर रहा था, कर नहीं सका।

(ख) 'ब्रिटिश आर्निथॉलॉजिस्ट्स' यूनियन (ब्रिटिश पक्षिवैज्ञानिक यूनियन) के अध्यक्ष गाई माउंट फर्ट से श्रीमती सालिम अली को [जिनका देहांत 1939 में हो गया था]। : 'ब्लैक-बॉयज़, ससैक्स, 21 अगस्त, 74, पिछले सप्ताह अंतर्राष्ट्रीय पक्षिवैज्ञानिकीय कांग्रेस, कैनबरा में आपके पति की मृत्यु का समाचार घोषित किया गया था। जिससे सभी बहुत दुखी हुए। वे विश्व के सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा विशिष्ट पक्षिवैज्ञानिकों में से एक थे, तथा उनकी मृत्यु से सारे सभ्य जगत के मित्र बहुत उदास होंगे। मुझे उन्हें पिछले चालीस वर्षों से जानने का विशेष अधिकार मिला था। ब्रिटिश आर्निथॉलॉजिस्ट्स यूनियन के सदस्यों तथा परिषद की ओर से मैं आपको अपनी गहनतम संवेदनाएं प्रेषित करता हूं। आपके दुखद विछोह के लिए मेरी पत्नी भी मेरे साथ व्यक्तिगत सहानुभूति अभिव्यक्त करना चाहती हैं।'

(ग) माई माउन्टफर्ट से सा.अ. को : 'ब्लैक बॉयज़, ससैक्स, 4 सितंबर, 1974। आपके खुशी से भरे पत्र को पढ़कर मैं जितना हर्षित हूं उसे व्यक्त नहीं कर सकता। उसमें आपने बतलाया कि आई.ओ.सी. में जो आपके मृत्यु की घोषणा हुई थी वह "थोड़ी कुछ भ्रामक थी"...सभी लोग बहुत प्रसन्न होंगे। आप अकेले ऐसे प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं हैं जिसने ऐसी अफवाह को गलत सिद्ध किया है, और मैं आशा करता हूं कि आप इस घटना का अपनी आत्मकथा में अच्छा उपयोग करेंगे। यह तो मेरे साथ भी हुआ था, युद्ध के दिनों में जब मैंने अपना नाम युद्ध-मृतक सूची में पढ़ा था !'

एक और मित्र, आई.सी.बी.पी. के एशिया संभाग के अध्यक्ष जापान के डा.

योशिमारो यामाशीना ने भी यह अफवाह सुनी थी।

(घ) **डा. यामाशीना से श्रीमती सालिम अली को :** टोकियो, 11 सितंबर, 1974...आपके प्रिय पति के विछोह के दुखी अवसर पर मेरे हृदय के अंतस्तल से गहरी संवेदनाएं...1958 से, जब मैं उनसे पहली बार हेलसिंकी में मिला था, वे मेरी कृपापूर्वक सहायता करते रहे हैं...मैंने उन्हें हमेशा अपने गुरु तथा पिता के समान आदर दिया है। अचानक 19 अगस्त को मैंने उनके देहांत का पीड़ादायक समाचार सुना। कार्यकारी समिति की बैठक के प्रारंभ में हम लोगों ने उनकी आत्मा की शांति हेतु एक मिनट प्रार्थना की। कैनबरा में हम लोगों को उनकी मृत्यु का कारण तथा समय का पता नहीं लगा, हम लोग अभी तक वह जानने के उत्सुक हैं...'

(च) **डॉ. यामाशीना से सा.अ. को :** टोक्यो, 1 अक्तूबर, 1974 आपके 16 सितंबर, 1974 के पत्र के लिए धन्यवाद जिसमें आपका शुभ समाचार मिला। मुझे नहीं मालूम कि गलत खबर किस तरह फैली, किंतु आपके अपने स्वस्थ होने के समाचार से बढ़कर हर्ष मुझे कोई और समाचार नहीं दे सकता। जापान में हमारे यहां पुरानी कहावत है (प्रकटतः सार्वभौमिक) : "जो गलती से मृत घोषित किया गया, वह दीर्घायु होता है।" अतएव मुझे अब पूर्ण विश्वास है कि आप अब से पूर्ण स्वस्थ रहेंगे तथा दीर्घकाल तक हमेशा की तरह सक्रिय रहेंगे।'

15. इर्विन स्ट्रैसैमान से सा.अ. को : 'बर्लिन 26 मई, 1972, आज सुबह आपके महानग्रंथ का पांचवां खंड आया, उसके पहले पृष्ठ पर आपके व्यक्तिगत समर्पण का मैं बहुत आदर करता हूं। अपने पूर्ववर्ती खंडों की तरह, निश्चित ही यह खंड भी, मेरे अध्ययन को आगे बढ़ाने में उपयोगी होगा। आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। ब्रिटिश म्यूज़ियम के पक्षिसंग्रहण [साउथ कैंसिंग्टन से ले जाया गया] के पुनरुद्घाटन के अवसर पर 29 जुलाई को हम दोनों ट्रिंग में होंगे। इस गंवई नगर में सबसे पहले मैं 1910 में ठहरा था, बाली तथा मालक्काज़ में अंर्स्ट हार्टर्ट (मेरे गुरु) द्वारा स्वागत तथा शिक्षित किए जाने से पहले। बहुत बहुत पहले!'

...जैसा हमें अन्य देखते हैं, स्वयं को वैसा देखने के लिए एक अभियान के नेता के खरे मत जिसने हानिकारक पूर्वाग्रहों से प्रारंभ किया और समझदार तथा मूल्यवान मित्र के रूप में समापन किया।

कर्नल रिचर्ड मैनहर्ट्ज़न डी.एस.ओ. की डायरी से

14 अप्रैल, 1937 'घोड़बंद घाटी, 6,500 फुट, अफगानिस्तान। शिविर को लगाना लंबा तथा कठिन कार्य था क्योंकि इस तरह के कार्यों के लिए सालिम काफी बेकार है, तथा किसी भी नौकर को तंबुओं अथवा शिविर के विषय में कोई ज्ञान नहीं था। सालिम को नौकरों की सेना की इतनी आदत है कि वह स्वयं कुछ भी करने में असमर्थ है, और तब भी वह वकालत करता है कि उसके वर्ग के लोग भारत का शासन करने के योग्य हैं। उन्हें पहले स्वयं पर शासन करना सीखना चाहिए।'

15.4.37 'मुझे बिलकुल मजा नहीं आ रहा है। मुझे सालिम कष्टकर लग रहा है। वह अक्षम है तथा वह सुन नहीं सकता कि उसे कोई कार्य किस तरह करना चाहिए, और वह हमेशा कोई भी कार्य अपने ही तरीके से करता है, जो बहुधा गलत निकलता है। उसका शिविर जीवन का अज्ञान तथा शिविर में उसकी असहायता दया की पात्र है। वह मुझे बतलाता है कि शिविर में उसे पहले कभी कुछ नहीं करना पड़ा था तथा पहले उसके पास हमेशा नौकरों की टोली रहती थी। शिविर जीवन का आनंद शिविर के साथियों पर बहुत निर्भर करता है।'

30.4.37 'मुझे सालिम से बहुत निराशा हुई। वह सिवाय संग्रहण के अन्य सबके लिए बेकार है। वह पक्षी का चर्मसंस्कार नहीं कर सकता, न खाना पका सकता है, और शिविर जीवन संबंधित कोई भी कार्य, सामान बंद करना या लकड़ी काटना, कुछ भी नहीं कर सकता। वह अंतहीन नोट्स लिखता रहता है, शायद मेरे विषय में...संग्रहण भी वह अपनी पहल लेकर नहीं करता। सभी भारतीयों की तरह वह जो भी करता है उसमें वह अक्षम है। यदि किसी कार्य को करने का कोई गलत तरीका है, वह वही करेगा, तथा आगे सोचने के लिए उसमें योग्यता ही नहीं है।'

20.5.37 सालिम एक शिक्षित भारतीय का प्रतिरूप है, और मुझे बहुत रोचक लगता है। वह अपने सैद्धांतिक विषयों में उत्कृष्ट है, किंतु उसमें व्यावहारिक योग्यता नहीं है, तथा रोजमर्रा की छोटी-छोटी उलझनों के सामने वह बालकों-सा हताश हो जाता है, तब भी प्रत्येक समय उसे पूरा आत्मविश्वास रहता है कि वह सही है। उसके दृष्टिकोण आश्चर्यचकित करने वाले हैं। वह अंग्रेजों को भारत से कल ही निकाल देना चाहता है, तथा देश का शासन स्वयं करना चाहता है। मैंने उसे बार-बार

बतलाया है कि ब्रिटिश सरकार कभी नहीं चाहेगी कि वह करोड़ों अशिक्षित भारतीयों को सालिम के समान व्यक्तियों की दया पर छोड़ दे : कि कोई भी अंग्रेज यह सहन नहीं कर सकता कि मनुष्यों पर चूहे राज करें।'

9 जनवरी, 1952 सिक्किम (स्वतंत्रता पश्चात) : 'मैं देखता हूं कि भारत या भारतीयों के विषय में सालिम बहुत भावुक है। वह जरा-सी आलोचना से बिगड़ जाता है और उसके मन में दक्षिण अफ्रीका द्वारा भारतीयों के प्रति किए जा रहे व्यवहार पर बहुत कड़वाहट है। केन्या तथा द. अफ्रीका के भारतीयों के साथ मेरा अनुभव यह दर्शाता है कि उन्होंने वहां रोगों, बेईमानी तथा राजद्रोह का प्रवेश कराया है।' [इसके बाद गांधी पर ध्वंसात्मक मत हैं, 'चूहा-गांधी', तथा आज भारत में ब्रिटिश राज की तुलना में अदक्षता, बेईमानी तथा दरिद्रता कहीं अधिक है !]

●●●

मुद्रक : बोस्को सोसाइटी फॉर प्रिंटिंग एण्ड ग्राफिक ट्रेनिंग, ओखला रोड, नई दिल्ली–25